CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का नाम
का

R
आ.९६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीः ॥

९०८

विद्या भवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१८

सा. २०५३

श्रीहर्षदेवप्रणीता

प्रियदर्शिका नाम नाटिका

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीटीकोपेता

टीकाकारः—

पण्डित श्रीरामचन्द्र मिश्रः

(प्राध्यापक, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, राँची)

द.नं. 902/908
ACC

चौखम्बा विद्या भवन, बनारस-१

[वि॰ २०१२] [ई॰ १९५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशक

चौखम्बा विद्या भवन,

चौक, बनारस–१

891.22
HAR

(पुनर्मुद्रणादिकाः सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः)

The Chowkhamba Vidya Bhawan

Chowk, Banaras.

(INDIA)

1955

मुद्रक

विद्याविलास प्रेस,

बनारस–१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सा॰ २०५६

अवतारणा

समुपजोषमद्य प्रकाश्यते प्रियदर्शिकायाः 'प्रकाश' नामिका संस्कृतहिन्दीव्याख्या । अस्याः प्रणेतुः परिचयादिकं साहित्यिकं गौरवं ज्ञातव्यमन्यच्चाग्रे मातृभाषायां द्रष्टव्यानि ।

प्रियदर्शिकाया यावत्यष्टीका मयाऽऽलोचितास्तासु द्वे एवोल्लेखमर्हतः, एका अभिनवभट्टबाणोपाधिकेन आर॰ वी॰ कृष्णमाचारियरेण कृता, अपरा च एन्॰ जी॰ सूरूमहोदयकृता । अनयोराद्या संस्कृते द्वितीया चाङ्ग्लभाषायामस्ति । तयोः प्रथमाऽतिसंक्षिप्ता तया छात्राणामुपकारः सर्वथा न संभवति, द्वितीया यद्यपि विशदा, परं सापि आङ्ग्लभाषानिबद्धतया न सकलच्छात्रमनोज्ञतामवलम्बते । अत एव मयाऽस्य वृहतः प्रकाशस्य परिशिष्टादेश्च प्रणयनं प्रकृतम् ।

इमां व्याख्यामहं तथा सरलां कृतवानस्मि यथाऽनायासमेव सर्वे भावाः प्रकाशन्ते, परिशिष्टे प्रस्तावनायां च प्रायः सर्वानप्यपेक्षितान् विषयान् समावेशयितुं प्रयतितवानस्मि ।

आशासेऽनया व्याख्यया विद्यार्थिनः समधिकभावेनोपकरिष्यन्ते ।

यदि मदीयेन परिश्रमेण विद्यार्थिनां तदन्येषामपि च पाठकानां कियानप्युपकारः सम्पादितः स्यात्तदाहमिममात्मनः श्रमं फलेग्रहिं मन्तास्मि । इति ।

आश्विन कृष्ण ५
सं॰ २०१२

विनयावनतः
श्रीरामचन्द्रमिश्रः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समालोचना

नाटक साहित्य की प्राचीनता

भारतीय नाटकसाहित्य विचारधारा तथा विकासक्रममें मूलतः स्वतन्त्र है इस बातको अब सभी आलोचक मानने लग गये हैं। वैदिकसाहित्य की समीक्षासे पता चलता है कि वैदिककालमें नाटकके सभी अङ्गों—संवाद, सङ्गीत, नृत्य एवं अभिनय—का किसी न किसी रूपमें अस्तित्व था। 'ऋग्वेदमें यमयमी, उर्वशीपुरूरवा और सरमा-पणिके संवादात्मक सूक्तोंमें नाटकीय संवादका तत्त्व वर्त्तमान है। सामवेद तो सङ्गीत प्राण ही है। आलोचकों का अनुमान है कि ऐसे संवाद ही कालान्तरमें परिमार्जित होकर नाटकोंके रूपमें परिणत हुए। रामायण–महाभारत कालमें नाटकका कुछ और स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। विराट पर्वमें रङ्गशालाका स्पष्ट उल्लेख हुआ है। नटशब्दका भी वहां प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ श्रीधरस्वामीने 'नवरसाभिनयचतुर' किया है। हरिवंशमें रामायणकी कथापर आश्रित एक नाटकके खेले जानेका वर्णन आया है। रामायणमें भी 'नट' 'नर्त्तक' 'नाटक' 'रङ्गमञ्च' आदिका वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है, तथा कुशीलव शब्दका प्रयोग भी नट या अभिनेताके अर्थमें हुआ है। महावैयाकरण पाणिनिने 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' इस सूत्रमें नटसूत्र अर्थात् नाट्यशास्त्रका स्मरण किया है। इन बातोंसे स्पष्ट है कि उनके पूर्व ही अनेक नाटक रचे जा चुके होंगे, जिनके आधारपर इन नटसूत्रों की रचना की गई होगी, क्योंकि लक्ष्य ग्रन्थोंको देख कर ही लक्षण ग्रन्थ बनते हैं। इधर द्वितीय ईशवीसदी पूर्वकी एक प्राचीन नाट्यशाला छोटा नागपुर की पहाड़ियोंमें पाई गई है जो नाट्यशास्त्रमें वर्णित प्रेक्षागृहोंसे मिलती जुलती है। इस तरह संस्कृत नाटकोंकी अपनी प्राचीन परम्परा सिद्ध होती है।

संस्कृत नाटकोंमें रङ्गमञ्चके पर्दोंके लिये कहीं कहीं 'यवनिका' शब्दका प्रयोग हुआ है, इसीसे कुछ पाश्चात्य विद्वानोंने अनुमान किया है कि संस्कृत नाटकोंकी उत्पत्ति 'यवन' अर्थात् ग्रीक नाटकोंके प्रभावसे हुई है, किन्तु यह धारणा भ्रान्त है। 'यवनिका' शब्दके प्रयोगका रहस्य तो इतना ही भर है कि वे पर्दे–'यवन' (Lonea) देशसे आये हुए वस्त्रोंसे बनाये जाते थे।

प्राचीन पद्धत्यनुसार विचार करनेसे भी नाटकसाहित्यकी प्राचीनता सिद्ध होती है। भरतने अपने नाट्यशास्त्रमें लिखा है:—

'महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः। क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु। तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्' ॥
एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च। सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित्
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम्। भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
सा. २०५३

सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रदर्शकम्। नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥
एवं सङ्कल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्। नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतिमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसादाथर्वणादपि॥
वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना। एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा ललितात्मकम्॥
आज्ञापितो विदित्वाहं नाट्यवेदं पितामहात्। पुत्रानध्यापयं योग्यान्प्रयोगं चास्य तत्त्वतः॥
एवं प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने। अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्याये तत्र सङ्गताः॥
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम्। कृतानुकरणं लोके नाट्यमित्यभिधीयते॥

शारदातनयने भी अपने 'भावप्रकाशन' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमें लिखा हैः—

'कल्पस्यान्ते कदाचित्तु दग्ध्वा लोकान् महेश्वरः।
स्वे महिम्नि स्थितः स्वैरं नृत्यन्नानन्दनिर्भरम्॥

मनसैवासृजद्विष्णुं ब्रह्माणं च महेश्वरः। नियोगाद्देवदेवस्य ब्रह्मा लोकानथासृजत्॥
दृष्ट्वा स देवदेवस्य पुरावृत्तमथास्मरत्। दिव्यं चारित्रमैशं मे कथमध्यक्षतामियात्॥
इति चिन्तापरे तस्मिन्नभ्यगान्नन्दिकेश्वरः। स नाटयवेदमध्याप्य सप्रयोगं चतुर्मुखम्॥
उवाच वाक्यं भगवान्नन्दी तच्चिन्तितार्थवित्। नाट्यवेदोपदिष्टानि रूपकाणि च यानि तु॥
विधाय तेषामेकंतु रूपकं लक्षणान्वितम्। भरतेषु प्रयोज्यं त्वया सम्यग् विजानता॥
तस्मिन्प्रयुक्ते भरतैर्भावाभिनयकोविदैः। प्राक्तनानि च कर्माणि प्रत्यक्षाणि भवन्ति ते॥
एवं ब्रुवन्नन्तरधान्नन्दी स भगवान्प्रभुः। श्रुत्वैतद्वचनं प्रीतो ब्रह्मा देवैः समन्वितः॥
ततस्त्रिपुरदाहाख्यं रूपकं सम्यगभ्यधात्। अध्याप्य भरतानेतत् प्रयुङ्ध्वमिति चाब्रवीत्॥
ततस्त्रिपुरदाहाख्ये कदाचित् ब्रह्मसंसदि। प्रयुज्यमाने भरतैर्भावाभिनयकोविदैः॥
तदेतत्प्रेक्षमाणस्य मुखेभ्यो ब्रह्मणः क्रमात्। वृत्तिभिः सह चत्वारः शृङ्गाराद्या विनिर्गताः॥

उपर्युक्त समीक्षा तथा उद्धरणोंसे यह असन्दिग्ध रूपसे कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटक साहित्य ने अपने क्रमवद्धविकासमें वैदिकवाङ्मय इतिहास तथा पुराणों से ही प्रेरणा पाई है। हाँ, इसमें मतभेद नहीं हो सकता कि भारतीय नाटकोंके विकासमें पर्याप्त काल लगा होगा।

जिन नाटकोंकी उपलब्धि अब तक हो सकी है उनमें प्राचीनतम नाटक भास, कालीदास तथा अश्वघोषके नाटक हैं।

महाकवि हर्षदेव

संस्कृत साहित्यके निर्माताओंमें कम ही सज्जन ऐसे हैं जिनकी जीवनकथा अभ्रान्त-रूपमें उपस्थित की जा सकती है। हमारे सौभाग्यसे हर्षदेवकी कथा उपलब्ध है और उपलब्ध मात्र ही नहीं, प्रामाणिक तथा सरस भाषामें निबद्ध भी है। महाकवि बाणभट्टने हर्षचरितके अगले पांच उच्छ्वासोंमें इनका पूरा इतिहास दिया है। उसके अनुसार सरस्वती नदीके किनारे कुरुक्षेत्रके समीप थानेश्वर (थानेसर) नामक एक प्रसिद्ध नगर था। वहां पुष्पभूति नामक एक परम शैव राजा राज्य करते थे। उनके वंशमें कालक्रमसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाप्रतापी महाराज प्रभाकर वर्धन–जिनका दूसरा नाम प्रतापशील भी था–पैदा हुए। उनको यशोमती नामक रानीसे तीन सन्तानें हुईं। दो पुत्र तथा एक कन्या। पुत्रोंके नाम क्रमशः राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन और कन्याका नाम राज्यश्री रखा गया। प्रभाकरवर्धनने हूणोंको जीतकर गान्धार, लाट तथा मालवदेश तक अपना प्रभुत्व विस्तृत किया। कान्यकुब्जके राजा अवन्तिवर्माके पुत्र ग्रहवर्माके साथ राज्यश्रीका विवाह हुआ। इसी समय उत्तरदेशमें हूणोंने फिर सिर उठाया और कुछ उपद्रव किया। उन्हें दबानेके लिये महाराज प्रभाकरवर्धनने अपने ज्येष्ठ पुत्र पराक्रमी राज्यवर्धनको भेजा। अपने बड़े भाई के साथ कुमार हर्षवर्धन भी हिमालय तक गये, किन्तु उनके भाई तो आगे बढ़े, पर कुमार हर्षवर्धन वहीं शिकार खेलते रह गये। इसी समय राजधानीसे राजाकी अस्वस्थताका समाचार लेकर दूत वहां पहुंचा और कुमार हर्षवर्धन अपने भाईको इस बातकी खबर देनेके लिये दूत भेजकर अविलम्ब राजधानी लौट आये। उनके पहुंचते ही महाराज प्रभाकरने अन्तिम सांस ली। इनकी माता तो विधवा होनेके भयसे पहलेही अग्निप्रवेश कर चुकी थी।

महाराज प्रभाकरवर्धन की मृत्युके समाचारसे उत्साहित होकर दुर्वृत्त मालवाधीशने कान्यकुब्जाधीश ग्रहवर्मापर धावा बोल दिया। युद्धमें ग्रहवर्मा मारे गये और उनकी पत्नी राज्यश्री बन्दिनी हो गई। इस समाचार के मिलनेपर नवराज्यारूढ़ राज्यवर्धन तिलमिला उठे। उनकी मानसिक स्थिति असन्तुलित हो उठी। उन्होंने राज्यका प्रबन्ध अपने कनिष्ठ भाई हर्षवर्धनके ऊपर छोड़कर सेना के साथ मालवाधीशपर चढ़ाई कर दी। मालवाधीश उस युद्धमें मारा गया। मालवाधीशके मित्र गौडेश्वर शशाङ्कदेव गुप्तके विश्वासघाती आचारणसे मार्गमें ही राज्यवर्धनको अपने प्राण खोने पड़े।

इस संवादको सुनकर भी हर्षवर्धन घबराये नहीं, तत्काल उन्होने कान्यकुब्ज की यात्रा कर दी। रास्तेमें राज्यवर्धनके सहचर ससैन्य भाण्डीसे उनकी भेंट हुई। उसने हर्षवर्धनको और बातोंके साथ यह बात भी कह दी कि राज्यश्री अब कारागृहमें नहीं है, वह मुक्त होकर विन्ध्यारण्यमें भाग गई है। इस पर हर्षवर्धनने भाण्डीको समस्त सेना लेकर आगे बढ़नेको कहा और स्वयं विन्ध्यारण्यमें छिपी अपनी बहन की खोजमें चला। विन्ध्यारण्यमें पहुंचनेपर हर्षवर्धन को बौद्धभिक्षुक दिवाकर मित्रसे भेंट हुई। वहीं उन्होंने सुना कि एक सुन्दरी स्त्री चितामें प्रवेश कर रही है। सुनते ही उसने वहां जाकर राज्यश्रीको प्राणत्याग करनेसे रोका। राज्यश्रीने प्राणत्याग करनेका विचार तो छोड़ दिया किन्तु उसने फिर संसारमें आना नहीं चाहा और वहीं दिवाकर-गोत्रके आश्रममें ब्रह्मचारिणी बनकर रहने लगी। इसपर सन्तुष्ट होकर हर्षवर्धन अपनी सेनामें आगये जो भाण्डीकी देख-रेखमें गङ्गातटपर पड़ाव डाले बैठी थी। (इसके बादकी कथा हर्षचरितमें नहीं है वह अन्य इतिहास ग्रन्थोंपर आधारित है) अनन्तर हर्षवर्धनने गौडेश्वर शशाङ्कदेवपर चढ़ाई की और अपने बड़े भाई राज्यवर्धनके वधका बदला उसे युद्ध-क्षेत्रमें धराशायी बनाकर लिया। इसके बाद वे अपनी राजधानी लौट आये और रिक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजगद्दीको बाध्य होकर सनाथ कर दिये। उनका राज्य बहुत समृद्ध तथा निरुपद्रव रहा। उन्होंने वलमें भी ध्रुवसेनको परास्त किया। उनके दरवारमें बाणभट्ट तथा मयूर जैसे कवि थे। उनके समयमें ही प्रसिद्ध चीनी पर्यटक 'ह्वेनसांग' भारत आया था जो कुछ दिनोंतक उनका अतिथि रहा। श्रीहर्षका समसामयिक राजा पुलकेशी था जिसका राज्य दक्षिणमें था। उसका एक शिलालेख भी पाया गया है जिसमें कालीदास तथा भारविका भी उल्लेख है। हर्षवर्धनके साथ पुलकेशीका युद्ध भी हुआ था जिसमें हर्षवर्धन की हार हुई। इन सभी बातोंकी प्रामाणिकताके लिये महामहोपाध्याय स्वर्गीय रामावतारशर्माका 'भारतीयमितिवृत्तम्' नामक ग्रन्थ देखें–उसमें लिखा है:—

'प्रायोऽस्मिन्समये राजश्रीप्रभाकरवर्धनः। प्रतापशीलान्वाख्योऽभूत्स्थाण्वीश्वरपुरेश्वरः ॥
अथ प्रतापशीलस्य राज्ञो देवी यशोमती। सुषुवे तनयौ राज्यवर्धनं हर्षवर्धनम् ॥
पितर्युपरते राज्यवर्धनो मालवैः सह। युध्यमानः शशाङ्केन गौडेशेन हतश्छलात् ॥
निहते कान्यकुब्जेशे ग्रहवर्मणि मालवैः। वन्दीकृतास्य राज्यश्रीर्भार्या हर्षस्वसा वलात् ॥
पलाय्यबन्धनाद्विन्ध्यकानने भ्रमति स्म सा। देवतेव वनस्याग्रे दावानलभयद्रुता ॥
स्वसारं गहनेऽन्विष्य शात्रवेभ्योऽतिवाह्य च। जित्वा शशाङ्कं गौडेशं हर्षो निर्वृतिमाप्तवान् ॥
वलभ्यां ध्रुवसेनं स नेपालाँश्चोग्रविक्रमः। जितवान्नर्मदापारे निरस्तः पुलकेशिना ॥
सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपतिः। कृतीव मृगयुश्चक्रे योगं वाणमयूरयोः ॥
सभायां हर्षदेवस्य तीर्थयात्रार्थमागतः। मतिमान् हयशुङ्गाख्यश्चीनश्चक्रे चिरं स्थितिम् ॥
रत्नावलीं तथा नागानन्दं च प्रियदर्शिकाम्। रूपकत्रितयं चक्रे श्रीहर्षो निपुणः कविः ॥

श्रीहर्षवर्धनके राजत्वकालमें चीनी यात्री आया था, उसने अपनी आंखों देखी बातें लिखी हैं। उसके अनुसार हर्ष एक महान् वीर तथा बुद्धिमान् राजा थे। उनके राज्यका विस्तार हिमालयसे नर्मदा तथा मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र और कुछ दूर तक वंगदेशमें भी था। उनके समयमें राजस्वका जरिया मुख्यतः मालगुजारी ही थी। इसके अतिरिक्त कर नाममात्रके ही थे। अपराध कम होते थे, प्रजा सुखी तथा सन्तुष्ट थी। उनका सुशासन राज्यव्यापक था। उसमें शिक्षाका विस्तार किया गया था। राज्यकी ओरसे शिक्षाके मदमें काफी व्यय किया जाता था। विद्वानोंको राज्यका आश्रय प्राप्त होता था। महाकवि बाणभट्ट तथा मयूर उनके दरवारके प्रसिद्ध कवि थे। हर्ष स्वयं ग्रन्थ लिखनेके बड़े व्यसनी थे, उन्होंने तीन रूपक, उपरूपक तथा एक व्याकरण ग्रन्थ का निर्माण किया था।

यद्यपि कुछ लोग इन सभी ग्रन्थोंको एककर्तृक नहीं मानते, परन्तु अधिकांश लोगोंकी रायमें यह सभी ग्रन्थ महाराज हर्षवर्धनके हीं बनाये हैं।

महाराज हर्षवर्धन अपने शासनके अन्तिम भागमें धर्मप्रवृत्तिक तथा दयालु हो गये थे। उन्होंने धार्मिक सभायें कीं तथा खुलकर दान दिया। उनके शासनके ३५ वर्ष तो वड़ी शान्तिसे बीते, परन्तु अन्तिम भागमें कुछ व्युत्क्रम हुआ। चालूक्यवंशी राजा पुलकेशीने उन्हें नर्मदापारमें राज्य विस्तार करनेसे रोका था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाराज हर्षदेव ऐतिहासिक पुरुष थे, अतः उनका समय सर्वथा निर्धारित है। महामहोपाध्याय स्व० पं० रामावतारशर्माने तथा अन्यान्य शोधपरायण विद्वानोंने एकमत होकर उनका राज्यकाल ईस्वी सन् ६०६ से ६४६ तक स्वीकार किया है।

कुछ लोग यह शङ्का किया करते हैं कि हर्षने पण्डितोंको रुपया देकर उनसे ग्रन्थ लिखवाया और अपने नामसे प्रथित किया। इस आशङ्काकी तहमें दो बातें हैं। एक यह कि इस तरहके वीर तथा युद्धविरत राजाको साहित्यसर्जनके लिये समय कहाँसे मिलता रहा होगा? और दूसरी काव्यप्रकाशकी यह पङ्क्ति—'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्' इन दोनों विषयोंपर क्रमशः यहाँ विचार किया जायगा।

प्रथम बातमें कुछ खास तत्त्व नहीं है। जब किसी महाराजको साहित्यसृष्टिकी रुचि होगी तो उसे समय मिल जायगा। व्यस्त जीवनमें भी अपने व्यसनका त्याग नहीं कर दिया जाता है। प्राचीन कालमें शासनका बहुत बड़ा भाग तो मन्त्री निभाते थे। राजा तो केवल निर्देशक भर रहा करते थे। यदि जनकको योगसाधन का, अशोकको धर्मप्रचारका और महाराज शिवसिंहको विद्यापतिकी कवितापर अपने विचार व्यक्त करनेका समय मिल जाया करता था, तब महाराज हर्षवर्धनको भी इतना समय अवश्य मिलता रहा होगा कि वे अपने शासनके ४० वर्षोंमें तीन चार छोटे-छोटे ग्रन्थ लिख सकें। क्या आज भी चर्चिल कम कार्य व्यस्त हैं? फिर भी उनकी प्रसिद्धि अंग्रेजी भाषाके उत्तम गद्य लिखनेवालेके रूपमें है। क्या पण्डित जवाहरलालजीका समय कार्यभारसे कम घिरा रहता होगा? तथापि उनके पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ निकला ही करते हैं।

अब रही **'श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्'** वाली बात। काव्यप्रकाशके टीकाकार(१) महेश्वर नागेशभट्ट, वैद्यनाथ और जयरामने काव्यप्रकाशकी उपर्युक्त पङ्क्तिकी व्याख्या इस तरहकी है—'रत्नावली नाटिका धावककविने श्रीहर्षके नामसे लिखी और उसके लिये उनसे बहुतसा धन पाया'। इस उक्तिकी सारवत्ता नितान्त सन्दिग्ध है। कालिदासने जो किसी भी तरह ५ वीं शताब्दीसे इधरके नहीं कहे जा सकते, अपने मालविकाग्निमित्रकी प्रस्तावनामें धावकको स्मरण किया है, अतः श्रीहर्षके समयमें उन्हें किस तरह लाया जा सकता है जो असन्दिग्ध रूपमें ७वीं शताब्दीके महाराज थे। इसके अतिरिक्त हर्षने किसीको धन दिया

---

(१) श्रीहर्षो राजा धावकेन रत्नावलीं कारयित्वा बहुधनं तस्मै दत्तवानिति काव्यप्रकाशादर्शे महेश्वरः। 'धावकः कविः, स हि श्रीहर्षनाम्ना रत्नावलीं कृत्वा बहुधनं लब्धवान्' इत्युद्द्योते नागेशभट्टः। 'श्रीहर्षाख्यस्य राज्ञो नाम्ना रत्नावलीं नाम नाटिकां धावकाख्यकविर्बहुधनं लब्धवानिति प्रसिद्धमिति काव्यप्रकाशप्रभायां वैद्यनाथः। 'धावकनामा कविः स्वकृतां रत्नावलीं नाम नाटिकां विक्रीय श्रीहर्षनाम्नो नृपात् बहुधनं प्रापेति पुराणवृत्तमिति जयरामः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका अर्थ यही नहीं लगाना चाहिये कि उन्होंने किसीकी कीर्त्ति खरीदकर ही दिया। इससे तो क्रेता और विक्रेता दोनों की निन्दा ही हो जाती है। यह प्रथा उस समय रही भी नहीं होगी। यदि भोजराज किसी कविको यथेष्ट धन दे सकते हैं तो क्या हर्ष नहीं दे सकते ?। यदि हर्षको इस तरह दूसरेके ग्रन्थोंको रुपयोंसे खरीदकर कवियोंमें नाम कराने की प्यास होती तो उन्होंने अपने आश्रित वाणभट्टकी कादम्बरी ही क्यों न खरीद ली ?

काव्यप्रकाशकी निदर्शना टीकामें उपर्युक्त पङ्क्तिकी व्याख्यामें 'धावक' की जगह 'वाण' का नाम लिखा गया है, उसीको अवलम्बन मानकर 'हॉल' नामक एक पाश्चात्त्य पण्डितने कल्पना कर ली कि वाणभट्टने हर्षके नामपर रत्नावली बना दी है। इस कल्पना की पुष्टिमें उनका कहना है कि रत्नावलीमें वर्त्तमान 'द्वीपादन्यस्मादपि' यह श्लोक वाणरचित हर्षचरितमें भी पाया जाता है। इस कथनसे सन्देह अवश्य उत्पन्न हो सकता है पर निर्णय नहीं। वाण श्रीहर्षके आश्रित थे, उन्होंने उनसे धन पाया इससे रत्नावली कर्तृत्व तो उनपर जाता नहीं। रही श्लोक साम्यकी वात, इस विषयमें यह विचारणीय है कि क्या किसी अन्य कविके एक श्लोकको लेकर अपने ग्रन्थमें लिखदेनेसे उस ग्रन्थका कर्तृत्व ही छोड देना होता है ? यदि ऐसी बात होगी तब तो मनुस्मृतिके श्लोक जिन अन्य स्मृतियोंमें पाये जाते हैं वे सभी स्मृतियां मनुजीकी मानी जाने लगेंगी। इसी तरह शिवपुराणके श्लोकका क्रोडीकरण देखकर कुमारसम्भव भी व्यासदेवका ग्रन्थ माना जाने लगेगा। अतः इस प्रसङ्गमें यही मानना न्यायसङ्गत है कि हर्षदेवने प्रसन्न होकर ही धावक, वाण या और किसी कविको धन दिया था, उनकी रचना नहीं खरीदी थी। उन्होंने कवियोंका सत्कार किया था किन्तु लोकनिन्द्य साहित्यिक व्यापार नहीं किया था।

इस तरह यह सिद्ध होता है कि हर्षदेवने रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि ग्रन्थ लिखे। अब इस वातपर विचार करना है कि प्रियदर्शिका आदिके निर्माता हर्ष कौन थे। संस्कृत-साहित्यमें तीन हर्षके नाम आते हैं। एक प्रसिद्ध दार्शनिक तथा नैषधचरित प्रणेता श्रीहर्ष, दूसरे काश्मीराधीश श्रीहर्ष, तीसरे प्रभाकरवर्धनके पुत्र श्रीहर्षदेव। प्रथम श्रीहर्षको उनकी भाषाशैली तथा रचनाप्रौढ़ि ही उनको रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि ग्रन्थोंके कर्त्ता होनेसे वचा रही है। रहे काश्मीराधीश श्रीहर्ष। उनके विषयमें राजतरङ्गिणीमें एक श्लोक हैः—

'सोऽशेषदेशभाषाज्ञः सर्वभाषासु सत्कविः। कृत्स्नविद्यानिधिः प्राप ख्यातिं देशान्तरेष्वपि'॥

इसी पर कुछ पाश्चात्य पण्डितोंने मान लिया है कि काश्मीराधीश ही रत्नावली आदि रूपकोंके प्रणेता हैं, इसका खण्डन तो इसी से होता है कि महाराज भोजदेवने जो काश्मीराधीश श्रीहर्षके पितामह अनन्तदेवके समसामयिक थे, अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में रत्नावलीके श्लोक उद्धृत किये हैं। अनन्तदेवका समय १०६५ ई० के आसपास माना जाता है। इस स्थितिमें ७ वीं सदीमें बनकर प्रख्यात हो जानेवाले रत्नावली आदि रूपक उनकी कृतियां किस प्रकार कही जा सकती हैं। एक बात और, दशरूपक के प्रणेता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धनञ्जय या धनिक जो अपनेको मुञ्जके (१)दरबारका मानते हैं अपने दशरूपक नामक ग्रन्थमें रत्नावलीके उद्धरण दिये हैं। मुञ्जका समय १०३०ई० से पहले का है यह सर्ववादिसिद्ध विषय है। उस समय तक तो अनन्तदेवका भी पता इतिहासमें नहीं चलता है, तब काश्मीराधिपति हर्षदेव भला किस तरह उत्पन्न हुए रहे होंगे। (पितामहसे पूर्वमें पौत्र !!) अतः यह बात भ्रान्त है। इन सारी बातोंपर विचार करनेसे सिद्ध है कि रत्नावलीके निर्माता हर्षदेव ही थे, अन्य कोई दूसरे हर्ष नहीं।

हर्षदेव के ग्रन्थ

हर्षदेवके बनाये चार ग्रन्थ हैं, उनमें तीन रूपक प्रसिद्ध हैं, चौथा ग्रन्थ व्याकरण विषयक है जो आज तक उपलब्ध नहीं हो सका है। उपलभ्यमान तीनों रूपक एक ही व्यक्तिकी कृतियां हैं, इस विषयमें प्रमाणस्वरूप निम्न बातें उपस्थित की जा सकती हैं।

१—इन तीनों दृश्यकाव्यों की प्रस्तावनामें हर्षदेवका उल्लेख रचयिताके रूपमें किया गया है। २—इन नाटकों की शैली में पूर्ण साम्य है। ३—इन रूपकोंमें बहुत अंश मिलते जुलते हैं:—

नागानन्दे	रत्नावल्याम्
(१) न्याय्ये वर्त्मनि योजिताः प्रकृतयः। १।७	(१) राज्यं निर्जितशत्रु इत्यादि। १।७
(२) भगवन् कुसुमायुध, येन त्वं रूपशोभया निर्जितोऽसि तस्य त्वया न किमपि कृतम्, मम पुनरनपराद्धाया अपि अबलेतिकृत्वा प्रहरन् न लज्जसे। अङ्क २	(२) भगवन् कुसुमायुध, निर्जितसकलसुरासुरो भूत्वा स्त्रीजनं प्रहरन् कथं न लज्जसे ? अङ्क २
(३) सखि, अतोऽपि मे सन्तापोऽधिकतरं बाधते। अङ्क २	(३) सखि, अतोऽपि मे अधिकतरं सन्तापो वर्धते। अङ्क २
(४) भो वयस्य, प्रच्छादय इमां चित्रगतां कन्यकाम्। अङ्क २	(४) वयस्य प्रच्छादय चित्रफलकम्। अङ्क २
(५) हञ्जे, दुर्जनीकृतास्मि अनेन चित्रगतं दर्शयता। अङ्क २	(५) आर्यपुत्र, अमात्ययौगन्धरायणेन एतावन्तं कालं दुर्जनीकृतास्मि। अङ्क ४
(६) दृष्टादृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभाषिता। अङ्क ३	(६) प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता। अङ्क ३
(७) अये कथमनभ्रा वृष्टिः। अङ्क ५	(७) सखे, इयमनभ्रा वृष्टिः। अङ्क ३

(१) 'विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः। आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठ्यां वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत्।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी प्रकार की समता प्रियदर्शिका और नागानन्दमें भी मिलती है :—

नागानन्दे	प्रियदर्शिकायाम्
(१) कन्यका हि निर्दोषदर्शना भवन्ति । अङ्क १	(१) निर्दोषदर्शना कन्यका खल्वियम् । अङ्क २
(२) अये मध्यमध्यास्ते नभस्तलस्य भगवान् सहस्रदीधितिः । अङ्क १	(२) अये कथं नभोमध्यमध्यास्ते भगवान् सहस्रदीधितिः । अङ्क २
(३) भर्तृदारिके, पदशब्द इव श्रूयते । अङ्क २	(३) पदशब्द इव श्रूयते । अङ्क ३
(४) भर्तृदारिके, चिरं खलु त्वया वादितम् । न खलु ते परिश्रमः अग्रहस्तानाम् । अङ्क १	(४) चिरं खलु मे वादयन्त्याः परिश्रमो जातः। अङ्क ३

इन उद्धरणोंकी समानता तथा उपर्युक्त विषयों पर दृष्टिपात करनेसे प्रियदर्शिका, नागानन्द तथा रत्नावली तीनों ही रूपक श्रीहर्षके ही बनाये प्रमाणित होते हैं ।

रचनाक्रमके अनुसार प्रियदर्शिका श्रीहर्षकी पहली रचना है क्योंकि उनकी अन्य दोनों रचनाओंकी अपेक्षा इसमें नाट्यकलाका कम परिष्कार लक्षित होता है । रत्नावली श्रीहर्षकी दूसरी रचना है, क्योंकि यह अधिक परिष्कृत तथा कलापूर्ण है । नागानन्द नाटक यद्यपि रत्नावलीके समान प्रौढ़ एवं परिमार्जित नहीं है, तथापि इसमें बौद्ध आदर्शोंका निरूपण है, जिधर उनका झुकाव अन्तिम अवस्थामें हुआ होगा, अतः यह उनकी अन्तिम कृति मानी जाती है ।

श्रीहर्षका धर्म

बौद्धभिक्षु दिवाकर भीमसे परिचय होने तथा नागानन्द नाटकमें भगवान् बुद्ध की स्तुति करने के कारण हर्षदेव बौद्ध हो सकते हैं । ऐसा कतिपय विद्वानोंका मत है । परन्तु इस मतमें कुछ सार नहीं है । दिवाकर मिश्र एक उच्चकोटिके भिक्षु थे, उन्होंने उनकी बहन 'राज्यश्री' को अपने आश्रममें स्थान दिया था, इन कारणोंसे उनके प्रति हर्षदेवका आदर तथा सौहार्द था, किन्तु इतने भरसे उनका बौद्धधर्ममें दीक्षित होना नहीं सिद्ध होता । कुछ लोग यह भी कहते हैं कि हर्षदेवके बौद्ध हो जाने पर बाणभट्टकी उनपर अश्रद्धा हो गई थी, इसीलिये बाणभट्टने हर्षदेवकी जीवनी 'हर्षचरित'को अधूरा छोड़ दिया । परन्तु ऐसी द्वेष भावना बाणभट्ट सरीखे प्रेमी कविके लिये अच्छी नहीं प्रतीत होती । अपनी इच्छा या द्वेष भावनासे उन्होंने उस ग्रन्थको अधूरा छोड़ दिया, इसके अलावा क्या ऐसा नहीं कहा जासकता कि बाणभट्ट उतना ही लिखकर इस धराधामको छोड़ कर चले गये । जितना भाग मिलता है उसके आगे कोई महान् विघ्न आपड़ा होगा यह बात भी तो कही जासकती है । नागानन्दके मङ्गलाचरणवाली बात तो और हेय है । जब सभी हिन्दू भगवान् बुद्धको दशावतारमें एक देव मानते हैं तब क्यों उनकी बन्दना करनेसे हर्षदेवको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बौद्धमान लिया जाय ?। इसी तरह यदि किसीके धर्मका निर्णय किया जाय तो रत्नावलीके मङ्गलाचरणको देखकर हर्षदेवको शैव ही क्यों न माना जाय? अतः इस निष्कर्षपर पहुंचना चाहिये कि श्रीहर्षदेवका बौद्ध होना किसी भ्रान्त बुद्धिकी उपज है, वस्तुतः वह हिन्दू शैव थे। केवल वे ही नहीं, उनके पिता तथा भाई भी परम शैव होने का गर्व रखते थे।

प्रियदर्शिका पर एक दृष्टि

यह नाटिका चार अङ्कोंकी है, इसमें वत्सराज उदयनके अन्तःपुरकी एक प्रेम कहानी चित्रित की गई है। इसके कथानक भागमें तथा मालविकाग्निमित्रकी कथामें पर्याप्त साम्य मालूम पड़ता है। राजा दृढ़वर्मा कलिङ्गराजके साथ युद्धमें पराजित तथा वन्दी हो जाते हैं और उनकी कन्या प्रियदर्शिका, जिसे उनका भृत्य पूर्व सङ्कल्पको सफल करनेके विचारसे उदयनके पास लिये आ रहा था, मार्गमें ही दुर्घटना वश विपन्न स्थितिमें उनके अतःपुरमें पहुँच जाती है। यहां उसका नाम आरण्यका हो जाता है क्योंकि वह जङ्गलमें पाई गई थी। कथानक इतना सरस है कि पढ़ते समय उपन्यासका आनन्द आता है। इस कथाका बीज 'वृहत्कथा'में है परन्तु इसमें इतना रङ्ग भर दिया गया है कि यह कथा अतिरोचक हो गयी है। तीसरे अङ्कमें जो गर्भाङ्कनाटककी सृष्टि की गई है वह प्रियदर्शिकाकी उल्लेखनीय विशेषता है। प्रसादगुणयुक्त शैली, सरलता, अनेक रोचक घटनाओंकी सृष्टि तथा कतिपय उत्कृष्ट वर्णनीय प्रसङ्गों द्वारा श्रीहर्ष अपनी इस नाटिकाको सफल वनानेमें कृतकार्य हुए हैं। कवित्वकी दृष्टिसे भी प्रियदर्शिका एक सफल रचना कही जा सकती है।

राजाके स्नान घरमें स्त्रियां रहा करती थीं, उनका काम होता था, राजाको स्नानीय चूर्ण आदि प्रदान करके स्नान सम्पादनमें उनकी सहायता तथा मनोरञ्जन। उदयनके स्नान घरमें भी वनितायें थीं, उनका वर्णन वड़ा हृदयग्राही हुआ है। देखिये :—

'लीलामज्जनमङ्गलोपकरणस्नानीयसम्पादिनः······' इत्यादि (पृ० १७)

स्नानघरकी स्त्रियाँ स्नानीय चूर्ण आदि सम्पादनमें इतनी व्यस्त हैं कि वे अपने अञ्चल सम्भालनेमें भी अशक्त हो गई हैं, उनका अञ्चल खिसक जाता है, उनके स्तनोंकी शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानों जलसे भरे सुवर्ण घटोंके अतिरिक्त यह अपर स्वर्णघट हो। कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा है। स्तनोंको स्वर्ण घटसे उत्प्रेक्षा तो वहुत जगह दी गई है परन्तु उसको अपर घट तथा उत्क्षिप्त विशेषणसे युक्त बनाकर वड़ा रम्यरूप प्रदान किया गया है।

मुखको कमल तथा नेत्रों को नील कमलसे तुलना दी जाती है यह तो अति प्रसिद्ध वस्तु है, उसीको भ्रान्तिमान् अलङ्कारका जामा पहनाकर तथा नूतन वाग्भङ्गीसे सुसज्जित करके किस प्रकार आकर्षक वनाया जा सकता है यह देखना हो तो देखिये :—

'अयि विसृज विषादं भीरु भृङ्गास्तव ते······' इत्यादि (पृ० ३५)

सूर्यास्तका वर्णन करते समय दिनश्रीका प्रस्थान, पद्मोंका संमीलन, सूर्यमण्डलकी रक्तता, चक्रवाकका भावी प्रियावियोग, अन्धकारकी व्याप्ति आदि विषयोंका वर्णन किया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाता है, उसी पुरानी शराबको नयी बोतलमें रखकर तथा अपनी वियुक्तावस्थाका रमणीय 'लेबुल' लगाकर कविने कितना चमत्कार उत्पन्न किया है यह देखिये :—

'हृत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता'......'इत्यादि (पृ० ४०)

इसमें जैसी उपमायें बनी हैं वैसी कम बन पाती हैं। राजा अरण्यकाका हाथ अपने हाथमें लेता है और यह श्लोक पढ़ता है :—

'सद्योऽवश्यायबिन्दुव्यतिकरशिशिरः किं भवेत् पद्मकोशः'...'इत्यादि (पृ०६९)

सात्त्विक भावके चिह्नभूत स्वेदको हाथोंपर लगा देखकर राजाने समझा कि कमलकोश पर ओसकी बूंदें चमक रही हैं, किन्तु तत्क्षण उसकी प्रज्ञाने कहा कि नहीं, यह सोचना भ्रम होगा, कमलके विकास के समय सूर्य रहेगा ही और उसके रहनेपर ओस कहां रह पायगी। यदि यह कहें कि ये नखचन्द्र हिमवृष्टि कर रहे हैं तो यह भी ठीक नहीं होगा, क्योंकि हिमसे तो कमल मुरझा जाते हैं, अतः यही सङ्गत प्रतीत होता है कि यह स्वेद नहीं, स्वेदके छलसे अमृत चू रहा है। ओस, हिम, अमृत तीनों कल्पनायें शैत्यको सूचित करती हैं, परन्तु पर्यन्तकी कल्पना अमृत ही है जो शवमें भी प्राण डाल देती है।

कोमल भावनाके कवियोंमें यह एक दोष होता है कि जब कभी उनको किसी उद्धत-वृत्त या पदार्थका वर्णन करना पड़ता है तब वे बगलसे झांकने लगते हैं। इसीलिये कवियोंकी सर्वाङ्गीण सफलता कम देखी जाती है। हर्षदेवकी इस रचनासे यह प्रमाणित होता है कि उनमें यह दोष नहीं था। देखिये :—

'निर्दिष्टाक्रान्तमन्दं प्रतिदिनविरमद्वीरदासेरवृत्तं'.....'इत्यादि (पृ० ९१)

जिस राजाने अभी एक मिनट पहले कहा है :—

'दृष्टिप्रसादविधिमात्रहृतो जनोऽयमत्यादरेण किमिति क्रियते विलक्षः' (पृ० ८८)

उसीके मुखसे ऊपरवाला श्लोक भी कहलाया गया है, परन्तु क्या चमत्कार है कि एकदम पहचाना नहीं जारहा है कि दोनों एक ही व्यक्ति की रचनायें हैं। इसीको कहते हैं **'रससिद्धि'**। जिस रसकी वर्णना हो रही है उसीके अनुरूप शब्द तथा बन्ध दार्ढ्य हो इसीको हम रससिद्धि कहते हैं और वह रससिद्धि जिस कविको रहती है वह कवीश्वर है। **'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः'** ऊपरका श्लोक बता रहा है कि हर्षमें यह चातुरी थी।

ऐसे तो हर्षदेवकी कवितामें सर्वत्र ही सरलता पाई जाती है परन्तु प्रियदर्शिकामें वह और अधिक प्रस्फुटित हुई है, देखिये :—

'सञ्जात सान्द्रमकरन्दरसांक्रमेण'......' इत्यादि (पृ० १००)

इस श्लोकको और बातोंको छोड़िये, इतना ही पर ध्यान दीजिये कि इसमें जो बात कही गई है वह अधिक सरल ढङ्गसे कही गई है तथा उसका प्रतिपाद्य अर्थ बहुत ही सात्त्विक और निर्मम सत्य भी है। **'रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्'** वाला प्रसिद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोक इस प्रक्रान्त श्लोककी समता नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें ऐसा अर्थान्तरन्यासका विन्यास नहीं हैं, केवल इतिहास भर कहकर छोड़ दिया गया है।

इन अल्प उद्धरणोंसे आप देख चुके कि प्रियदर्शिकाकी साहित्यक मर्यादा कहाँ तक पहुँच सकी है। गद्योंमेंसे भी कुछ उद्धरण देते तो अच्छा होता, परन्तु विस्तार भयसे उस लोभका संवरण ही करलेना ठीक समझा हूँ।

संस्कृत नाटकसाहित्यमें हर्षदेवका स्थान

सरलता तथा शैलीकी विशेषताकी दृष्टिसे हर्षदेवका स्थान संस्कृत नाटककारोंकी श्रेणीमें कालिदासके वाद ही है, लेकिन यही वात नाटकीयता तथा भाषाप्रौढ़ि आदिके लिये नहीं कही जा सकती। जहाँ तक भाषाका प्रश्न है उनका स्थान नीचेकी ओर आवेगा। संस्कृत नाटकोंमें जहाँ भवभूतिकी वह टकसाली भाषा प्रस्तुत है, जिसकी तुलनामें कालिदासका समूचा गुणगौरव वरावर होने लगता है, जहाँ विशाखदत्त, नारायणभट्ट आदिकी प्रौढ़ि तथा शास्त्रीय पाण्डित्यकी चमक है, वहाँ केवल सरलतायुक्त विशिष्ट शैलीसे ही स्थान निर्णय किया जाय, यह एकाङ्गी विचार होगा।

यदि इनके नाटकोंकी सूक्ष्म आलोचनाकी जाय तो ऐसा मालूम पड़ेगा कि श्रीहर्षदेव अपनेको शास्त्रीयतत्त्वोंकी छूतसे वचाते रहे हैं, जिससे उनकी रचना कुछ हलकीसी हो गई है। इतना होनेपर भी वे एक निपुण कवि हैं इसमें सन्देह नहीं। प्रसन्नराघवकारके **'हर्षो हर्षः'** इस कथनमें कौन हर्ष विवक्षित हैं यह तो वे ही जान सकते हैं।

मेरी तुच्छ सम्मतिमें हर्षदेवका वास्तविक स्थान द्वितीय श्रेणीके रूपककारोंमें होना चाहिये। प्रथम श्रेणी को तो कुछ सरस्वतीके वर पुत्रोंके लिये ही सुरक्षित रखना होगा, जिसमें कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त और नारायण आदि ख्यात कवि रहेंगे।

आश्विन कृष्ण ५
सं० २०१२

—रामचन्द्र मिश्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कथासार

प्रथम अङ्क

प्राचीन समयमें कौशाम्बी नगरीमें वत्सराज उदयन नामक एक राजा थे। उनकी प्रधान रानीका नाम वासवदत्ता था जो महासेन-प्रद्योतकी कन्या थी। एक दिन उनके दरबारमें एक कञ्चुकी आकर कहा—महाराज, मैं महाराज दृढ़वर्माका कञ्चुकी हूँ। आजकल उनके दिन भले नहीं हैं, कलिङ्गाधिपतिने उन्हें वन्दी करलिया है। उनकी एक प्रियदर्शिका नाम की कन्या है। जिसे वे आपको ही सौंपना चाहते थे। अकस्मात् यह आपत्ति आपड़ी। उनके वन्दी हो जानेपर मैंने विचार किया कि यदि मैं उनकी पुत्री प्रियदर्शिकाको आपकी सेवामें पहुँचा दूँ तो मेरे स्वामीका वह मनोरथ सफल हो जायगा, और इस प्रकार मैं उनसे कुछ अंशोंमें आनृण्य भी प्राप्त कर लूँगा। इसके अनुसार ही मैं उस कन्याको साथ लेकर चला और रास्तेमें दृढ़वर्माके मित्र विन्ध्यकेतुके घरपर उस लड़कीको ठहराकर अगस्त्यतीर्थमें स्नान करने गया, इसी बीच जबतक मैं लौटा किसीने विन्ध्यकेतुका वध करके उस स्थानको पूर्णरूपसे जनशून्य करदिया था, लड़कीका भी कोई पता नहीं था। ढूढ़नेपर भी जब लड़की नहीं मिली तब मैं आपके पास यह समाचर कहने आया हूँ। यहाँसे मैं अपने स्वामीके पास जाकर उनकी ही सेवामें अपना जीवन बिताऊँगा। यह कहकर वह चला गया।

कुछ कालके बाद ही राजाका सेनापति विजयसेन आया और कहा—महाराज, आपके कोपका फल विन्ध्यकेतुको भुगतना पड़ा, वह अब इस धराधामपर नहीं है। हमने जब आक्रमण किया तब उसने बड़ी बहादुरीके साथ हमारा मुकाबला किया किन्तु अन्तमें उसे जान देनी पड़ी क्योंकि हमारी सेनाने उसे सभी ओरसे घेरकर असहाय बना दिया था। उसके मर जानेपर उसकी लड़की मिली है जो श्रीमान्की सेवामें उपस्थित की जारही है। वत्सराज उस वीर शत्रुके वीरोचित मरणसे खूब प्रभावित हुए और उस कन्याका नाम आरण्यका रखकर महारानी वासवदत्ताके पास इस आदेशके साथ भेज दिया कि इस कन्याको सङ्गीत तथा अन्य कलाओंकी शिक्षा दी जाय और जब यह व्याहने योग्य अवस्थाको प्राप्त हो तो इसके वरके अन्वेषण करनेकी सूचना मुझे दी जाय।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीय अङ्क

राजा और विदूषकमें आमोदकी बातें हो रही थीं राजाने नियमोपवाससे क्षीण महारानीको देखनेकी उत्कण्ठा व्यक्त की। विचार विमर्शके बाद तय हुआ कि धारागृहोद्यानकी ओर चलें, वहीं देवीके दर्शन होंगे। राजा जब धारागृहोद्यानमें पहुँचे तब महारानीकी चेटी इन्दीवरिका वहाँ आई। वह आरण्यकाको साथ लेकर फूल चुनने आई थी, उसने अपनी सङ्गिनी आरण्यकासे कहा कि महारानीकी आज्ञाके अनुसार मैं शेफालिकाके फूल चुनने जाती हूँ, तब तक तुम इस समीपवर्त्ती तालाबसे थोड़ेसे कमलके फूल ले लो। उस आज्ञाको अपने लिये अपमानजनक समझ करके भी वह फूल लेने चली। राजा और विदूषक भी उस समय तक वहाँ पहुँचे। विदूषकने वहाँ आरण्यकाको देखा जो वनदेवीके सदृश मलूम पड़ रही थी। उसने राजासे पूछा कि यह कौन है? राजाने कहा कि मैं भी इसे नहीं पहचानता। इसी बीच इन्दीवरिका वहाँ आती हुई दीख पड़ी। विदूषकने उसे आते देखकर कहा—वयस्य, वह महारानीकी चेटी इन्दीवरिका इधर ही आ रही है, अतः इस झाड़ीमें छिपकर ही हम इस सुन्दरीको देखें। वहाँ आकर इन्दीवरिकाने आरण्यकासे कहा कि तुम कमल फूल चुनो, मैं तब तक इस कमल पत्रपर शेफालिका पुष्पका संग्रह करती हूँ। इन दोनों सखियोंकी बातें सुनकर विदूषकने राजासे कहा—इन दोनोंकी बातें सुनी जाय। उन दोनोंकी बातें सुननेसे राजाको यह ज्ञात हुआ कि यह एक संभ्रान्त कुलकी है। इसी अवसरमें भ्रमरोंने आरण्यकाको सताना प्रारम्भ किया। उनके उपद्रवोंसे तङ्ग आकर आरण्यकाने इन्दीवरिकाको रक्षा करनेके लिये पुकारा। विदूषकने इस मौकेपर राजासे कहा कि जब तक वह दासी नहीं आती तभी तक आप उसके पास पहुँच कर उसे भ्रमरोंके उपद्रवसे बचावें। राजाने विदूषकके इस समयोपयुक्त सुझावकी प्रशंसा की और तदनुसार जाकर आरण्यकाकी रक्षा की। आरण्यकाने पहले समझा कि यह इन्दीवरिका ही है। विदूषकके द्वारा बताये जाने पर उसे मालूम हुआ कि ये राजा हैं और उसे लज्जा हुई। उसने मनमें सोचा कि ये ही महाराज हैं जिनके निमित्त पिताजीने मेरा सम्प्रदान किया था। इसी समय चेटी आती हुई देखी गई और विदूषकके सङ्केतपर राजा वहाँसे हट गये। चेटी आकर आरण्यकाको साथमें लेकर अन्तःपुरकी ओर चली गई। आरण्यकाको राजाके लिये जो स्नेह पैदा हुआ उसका असर उसकी चालपर हुआ। उन लोगोंके चले जानेपर उदास चित्त लिये राजा भी अन्तःपुरकी ओर चले क्योंकि सन्ध्या हो गई थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीय अङ्क

राजाके प्रति आरण्यकाकी आशक्ति बढ़ी, वह उनके लिये बेचैन रहने लगी। मनोरमाने उसे समझाया कि जब तुम राजाकी आँखोंमें बस गई है, तब विशेष चिन्ताकी आवश्यकता नहीं, राजा स्वयं कोई ऐसा उपाय करेंगे जिससे तुम उनसे मिल सकोगी। यह सुनकर आरण्यकाने कहा, यद्यपि राजाकी आंखोंके सामने मैं हो चुकी हूँ परन्तु रानीकी प्रीतिमें आसक्त होनेके कारण राजा मेरी ओर आकृष्ट नहीं होंगे, फलतः मेरा मरना अवश्यम्भावी है। इसपर मनोरमाने उसे राजाकी रूपपिपासासे अवगत कराया। इसी अवसरपर आरण्यकाको ढूंढ़ता हुआ विदूषक वहाँ आया और उसे देखकर मनोरमाने कहा कि मैंने तुम्हारी सारी बातें जान ली है, तुम राजाकी प्रेयसी आरण्यकाको राजाके आदेशानुसार ढूंढ़ते फिर रहे हो, कहो तो मैं यह बात महारानीसे कहकर तुम्हारी इस नर्मसचिवताका पुरस्कार तुम्हें दिला दूँ। परन्तु तुम डरो मत, जैसे राजा आरण्यकाके लिये बेचैन हैं उससे दुगुनी बेचैनी हमारी प्रियसखी आरण्यकाको है। देखो, तुम्हें देखकर ही हमारी सखीका सन्ताप घट गया, यह स्वयं कमलिनीपत्रोंको शरीरपरसे हटा रही है। तुम भी तो कमलिनीदलके ही लिये आये हो, चाहो तो यह पत्र ले जाओ। विदूषकने कहा—इन पत्रोंको छोड़ो, तुम्हारी सखी तो बड़ी लजीली मालूम पड़ती है, फिर इसकी और राजाकी भेंट किस प्रकार होगी। इसपर मनोरमाने उसे कानमें मिलनका प्रकार बतादिया, वह चला गया। इसी बीचमें अन्तःपुरिकाओं द्वारा एक नाटक खेला गया जिसे सांकृत्यायनीने राजा तथा महारानीके परिणयप्रसङ्गको आधार बनाकर लिखा था। उस अभिनयमें मनोरमा राजाका पार्ट लेगी और आरण्यका महारानी वासवदत्ता बनेगी यह पहले ही तय हुआ था। तदनुसार सभी दर्शकोंके इकट्ठे होनेपर। राजा विदूषकके परामर्शसे छिपकर आये और सज्जागृहमें मनोरमासे राजपरिधेय वस्त्रालङ्कार लेकर पहन लिया, आरण्यकाने वासवदत्ताके रूपमें खूब सुन्दर अभिनय किया, राजा तो स्वयं अपना पार्ट कर ही रहे थे। इस प्रकार अभिनयके छलसे दोनों प्रेमी-प्रेमिकाने अपना मनोरथ पूरा कर लिया। कुछ बातें ऐसी हुई जो वासवदत्ताको सचाईसे दूर मालूम पड़ी उसने इसके लिये रचयित्रीको फटकारा भी। इसी सिलसिलेमें विदूषकने सब मजा किरकिरा कर दिया वह अभ्यन्तरमें सोरहा था, चिढ़कर वासवदत्ता वहाँसे जारही थी, उन्होंने विदूषकको वहाँ पाकर अन्दाज लगाया कि महाराज भी यहीं कहीं होंगे। जगाकर उससे पूछा, उसने जो कहा उससे सभी रहस्य खुल गये। वासवदत्ताने आरण्यका तथा विदूषकको साथ लेकर प्रस्थान किया, वह राजाके अनुनयपर विना ध्यान दिये ही वहाँसे चली गई और आरण्यकाको बन्धनमें डाल दिया। वह नाटक एक दूसरे ही नाटकमें परिणत हो गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्थ अङ्क

इसके बाद राजा और रानीके बीचकी खाई पट नहीं सकी थी कि एक दिन वासवदत्ताकी माता अंगारवतीने अपनी कन्या वासवदत्ताको पत्र लिखा कि हमारी बहनके पति दृढ़वर्मा वर्षोंसे बन्धनमें पड़े हैं, तुम्हारे पति उनके उद्धारका प्रवन्ध नहीं कर रहे हैं क्या यह उचित है? इस पत्रको वासवदत्ताने पढ़ा और चिन्तामें पड़ गई। इधर राजा बन्धनमें पड़ी आरण्यकाकी मुक्तिके लिये चिन्तित थे। बहुत कुछ विचार-विमर्शके बाद रानीको प्रसन्न करना ही उसकी मुक्तिका उपाय स्थिर हुआ और तदनुसार राजा वासवदत्ताके पास पहुँचे। वहाँ जानेपर राजाको अङ्गारवतीका पत्रवाला समाचार मिला। उस सम्बन्धमें उन्होंने वासवदत्तासे कहा कि शीघ्र ही दृढ़वर्माका वध या बन्धन होगा, हमारी सेना यहाँसे चल चुकी है। इसी समय महाराजका सेनापति विजयसेन तथा दृढ़वर्माका कञ्चुकी उपस्थित हुए। उन लोगोंने खबर दी कि कलिङ्ग युद्धमें परास्त किया गया और दृढ़वर्माको उनका राज्य वापस मिल गया है। ये बातें हो ही रही थीं, इसी बीच खबर मिली कि आरण्यका मधकी जगह दिये गये विषके पीनेसे बेहोश हो रही है। इस समाचारसे महारानीको बड़ी घबराहट हुई। उन्होंने तत्काल आरण्यकाको वहाँ मँगवाया और नागलोकसे विषचिकित्साकी जानकारी प्राप्त कर आये हुए महाराजसे उसकी जान बचानेका अनुरोध किया। महारानीकी व्यग्रता तब तो और बढ़ गई जब दृढ़वर्माके कञ्चुकीने आरण्यकाका असली परिचय देकर कहा कि यह तो हमारी राजकुमारी प्रियदर्शिका है। महारानीके बारबार अनुरोध करनेपर महाराजने आरण्यकाकी चिकित्सा की। जिससे वह तत्काल भली चंगी हो गई। सब खुश हो गये, इसी अवसरपर दृढ़वर्माके सङ्कल्प और प्रियदर्शिका और राजाके प्रेमको दृष्टिमें रखकर वासवदत्ताने आरण्यकाका हाथ राजाके हाथपर रख दिया और सभी लोग प्रसन्न हो गये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

	अं.	श्लो.
अच्छिन्नामृतविन्दु	२	७
अन्तःपुराणां विहित	३	३
अयिविसृज विषादं	२	८
अस्मद्बलैर्विजयसेन	४	४
अहिणवराअक्खिता	३	९
आवद्धमुखमपीदं	२	९
आभात्यर्कांशुताप	१	१२
अभातिरत्नशत	३	२
उद्यानदेवतायाः	२	५
उर्वीमुद्दामसस्यां	४	१२
एतेन बालाविद्रुम	३	१२
एवं बलत्रितयमाकुल	१	१०
एषामीलयतीदमीत्तण	४	९
किं मुक्तमासनमलं मयि	४	२
कैलासाद्रावुदस्ते	१	२
त्तामां मङ्गलमात्रमण्डन	२	१
घनबन्धनमुक्तोऽयं	१	५
घनबन्धनसंरुद्धं	३	८
तत्त्तणमपि निष्क्रान्ताः	१	८
दृष्टं चारकमन्धकार	१	७
धूमव्याकुलदृष्टिरिन्दु	१	१
धृष्टः किं पुरतोऽत्रदृढ्य	४	१
निर्दिष्टाक्रान्तमन्दं	४	५
निःशेषं दृढवर्मणा	४	११
पातालाद्भुवनाव	२	६
पादातं पत्तिरेव	१	९
पादैर्नूपुरिभिः	३	४
प्रायो यत्किञ्चिदपि	३	१
विभ्राणामृदुतां	२	३
भृत्यानामविकारिता	१	६
भ्रूभङ्गैः क्रियते ललाट	३	१४
भ्रूभङ्गं न करोषि	४	३
राज्ञो विपद्बन्धुवियोग	१	४
रूपं तन्नयनोत्सवास्पद	३	७
लीलामज्जनमङ्गलोप	१	११
श्रीहर्षो निपुणः कविः	१	३
श्रोत्रं हंसस्वनोऽयं सुखयति	२	४
वृन्तैः क्षुद्रप्रवाल	२	२
व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना	३	१०
सद्योऽवश्यायबिन्दु	३	२
सपरिजनं प्रद्योतं	३	६
सुखनिर्भरोऽन्यथाऽपि	४	६
सञ्जातसान्द्रमकरन्द	४	८
सन्नायं प्रथमं तथा	३	५
स्निग्धं यद्यपि वीत्तितं	३	१३
स्वभावस्थादृष्टिर्नभवति	४	१०
स्वेदाम्भः कणभिन्न	३	१५
हत्वा कलिङ्ग	४	७
हत्वा पद्मवनद्युतिं	२	१०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पात्रपरिचय

पुरुषपात्र

१ वत्सराज—उदयन–महाराज कौशाम्बीनरेश।

२ विदूषक—उदयनका नर्म सचिव तथा वयस्य।

३ विजयसेन—सेनापति।

४ कञ्चुकी—दृढ़वर्माका कञ्चुकी विनयवसु।

५ रुमण्वान्—उदयनका मन्त्री।

स्त्रीपात्र

१ वासवदत्ता—उदयनकी स्त्री–महासेन प्रद्योतकी कन्या।

२ आरण्यका—दृढ़वर्मा की कन्या प्रियदर्शिका या प्रियदर्शना।

३ इन्दीवरिका—दासी।

४ काञ्चनमाला— ,,

५ साङ्कृत्यायनी—वृद्ध साधु महिला–वासवदत्ताके साथ रहनेवाली।

६ मनोरमा—दासी–आरण्यकाकी सङ्गिनी।

७ प्रतीहारी—द्वाररक्षिणी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रीः ॥

प्रियदर्शिका

'प्रकाश' संस्कृत-हिन्दीटीकोपेता

प्रथमोऽङ्कः

धूमव्याकुलदृष्टिरिन्दुकिरणैराह्लादिताक्षी पुनः
पश्यन्ती वरमुत्सुकानतमुखी भूयो ह्रिया ब्रह्मणः ।

श्रेयः समे दिशतु कोऽपि नवीनपीनभव्याम्बुदप्रमतनुर्जनवन्दनीयः ।
यद्बाहुपाशकलिता ललिताननश्रीराधाघनं प्रविशतीव तडिद्विभाति ॥ १ ॥

श्रद्धानतेन शिरसा पितरं 'मधुसूदनम्' ।
प्रसूं 'जयमणिं' चाहं प्रणमामि पुनः पुनः ॥ २ ॥

श्रीहर्षदेवकविताभावानवबोधवद्धवैमुख्यान् ।
मन्ये कतिचन बालान् प्रोत्साहयिता प्रकाशोऽयम् ॥ ३ ॥

दृश्यकाव्यप्रणयनयशस्वी श्रीहर्षदेवाभिधानः कविः सरसकथां रत्नावलीं नाम नाटिकां प्रणिनीषुः प्रारम्भे तस्याश्चिकीर्षितग्रन्थसमाप्तित्सानन्दाभिनयसम्पत्ति-विद्वत्ससुदयप्रतिपत्तिप्रतिबन्धिदुरितक्षयसाधनं मङ्गलमाचरन् सामाजिकजनानामपि विनाप्रयासं मङ्गलसिद्ध्येऽत्र निबध्नाति—धूमव्याकुलेति० करग्रहविधौ विवाह कर्मणि (अत्र विधिनातत्समय उपलक्ष्यते—तेन पाणिग्रहणसमय इत्यर्थः पर्यवस्यति) धूमेन व्याकुले व्यग्रतां गते दृष्टी नयने यस्याः सा तादृशी धूमकलुषाक्षीत्यर्थः, (पुनः) इन्दुकिरणैः चन्द्रमसः कान्तिभिः आह्लादिताक्षी शीतलीकरणद्वारा प्रसादितनेत्रा, उत्सुका जायमानोत्कण्ठा वरं महादेवम् पश्यन्ती विलोकयन्ती, ब्रह्मणः पौरोहित्यसम्पादनार्थमुपस्थितात् चतुर्मुखात् ह्रिया लज्जया

विवाह कालमें होमार्थ तथा विवाहसाक्ष्यसम्पादनार्थ प्रस्तुत अग्निकी धूममालासे जिनकी आँखे व्याकुल हो रही हैं परन्तु तत्क्षण हरशिरःस्थ चन्द्रमाकी चन्द्रिका से वही आखें आह्लादित (नवीकृत–प्रसादित) हो रही हैं, जो उत्सुकतावश (अतितपस्यालब्ध महादेवरूप) वरको देखती हैं और सामने (विवाह में पढ़ानेके लिये आये हुए) ब्रह्मासे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सेर्ष्या पादनखेन्दुदर्पणगते गङ्गां दधाने हरे
स्पर्शादुत्पुलका करग्रहविधौ गौरी शिवायास्तु वः ॥१॥

अपि च—

कैलासाद्रावुदस्ते परिचलति गणेषूल्लसत्कौतुकेषु

आनतमुखी अवनतानना, गङ्गां दधाने शिरसा गङ्गां धारयति हरे शिवे पादनखेन्दुदर्पणगते चरणनखात्मकचन्द्ररूपादर्शप्रतिबिम्बिते सेर्ष्या बद्धासूयाख्यभावा, स्पर्शात् शिवशरीरसम्पर्कात् उत्पुलका जायमानरोमाञ्चाख्यसात्त्विकभावा गौरी पार्वती वः युष्माकम् सामाजिकानां पाठकानाञ्च शिवाय कल्याणाय अस्तु जायताम् । विवाहे होष्यमाणस्य हूयमानस्य वा वह्नेर्धूमेनाकुलीकृतदृष्टिः सत्यपि हरशिरोवर्त्तिशीतांशुकरैर्नवीकृताक्षी पुरोहितत्वेन वृतस्य ब्रह्मणः सन्निधानेन लज्जमाना चिरतरतपश्चर्या प्रसादितत्वेनोपलब्धं वरं द्रष्टुमन्तरुत्कण्ठमाना पादनखचन्द्ररूपदर्पणप्रतिबिम्बभूतस्य शिवस्य शिरसि गङ्गां नाम काञ्चिदन्यां विलोक्य वनितां सापत्नाशङ्कया धृतासूया शिवशरीरस्पर्शवशसञ्जातरोमाञ्चा च पार्वती सामाजिकानां पाठकानां च मङ्गलाय जायतामित्यर्थः। अत्रौत्सुक्यलज्जाऽसूयादीनां भावानां शबलता। धूमव्याकुलदृष्टिरिति सौकुमार्यातिशयः, उत्सुकेति वरविषयकाभिलाषातिशयः, आनतमुखीति शालीनता, तथा चाभिजात्यम्, पादनखानां चन्द्रत्वोक्त्या तेषां वर्त्तुलता स्वच्छतातिशयश्च, दर्पणतोक्त्या प्रतिबिम्बग्राहितया स्वच्छतोत्कर्षः, करग्रहविधाविति चिराचरिततपः साफल्यजन्मानन्दश्चेत्याद्यर्था व्यज्यन्ते। धूमव्याकुलेति प्रियदर्शिकाया विन्ध्यकेतुगृहदाहाद्यवसरसंभवा व्यग्रता पश्यन्तीति •आह्लादिताक्षीति स्वप्रियहर्षदर्शनप्रभवो मोदः, ह्रियेति मनोरमासमक्षं स्वाशयप्रकाशनेऽप्यक्षमता, सेर्ष्येति वासवदत्ताया असूया, उत्पुलकेति प्रियदर्शिकाया विवाहप्रभवो हर्षः, इत्याद्यर्था अपि प्रतीयन्ते, प्रतीयमानैश्चैभिरर्थैः काव्यार्थः सूच्यमानोऽस्य पद्यस्य नान्दीभावं निर्वहति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

कैलासाद्राविति० उदस्ते ऊर्ध्वमुत्थापयितुं क्षिप्ते कैलासाद्रौ शिवावासभूते

लज्जित होकर मुंह नीचे करलेती हैं, जो स्वीय चरणनखस्वरूप चन्द्रमारूप दर्पणमें महादेवको गङ्गाको शिरपर रखे देख (सापत्न भावसे) ईर्ष्या धारण करती हैं, तथा शीघ्र महादेवके अङ्गोंसे स्पर्श हो जाने पर (सात्त्विकभावोदित) रोमाञ्चसे कण्टकित शरीर हो जाती हैं ऐसी पार्वती आप सामाजिकोंका कल्याण करें ॥ १ ॥

और भी—

रावणद्वारा उठाये जाने पर कैलासपर्वत कांप रहा है, शिवके गण आश्चर्यचकित हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रोडं मातुः कुमारे विशति विषमुचि प्रेक्षमाणे सरोषम्।
पादावष्टम्भसीदद्वपुषि दशमुखे याति पातालमूलं
क्रुद्धोऽप्याश्लिष्टमूर्तिर्भयघनमुमया पातु तुष्टः शिवो नः ॥२॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—(परिक्रम्य) अद्याहं वसन्तोत्सवे सबहुमानमाहूय, नानादिग्देशागतेन राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहे-

पर्वते परिचलति कम्पमाने, गणेषु प्रमथगणेषु उल्लसत्कौतुकेषु किमिदमुपनतमित्याश्चर्यचुम्बितचित्तेषु, कुमारे कार्त्तिकेये मातुः जनन्याः पार्वत्याः क्रोडं भुजान्तरम् विशति प्रविशति, विषमुचि शिवभूषणभावेनावस्थिते शेषनागे सरोषम् कोपपूर्वकं प्रेक्षमाणे स्वावासदेशावस्थावैषम्यं विलोकयति, पादस्य एकस्य चरणस्य अवष्टम्भेन गाढं निवेशनेन सीदत् निष्क्रियभावापत्त्या खिद्यमानं वपुः शरीरं यस्य तस्मिन् तथोक्ते दशमुखे रावणे पातालमूलम् अधोभुवनतलप्रदेशं याति गच्छति सति क्रुद्धः रावणकृतापराधेन कुपितः अपि उमया पार्वत्या भयघनम् भीत्या प्रयोजिकया गाढम् आश्लिष्टमूर्त्तिः आलिङ्गितदेहः (अतएव च) तुष्टः प्रसन्नः शिवः वः युष्मान् पातु रक्षतु। रावणो यदा कैलासमुदस्य चालयामास तदा कैलासं कम्पमानमालोक्य प्रमथा विस्मयमापुः कुमारो मातुरङ्कमाशिश्रिये, शेषः कोपप्रस्फुरत्फणगणः सन्नप्युपायासमर्थतया केवलं पश्यतिस्म, तदस्यां स्थितौ रावणं दर्पशातनेन स्थितिं बोधयितुं शिवः स्वं पादमेकं गाढं भुवि समारोपयद्येन रावणस्य-वपुरक्रियं सत्खेदमन्वभूत्, तदेवं शिवः क्रुद्धः सन्नपि स्त्रीस्वभावकातरया पार्वत्या हठादालिङ्ग्यमानः परं प्रमोदमनुभवन्युष्मानवत्वित्यर्थः। स्मर्यते माघकाव्यम्—'समुत्क्षिपन्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकारशूलिनः। त्रसत्तुषाराद्रिसुतासम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रियम्' इति। पूर्वोक्ताविपरीतं वृत्तम् ॥ २ ॥

सबहुमानम्—सादरम्। पादपद्मोपजीविना—पादौ चरणौ पद्मे इव ते उपजी-

रहे हैं, कार्त्तिकेय (बाल स्वभावोचित भयवश) अपनी माँ की गोदमें छिप रहे हैं, फुफकार मारता हुआ महादेवका भूषणभूत सर्पगण देख रहा है, महादेव जमीन पर पैर रोप देते हैं बस, रावणकी देह अशक्त हो जाती है और वह पातालकी अतल कन्दरामें जाने लग जाता है, ऐसी स्थितिमें रावणकी दर्पोद्धततासे क्रुद्ध होने पर भी पार्वती द्वारा भयसे घनाश्लेषके कारण प्रसन्न महादेव हमारा पालन करें ॥ २ ॥

(नान्दीके अन्त हो जाने पर)

सूत्रधार—(चलकर) आज इस वसन्तोत्सवके अवसर पर नानादेश, विदेशसे महाराज श्रीहर्षदेवके चरणोंमें आश्रित राजसमुदायने आदरपूर्वक मुझे बुलाकर कहा है कि 'हमारे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नोक्तः। यथा 'अस्मत्स्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनालंकृता प्रियदर्शिका नाम नाटिका कृतेत्यस्माभिः श्रोत्रपरम्परया श्रुता, न तु प्रयोगतो दृष्टा। तत्तस्यैव राज्ञः सर्वजनहृदयाह्लादिनो बहुमानादस्मासु चानुग्रहबुद्ध्या यथावत्प्रयोगेण त्वया नाटयितव्या' इति। तद्यावन्नेपथ्यरचनां कृत्वा यथाभिलषितं संपादयामि। (परितोऽवलोक्य) आवर्जितानि सामाजिकमनांसीति मे निश्चयः। कुतः।

श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी

वति यस्तेन आश्रयवर्त्तिना। अपूर्ववस्तुरचनाऽलङ्कृता—अपूर्वाभ्याम् अभिनवाभ्यां प्राचीनैर्निर्मातृभिर्मनसाऽप्यस्पृष्टाभ्यां वस्तुरचनाभ्याम् कथानककविरवाभ्याम् अलङ्कृता—युक्ता। श्रोत्रपरम्परयाकर्णाकर्णिकया। प्रयोगतः—अभिनयेन। सार्वविभक्तिकोऽत्रतसिः। सर्वजनहृदयाह्लादिनः सकललोकमनोरमस्य। अनुग्रहबुद्ध्या—कृपाधिया। यथावत्प्रयोगेण—यथोचिताभिनयेन। नाटयितव्या—अभिनेतव्या। नेपथ्यरचनाम्—वेशपरिग्रहम्। यथाभिलषितम्—इच्छाम्। सम्पादयामि—पूरयामि। आवर्जितानि—आकर्षितानि। सामाजिकमनांसि—दर्शकहृदयानि।

श्रीहर्ष इति० श्रीहर्षः तदाख्यो राजकविः निपुणः प्रवीणः कविः कवयिता, न केवलं कविः श्रीहर्षः किन्तु निपुणः कविरिति तन्निर्मितप्रियदर्शिकादिदृक्षावद्धोत्कण्ठता सामाजिकानां स्वाभाविकीति तात्पर्यम्। नन्वस्तु श्रीहर्षो निपुणः कविः, निर्मिमीतां च सग्रन्थरत्नम्, जायन्तां च सामाजिका धृतोत्कण्ठाः, परन्तेषु गुणज्ञता नास्तीति कृतं तेऽभिनयप्रदर्शनप्रयासेनेत्यभिसन्धावाह—परिषदपीति० एषा पुरोदृश्यमाना परिषत् गोष्ठी अपि गुणज्ञा गुणग्राहिणी रचयितुरभिनेतुश्च गुणान् ग्रहीतुं याथातथ्येनावगन्तुं शीलं यस्यास्तादृशी। नन्वस्तु निपुणः कविः, जायतां च

स्वामी महाराज श्रीहर्षदेवने अपूर्व वस्तुरचनासे युक्त प्रियदर्शिका नामकी नाटिकाका निर्माण किया है यह बात हम लोगोंने कानों कान सुनी है, उसका अभिनय नहीं देखा है। अतः सर्वलोकहृदयानन्दक महाराज हर्षके प्रति बहुमान तथा हम लोगोंके प्रति अनुग्रह बुद्धिसे आप उस नाटिकाका यथावत् अभिनय करें'। अतः तबतक वेशविन्यास कर उनके मनोरथकी पूर्त्ति करता हूँ। (चारो ओर देखकर) सामाजिकोंके हृदय आकृष्ट होंगे यह तो निश्चित है, क्योंकि—

श्रीहर्ष एक निपुण कवि हैं, यह सभाभी गुणज्ञ है, उदयनका चरित्र अति हृदयग्राही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।
वस्त्वेकैकमपीह वाञ्छितफलप्राप्तेः पदं किं पुन-
र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ॥ ३ ॥

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अये। कथं प्रस्तावनाभ्युद्यते मयि विदितास्मदभिप्रायोऽङ्गाधिपतेर्दृढवर्मणः कञ्चुकिनो भूमिकां कृत्वास्मद्भ्रातैत एवाभिवर्तते । तद्यावदहमप्यनन्तरभूमिकां संपादयामि । (इति निष्क्रान्तः)

इति प्रस्तावना ।

परिषद्गुणज्ञाऽथापि शुष्का कथा न शक्यते रसयितुमित्यत्राह—लोक इति० वत्सराजस्य उदयनस्य चरितम् आख्यानकम् च लोकेहारि सर्वकथापेक्षया समधिकं हृदयावर्जकम् । एवं सत्यपि प्रागुक्तगुणत्रयेऽयोग्यनटाभिनये चमत्कारोनोदियादिति तदपनुदति—नाट्ये चेति० अहं च त्वं च इमे चेति वयम् एतदभिनयानुष्ठातारः सर्वे वयं नटाः नाट्ये अवस्थानुकृतौ दक्षाः कुशलाः। एतेन नटायोग्यत्वकृतत्रुटिविरह उक्तः। तदेवम् इह अत्र प्रस्तुतेऽभिनये एकैकम् प्रत्येकम् वस्तु निपुणकविगुणज्ञपरिषत्कथाचारिमदक्षनटाद्यन्यतमस्वरूपम् अपि वाञ्छितस्य काम्यमानस्य फलस्य समास्वादसमाकर्षणरूपस्य पदम् स्थानम् । तदन्यतमेनापि समासमाकर्षणमस्तिसुकरमितिभावः । अयम् उक्तरूपः सर्वः समग्रः गुणानां गणः समष्टिः पुनः मद्भाग्योपचयात् मदीयसुकृतोद्रेकवशात् समुदितः एकत्रीभूयोपस्थितः । तदवश्यमनेन गुणगणेन सामाजिकजनहृदयानन्दनजन्ययशो लाभाय प्रयतनीयं मयेति भावः । प्रवीणे निपुणाभिज्ञ' इत्यमरः । 'समज्या परिषद् गोष्ठी' इति विश्वः । 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यमिति दशरूपके । वृत्तमविपरीतम् । इयं च भारतीवृत्त्यङ्गभूताप्ररोचना, तत्स्वरूपञ्च प्रस्तुतार्थप्रशंसनेन श्रोतृसमावर्जनम् ॥ ३ ॥

प्रस्तावनाभ्युद्यते—प्रस्तावना अभिनेयवस्तुपरिचयस्तदर्थं कृतोद्यमे । विदितास्मदभिप्रायः-ज्ञातास्मदाशयः । भूमिकां कृत्वा-स्वरूपमाधाय । अनन्तरभूमिकाम्-इतः परं धारणीयं वेशम् ।

है, और हमलोग भी अभिनय कलाके पारदर्शी हैं। इस तरह इसमें एक गुणका होना भी अभीष्ट सिद्धिका कारण हो सकता है किन्तु यहाँ तो हमारे भाग्यसे उक्त सभी गुण समस्त रूप प्राप्त हो रहे हैं ॥ ३ ॥

(नेपथ्यकी ओर देखकर)

अरे, क्या प्रस्तावना करनेके लिये मुझे सन्नद्ध जानकर और हमारा अभिप्राय समझ कर अङ्गराज दृढ़वर्माके कन्चुकीका रूप ग्रहण कर हमारा भाई इधर ही आरहा है। अतः हम भी तबतक अनन्तरकरणीय भूमिका ग्रहण करता हूँ। (जाता है)

प्रस्तावना समाप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—(शोकश्रमं नाटयन्, निःश्वस्य) कष्टं भोः कष्टम्।

राज्ञो विपद्बन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिर्दुर्गममार्गखेदः।
आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः॥४॥

(सशोकं सविस्मयं च) तादृशस्यापि नामाप्रतिहतशक्तित्रयस्य रघुदिलीपनलतुल्यस्य देवस्य दृढवर्मणः 'मत्प्रार्थ्यमानाप्यनेन स्वदुहिता

शोकश्रमम्–शोकेन मानसिकखेदेन युतं श्रमम् कायिकं श्रमम् अवसादम्। नाटयन्–चेष्टया–प्रकटयन्।

राज्ञ इति॰ राज्ञः दृढवर्मणः विपत् राज्यच्युतिकन्यानाशप्रभृतिः, बन्धुवियोगदुःखम्–बान्धवविरहजन्मा क्लेशः, देशच्युतिः–स्ववासदेशात् पलायनम्, दुर्गममार्गखेदः–कठिनसञ्चारे पथिसञ्चरणजन्माक्लेशः, (तदेतत् सर्वम्) कटु निष्फलायाः कट्वी दूषणबहुला निष्फला व्यर्था च तस्याः अस्याः मयाऽनुभूयमानायाः चिरजीवितायाः समधिककालपर्यन्तं जीवनधारणस्य फलम् एतत् मया आस्वाद्यते भुज्यते। राज्ञो विपद्दृष्टा, बन्धुविरहोऽनुभूतः, स्वदेशात् पलायितम्, दुर्गमे पथि सञ्चरणात् कष्टं प्राप्तम्, तदिदं सर्वमपि चिरं दुःखबहुलं च जीवनमेव मम कष्टमकल्पयदित्याशयः। अत्र वृद्धकञ्चुकिकथने निर्वेदध्वनिः॥४॥

तादृशस्य–प्रसिद्धपराक्रमस्य। अप्रतिहतशक्तित्रयस्य–मन्त्रशक्तिः प्रभुशक्तिः, उत्साहशक्तिश्चेति शक्तित्रयम् तेन दीप्तस्य। मत्प्रार्थ्यमाना–मया याच्यमाना।

(कञ्चुकीका प्रवेश होता है)

कञ्चुकी—(शोक जन्य श्रमका अभिनय करता हुआ) कष्ट है, कष्ट,

राजाकी विपत्ति, बन्धुवियोगजन्य दुःख, देशसे निकाला जाना, अगम्य मार्ग में चलने से कष्ट, मैं अपनी कड़वी तथा व्यर्थ इस चिरजीविताका फल चख रहा हूँ। मैं बहुत दिनों तक जीता रहा, मेरा यह जीना नितान्त कटु तथा निष्फल रहा, क्योंकि बहुत दिनों तक जीते रहनेसे अपने प्रिय राजाकी बड़ी-बड़ी दुर्दशायें मुझे देखनेको मिलीं, राजाको विपत्तिका सामना करना पड़ा, उसे बन्धुओंके वियोगका दुःख भोगना पड़ा, देश निकाल हुआ, दुर्गम मार्गका कष्ट उठाना पड़ा॥४॥

(शोक तथा विस्मयके साथ)

वैसे अप्रतिहत मन्त्र शक्ति, प्रभुशक्ति तथा उत्साहशक्ति से युक्त रघु, दिलीपके समान महाराज दृढवर्मा को नीच कलिङ्गने ऐसी विपत्ति कर दी क्योंकि उसे इस बातका कोप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वत्सराजाय दत्ता' इति बद्धानुशयेन वत्सराजो बन्धनान्न निवर्तते' इति च लब्धरन्ध्रेण सहसागत्य कलिङ्गहतकेन विपत्तिरीदृशी क्रियत इति यत्सत्यमुपपन्नमपि न श्रद्दधे। कथमेकान्तनिष्ठुरमीदृशं च दैवमस्मासु। येन सापि राजपुत्री 'यथा कथञ्चिदेनां वत्सराजायोपनीय स्वामिनमनृणं करिष्यामि' इति मत्वा मया तादृशादपि प्रलयकालदारुणादवस्कन्दसंभ्रमादपवाह्य देवस्य दृढवर्मणो मित्रभावान्वितस्यैवाटविकस्य नृपतेर्विन्ध्यकेतोर्गृहे स्थापिता सती, स्नानाय नातिदूरमित्यगस्त्यतीर्थं गते मयि, क्षणात्कैरपि निपत्य हते विन्ध्यकेतौ, रक्षोभिरिव निर्मानुषीकृते दग्धे स्थाने, न ज्ञायते कस्यामवस्थायां वर्तत इति। निपुणं च विचितमेतन्मया सर्वं स्थानम्। न च ज्ञातं किं तैरेव दस्युभिर्नीता, अथवा दग्धेति। तत्किं करोमि मन्दभाग्यः। (विचिन्त्य) अये एवं श्रुतं मया—'बन्धनात्परि-

---

बद्धानुशयेन—आहितदीर्घरोषेण। लब्धरन्ध्रेण—आसादितावसरेण, रन्ध्रं छिद्रं तदत्रावसरपर्यवसायि। कलिङ्गहतकेन—नीचेन कलिङ्गराजेन, उत्तरस्थितं हतकपदं पूर्वपदार्थनिन्दां गमयति—यथा दैवहतकम् इत्यादौ। उपपन्नम्—सञ्जातम्। श्रद्दधे-विश्वसिमि। एकान्तनिष्ठुरम्=अत्यन्तक्रूरम्। अवस्कन्दसंभ्रमात्—आक्रमणकालिकव्यत्यस्तभावात्, आटविकस्य—वने निवसतः। निपत्य—अतर्कितमागत्य। निर्मानु-

---

था कि हम जिस कन्या की प्रार्थना कर रहे थे उसे दृढ़वर्माने वत्सराजके लिये प्रदानकर दिया और उसे मौका भी मिल गया, उसने सोचा कि वत्सराजको तो बन्धनसे छूट मिलती नहीं है, यही आक्रमणका उपयुक्त अवसर है। यह विपत्ति है सत्य, फिर भी विश्वास नहीं होता है (कि ऐसी घटना घट सकती है) भाग्य क्यों हम लोगों पर इस तरह अत्यन्त निर्दय हो गया, जिससे मेरे द्वारा वह राजकुमारी—किसी तरह इस कन्या को वत्सराजके पास पहुँचा दूं और स्वामीसे अनृण हो जाऊं ऐसा सोचकर उस तरहके प्रलयकालके समान भयानक चढ़ाई के समयमें भी किसी तरह बचाकर देव दृढ़वर्माके मित्र वन्यनृप विन्ध्यकेतु के घर रखी गई। मैं अतिसमीपवर्त्ती अगस्तितीर्थमें स्नान करने गया, क्षणभरमें किसीने आकर विन्ध्यकेतुका वध कर दिया और राक्षसोंके समान उन लुटेरोंने उस स्थानको भी जलाकर मानुषशून्य बना दिया। न मालूम वह राजपुत्री किस स्थिति में है? मैंने भलीभांति इस स्थानमें सर्वत्र खोजकी, परन्तु मुझे ज्ञात नहीं हो सका कि उस कन्याको वही लुटेरे ले गये या वह जल मरी। अब मैं अभागा क्या करूं? (सोचकर) अरे, मैंने सुना था कि वत्सराज बन्धनसे छूट गये हैं और प्रद्योतकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भ्रष्टः प्रद्योततनयामपहृत्य वत्सराजः कौशाम्बीमागतः' इति किं तत्रैव गच्छामि। (निश्वस्यात्मनोऽवस्थां पश्यन्) किमिव हि राजपुत्र्या विना तत्र गत्वा कथयिष्यामि। अये कथितं चाद्य मम विन्ध्यकेतुना—'मा भैषीः। जीवति तत्रभवान्महाराजो दृढवर्मा गाढप्रहारजर्जरीकृतो बद्धस्तिष्ठति' इति। तदाधुना स्वामिनमेव गत्वा पादपरिचर्यया जीवितशेषमात्मनः सफलयिष्यामि। (परिक्राम्योर्ध्वमवलोक्य) अहो अतिदारुणता शरदातपस्य। यदेवमनेकदुःखसन्तापितेनापि मया तीक्ष्णोऽवगम्यते।

घनबन्धनमुक्तोऽयं कन्याग्रहणात्परां तुलां प्राप्य।
रविरधिगतस्वधामा प्रतपति खलु वत्सराज इव ॥ ५ ॥

[इति निष्क्रान्तः]

इति विष्कम्भकः।

षीकृते–जनशून्यतां गमिते। विचितम्–अन्विष्टम्। दस्युभिः–लुण्टाकैः। नीता–अपहृता। बन्धनात्परिभ्रष्टः–मुक्तबन्धनः। प्रद्योततनयाम्–महासेन प्रद्योतात्मजाम् वासवदत्ताम्। गाढप्रहारजर्जरीकृतः–सातिशयक्षतविकलः। पादपरिचर्यया–चरणसेवया। जीवितशेषम्–आयुषोऽवशिष्टं भागम्। अतिदारुणता–अतिकठोरत्वम्। शरदातपस्य–शरत्कालिकसूर्यकिरणस्य। तीक्ष्णः तीव्रः।

घनबन्धनेति० घनानां मेघानां बन्धनात् आच्छादनात् मुक्तः (सूर्यः) घनबन्धनात् कारावासरूपात् मुक्तो राजा, कन्याग्रहणात् कन्याराशौ सङ्क्रमात् प्रद्योततनयापहरणाच्च परां तुलाम् तुलराशिम् परमं प्रकर्षञ्च प्राप्य आसाद्य अधिगत-

कन्याका अपहरण करके कौशाम्वी आगये हैं। क्या वहीं जाऊं? (निःश्वास छोड़कर, अपनी अवस्था देखता हुआ) राजपुत्रीके विना वहाँ जाकर क्या कहूँगा? अरे आज ही तो दृढ़वर्माने मुझसे कहा है—पूजनीय महाराज दृढवर्मा जीवन में हैं, भयानक आघातसे क्षत विक्षत हो गये हैं और बद्ध हैं। अतः अब स्वामीके ही पास जाकर उनके चरणोंकी सेवामें अपने जीवनके वचे हुए दिन सफल करूँगा। (घूमकर और ऊपर देखकर) शरद ऋतुकी यह धूप वड़ी भयङ्कर है, जिसे इस प्रकार नानाप्रकारके कष्टोंसे सन्तप्त मैं भी तीक्ष्ण समझ रहा हूँ।

यह सूर्य जो मेघके बन्धनोंसे छुटकारा पा चुका है, कन्या राशिमें रह तदुत्तर तुल राशिको प्राप्तकर प्रखर किरण हो तप रहा है, जैसे वत्सराज अतिदृढ़ कारागारसे मुक्त होकर प्रद्योतकी कन्या वासवदत्ताको प्राप्त करनेसे उत्कर्ष शाली हो धराधाम पर प्रतापसे तप रहे हैं ॥ ५ ॥ (जाता है)

विष्कम्भक समाप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—

भृत्यानामविकारिता परिगता दृष्टा मतिर्मन्त्रिणां
मित्राण्यप्युपलक्षितानि विदितः पौरानुरागोऽधिकम् ।
निर्व्यूढा रणसाहसव्यसनिता स्त्रीरत्नमासादितं
निर्व्याजादिव धर्मतः किमिव न प्राप्तं मया बन्धनात् ॥ ६ ॥

स्वधामा प्राप्तस्वीयतेजाः प्राप्तस्वगृहश्च रविरुदयनो वत्सराज इव प्रतपति दीप्यते । मेघाच्छादनान्मुक्तः कन्याराशिं प्राप्य परतः प्राप्ततुलश्च सूर्य इव प्रद्योतकृताद्बन्धनादुन्मुक्तस्तदीयकन्यावासवदत्ताग्रहणादधिकायितसाम्राज्यशक्तिरुदयन्ते दीप्यत इत्यर्थः । 'घनबन्धन' 'कन्या' 'तुला' 'धाम' शब्देषु श्लेषेणोपमा निरुह्यते । खलु प्रसिद्धौ स्पष्टमन्यदार्याप्रभेदो वृत्तम् ॥ ५ ॥

भृत्यानामिति० भृत्यानाम् स्वीयानां दासानाम् अविकारिता पूर्वावस्थातो भेदाभावः परिगता लक्षिता, मन्त्रिणाम् अमात्यानाम् मतिः ऊहापोहबुद्धिः दृष्टा प्रत्यक्षमीक्षिता, मित्राणि सुहृदः अपि उपलक्षितानि कार्यतो ज्ञातानि, अधिकम् सम्यक् पौरानुरागः नागरजनस्नेहः विदितः ज्ञातः, रणसाहसव्यसनिता युद्धे याऽऽसक्तिस्तत्रव्यसनिता प्रेमातिशयः निर्व्यूढा निर्वर्त्तिता, स्त्रीरत्नं वासवदत्तारूपं ललनारत्नम् आसादितम् प्राप्तम् , तदित्थम् मया निर्व्याजात् अकपटभावेन कृतात् धर्मतः धर्मात् धर्म्यादनुष्ठानात् इव बन्धनात् कारावासात् मया किमिव न प्राप्तम् ? सर्वं प्राप्तमिति काकुबललभ्यध्वनिः । यथा निर्व्याजविहितोधर्मः सर्वविधमपीष्टमर्थमुपपादयति तथैवेदं मम बन्धनमपि सर्वमेव ममाभिलाषं समपादयत्तथाहि बन्धनास्थितेन यथा स्वानुपस्थितावपि भृत्या न मम विकुर्वत इति ज्ञातम् , मम मन्त्रिणो निपुणमतय इति तदाचरणैर्दृष्टम् , मित्राणि समदुःखसुखानीति विदितम् , पौराः मय्यनुरज्यन्त इति ज्ञातम् , रणे कठिनं साहसं निरूढम् , स्त्रीरत्नं चाधिगतमिति तात्पर्यम् । शार्दूलविक्रीडितमेव वृत्तम् ॥ ६ ॥

(अनन्तर राजा और विदूषकका प्रवेश)

राजा—अकपट भावसे अनुष्ठित धर्मसे जिस प्रकार सभी पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं उसी तरह बन्धनसे मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया, मेरी अनुपस्थितिमें भी नौकरोंकी अविकृतभावसे कार्यतत्परता देख ली, मन्त्रीयोंकी बुद्धिमानी का पता पालिया, मित्रोंका परिचय हो गया, खास कर पुरवासियोंके स्नेहका ज्ञान होगया, युद्धमें अपेक्षित साहस की उपलब्धि हो गई और स्त्रीरत्नकी प्राप्ति भी हो गई ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विदूषकः—(सरोषम्) भो वयस्य, कथं तमेव दास्याः पुत्रं बन्धनहतकं प्रशंससि। तमिदानीं विस्मर। यं तथा नवग्रह इव गजपतिः खलखलायमानलोहश्रृङ्खलाबन्धप्रतिस्खलच्चरणः शून्यदुष्करहृदयसन्तापो रोषवशोत्तम्भितदृष्टिर्गुरुककरस्फोटितधरणिमार्गो रजनीष्वप्यनिद्रासुखमनुभूतोऽसि। (भो वअस्स, कहं तं एव्व दासीए उत्तं बन्धणहदअं पसंसेसि। तं दाणिं विसुमरेहि जं तह णवग्गहो विअ गअवई खलखलाअमाणलोहसिङ्खलाबन्धपडिक्खलन्तचलणो सुण्णदुक्खरहिअअसन्दावो रोसवसुत्तम्भिददिट्ठी गरुअकरफोडिअधरणिमग्गो रअणीसु वि अणिद्दासुहं अणुहूदोसि।)

राजा—वसन्तक, दुर्जनः खल्वसि। पश्य,

दृष्टं चारकमन्धकारगहनं नो तन्मुखेन्दुद्युतिः
पीडा ते निगलस्वनेन मधुरास्तस्या गिरो न श्रुताः।
क्रूरा बन्धनरक्षिणोऽद्य मनसि स्निग्धाः कटाक्षा न ते

दास्याः पुत्रम्–निन्दनीयम्, 'षष्ठ्या आक्रोशे' इत्यलुक्, तेन निन्दाध्वनिः। प्रशंससि–स्तौषि, नवग्रहः–नवबन्धनपतितः। श्रृङ्खला–निगडः। दुष्करः–सोढुमशक्यः। गुरुककरस्फोटितधरणिमार्गः–बाह्वाहतधरणितलः।

दृष्टं चारकमिति० अन्धकारगहनम् तमोनिविडम् चारकम् बन्धनालयः दृष्टं वीक्षितं तन्मुखेन्दुद्युतिः वासवदत्तामुखचन्द्ररुचिः नो दृष्टेति लिङ्गव्यत्ययेनान्वयः, निगलस्वनेन श्रृङ्खलाध्वनिना ते तव पीडा कष्टं (जायते) तस्याः वासवदत्ताया मधुराः श्रुतिप्रिया गिरः वाचः न श्रुताः कर्णरसापनीकृताः। अद्य सम्प्रति ते तव मनसि क्रूराः भयङ्कराचाराः बन्धनरक्षिणः कारापालाः एव, स्निग्धाः प्रेमप्लुताः

विदूषक—(क्रोधसे) अजी वयस्य, क्यों उस अभागे बन्धनकी ही तारीफ किया करते हो। उसे अब भूल जाओ, जिसके कारण नवीन बन्धनमें पड़े हुए हाथीके समान लोहेकी बेड़ी चरणोंमें खनखनाती रहती थी, भयानक और अपरिहार्य हृदय सन्ताप हुआ करता था, रोषसे आंखें तनी रहती थीं, जमीन पर हाथ पटकते रहते थे और रातमें भी नींद नहीं आती थी।

राजा—वसन्तक, तुम दुष्ट है, देखो—

तुमने केवल अन्धकारपूर्ण कारागृह ही देखा, उसके मुखचन्द्रके दर्शन नहीं किये, तुम्हें बेड़ीके शब्दसे पीड़ा हुई किन्तु उसकी मीठी आवाज तुमने नहीं सुनी, तुम्हारे हृदयमें क्रूर प्रहरियों की याद है किन्तु उसके स्निग्ध कटाक्षोंकी याद नहीं है, इस तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोषान्पश्यसि बन्धनस्य न पुनः प्रद्योतपुत्र्या गुणान् ॥ ७ ॥

विदूषकः—(सगर्वम्) भो यदि तावद्बन्धनं सुखनिबन्धनं भवति । तत्कस्मात्त्वं दृढवर्मा बद्ध इति कलिङ्गराजस्योपरि रोषं बध्नासि । (भो जइ दाव बन्धणं सुहणिबन्धणं होइ । ता कीसं तुमं दिढवम्मा बद्धोत्ति कलिङ्गरण्णो उवरि रोसं बन्धेसि ।)

राजा—(विहस्य) धिङ्मूर्ख, न खलु सर्वो वत्सराजः । य एवं वासवदत्तामवाप्य बन्धनान्निर्यास्यति । तदास्तां तावदियं कथा । विन्ध्यकेतोरुपरि बहून्यहानि विजयसेनस्य प्रेषितस्य । न चाद्यापि तत्सकाशात्कश्चिदागतः । तदाहूयतां तावदमात्यो रुमण्वान् । तेन सह किंचिदालपितुमिच्छामि ।

(प्रविश्य)

कटाक्षाः वासवदत्तायाः कुटिलदृक्पाताः न सन्तीति शेषः, तदेवं त्वं बन्धनस्य कारागारस्य दोषान्पश्यसि अवगुणगणान् विभावयसि, प्रद्योतपुत्र्याः वासवदत्तायाः गुणान् सौन्दर्यस्नेहप्रभृतीन् न पुनः विभावयसीत्यर्थः । त्वं दुष्टहृदयोऽत एव कारावासस्य सर्वमप्यवगुणं सङ्कलयसि, गुणं पुनर्नानुध्यायसि, विचारचतुरा हि जना उभयमपि पक्षं विभाव्य निन्दन्ति स्तुवन्ति वेति भावः ॥ ७ ॥

सुखनिबन्धनम्–आनन्दसाधनम् । रोषं बध्नासि–कुप्यसि ।

सर्वः–साधारणलोकः, नहि सर्वेषां बन्धनं सुखाय किन्तु प्राक्तनसौभाग्यबलाढ्यस्य कस्यचिदेवेति तदहं वासवदत्तालाभमहिम्ना स्वं बन्धनं प्रशंसन्नपि दृढवर्मणो बन्धनं शोचामीति प्रघट्टकार्थः । तत्सकाशात्–विजयसेन पार्श्वात् । आहूयताम्–आकार्यताम् । आलपितुम्–वार्तालापं कर्त्तुम् ।

तुम बन्धनके दोष ही भर देखते हो, प्रद्योत पुत्री वासवदत्ताके गुण नहीं देख रहे हो ॥७॥

विदूषक—(गौरवसहित) अजी, यदि बन्धन सुखद होता हो तो फिर तुम—दृढ़वर्माको बन्धनमें रख छोड़ा है इसीलिये कलिङ्गराज पर क्रोध करते हो ?

राजा—(हंसकर) धिङ्मूर्ख, सभी वत्सराज थोड़े हैं जो वासवदत्ता लेकर बन्धनसे निकलेंगे । छोड़ो इस प्रसङ्गको । विजयसेनको विन्ध्यकेतुके ऊपर चढ़ाई करनेके लिये भेजा, वहाँसे आज तक कोई आया नहीं । अतः अमात्य रुमण्वान्को बुलाओ, उनसे कुछ बातें करना चाहता हूँ ।

(प्रवेश करके)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीहारी—जयतु जयतु देवः। एष खलु विजयसेनः, अमात्यो रुमण्वानपि प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ। (जेदु जेदु देव्वो। एसो क्खु विजअसेनो अमच्चो रुमण्णो वि पडिहारभूमिं उवट्ठिआ।)

राजा—त्वरितं प्रवेशय तौ।

प्रतीहारी—यद्देव आज्ञापयति। (जं देवो आणवेदि।)

[इति निष्क्रान्तः]

(ततः प्रविशति रुमण्वान्विजयसेनश्च)

रुमण्वान्—(विचिन्त्य)

तत्क्षणमपि निष्क्रान्ताः कृतदोषा इव विनापि दोषेण।
प्रविशन्ति शङ्कमाना राजकुलं प्रायशो भृत्या॥ ८॥

(उपसृत्य) जयतु देवः।

राजा—(आसनं निर्दिश्य) रुमण्वन्, इत आस्यताम्।

रुमण्वान्—(सस्मितमुपविश्य) एष खलु जितविन्ध्यकेतुर्विजयसेनः प्रणमति।

तत्क्षणमपि इति० तत्क्षणम् तस्मिन्नेव समये निष्क्रान्ताः बहिर्याताः, दोषेण विनाऽपि अकृतदोषा अपि कृतदोषाः सापराधा इव शङ्कमानाः शङ्कायुतचित्ताः भृत्याः प्रायशः भूयसा राजकुलं प्रविशन्ति। ये भृत्यास्तत्क्षणमेव राजकुलाद् बहिर्याताः, कमपि लघुतममपि नापराधं कृतवन्तस्तेऽपि कृतदोषा इव शङ्कितचेतसो राजकुलं विशन्ति तदस्ति कश्चन राजकुलमहिमप्रकर्ष इति भावः॥ ८॥

प्रतीहारी—जय हो महाराजकी, जय हो, यह विजयसेन और अमात्य रुमण्वान् प्रतीहारभूमिमें उपस्थित हैं [प्रतीक्षा स्थानमें खड़े हैं]

राजा—उन्हें शीघ्र बुलाओ।

प्रतीहारी—महाराजकी जैसी आज्ञा। [जाता है]

[अनन्तर रुमण्वान् और विजयसेन का प्रवेश]

रुमण्वान्—(सोचकर) जो अभी अभी राजभवनसे बाहर निकले हैं, ऐसे भी भृत्य प्रायः राजकुलमें सशङ्कभावसे प्रवेश करते हैं, उन्हें ऐसा लगता है कि कुछ अपराध हो गया हो, यद्यपि उनका कोई अपराध नहीं हुआ रहता है॥ ८॥

(समीप जाकर) जय हो महाराजकी।

राजा—(आसन दिखाकर) रुमण्वान्, आप यहाँ बैठिये।

रुमण्वान्—(मुस्कुराते हुए बैठकर) यह विन्ध्यकेतुविजयी विजयसेन प्रणाम करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(विजयसेनस्तथा करोति)

राजा—(सादरं परिष्वज्य) अपि कुशली भवान् ।

विजयसेनः—अद्य स्वामिनः प्रसादात् ।

राजा—विजयसेन, स्थीयताम् ।

(विजयसेन उपविशति)

राजा—विजयसेन, कथय विन्ध्यकेतोर्वृत्तान्तम् ।

विजयसेनः—देव ! किमपरं कथयामि । यादृशः स्वामिनि कुपिते।

राजा—तथापि विस्तरतः श्रोतुमिच्छामि ।

विजयसेनः—देव श्रूयताम् । इतो वयं देवपादादेशाद्यथादिष्टेन करितुरगपदातिसैन्येन महान्तमप्यध्वानं दिवसत्रयेणोल्लङ्घ्य प्रभातवेलायामतर्किता एव विन्ध्यकेतोरुपरि निपतिताः स्मः ।

प्रसादात्-अनुग्रहात् ।

स्वामिनि-देवे भवति । कुपिते-क्रुद्धे । भवतः कोपस्यावश्यं भोक्तव्यं मृत्युरूपं फलं तेन मुक्तमिति तदुत्तराशयः ।

देवपादादेशात्-भवदाज्ञामादाय । यथादिष्टेन-भवता निर्दश्यमानप्रकारेण । करितुरगपदातिसैन्येन-हस्त्यश्वपादचारिसैन्यसमुदयेन । दिवसत्रयेण-दिनत्रितयेन । अतर्किताः-अननुमितागमनाः । निपतिताः-आक्रमणं कृतवन्तः ।

(विजयसेन प्रणाम करता है)

राजा—(सादर गलेसे लगाकर) आप अच्छे तो हैं ?

विजयसेन—अब आपकी दयासे अच्छा हूं ।

राजा—विजयसेन, आप वैठिये ।

(विजयसेन वैठता है)

राजा—विजयसेन, विन्ध्यकेतुका समाचार सुनाइये ।

विजयसेन—और क्या सुनाऊं, आपके कुपित होने पर जैसा होना चाहिये वैसा ही है ।

राजा—फिर भी विस्तारसे सुनना चाहता हूं ।

विजयसेन—महाराज, सुनिये । हम लोग आपके आदेशानुसार यहाँसे चलकर हाथी घोड़े और पैदल सेनाके साथ तीन दिनोंमें उस दीर्घमार्गको तय कर प्रभात कालमें ही एकाएक विन्ध्यकेतुके ऊपर चढ़ गये ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा—ततस्ततः ।

विजयसेनः—ततः सोऽप्यस्मद्बलतुमुलकलकलाकर्णनेन प्रतिबुद्धः केसरीव विन्ध्यकन्दरान्निर्गत्य विन्ध्यकेतुरनपेक्षितबलवाहनो यथासंनिहित-कतिपयसहायः सहसा स्वनामोद्घोषयन्नस्मानभियोद्धुं प्रवृत्तः ।

राजा—(रुमण्वन्तमवलोक्य सस्मितम्) शोभितं विन्ध्यकेतुना । ततस्ततः ।

विजयसेनः—ततोऽस्माभिः 'अयमसौ' इति द्विगुणतरबद्धमत्सरोत्साहैर्महता विमर्देन निःशेषितसहाय एक एव विमर्दिताधिकबलक्रोधवेगो दारुणतरं संप्रहारमकरोत् ।

राजा—साधु विन्ध्यकेतो, साधु साधु ।

विजयसेनः—किं बा वर्ण्यते । देव, संक्षेपतो विज्ञापयामि ।

सः–विन्ध्यकेतुः । अस्मद्बलतुमुलकलकलाकर्णनेन–अस्मत्सैन्यशब्दश्रवणेन । प्रतिबुद्धः–लब्धचेतनः । विन्ध्यकन्दरात्–विन्ध्यपर्वतान्तःस्थलात् । अनपेक्षितबलवाहनः–अनाकलितसैन्ययानादिसहायः । यथासन्निहितकतिपयसहायः–समीपस्थकतिचित्सहायकानुगतः शोभितम्–शोभनमाचरितम् ।

द्विगुणतरबद्धमत्सरोत्साहैः–द्विगुणीभूतद्वेषोत्साहैः । विमर्देन–आक्रमणेन । निःशेषितसहायः–क्षपिताखिलानुचरः । विमर्दिताधिकबलक्रोधवेगः–अधिकसैन्यसंहारसमुद्भूतकोपप्रकर्षः । सम्प्रहारम्–युद्धम् ।

राजा—उसके वाद ?

विजयसेन—इसके वाद वह विन्ध्यकेतु हमारी सेनाकी घोर गर्जनाके सुननेसे प्रतिवुद्ध सिंहकी तरह विन्ध्यकन्दरसे निकलकर सेना और सवारीकी अपेक्षा छोड़कर समीपमें रहनेवाले चन्दसहायकोंको साथले सहसा अपने नामकी घोषणा करता हुआ हमसे लडने लगा ।

राजा—(रुमण्वान्की ओर देखकर मुस्कुराते हुए) विन्ध्यकेतुने अच्छा किया । इसके वाद ?

विजयसेन—'यही है विन्ध्यकेतु' इस ख्यालसे हमारा द्वेष और उत्साह दोनों दुगुने हो गये, हमने वड़ी धौंसके साथ उसके सभी सहायकोंको समाप्त कर दिया, फिर भी वह अकेले ही अपने क्रोध वेगसे हमारी सेनाको मर्दित कर भयानक युद्ध करने लगा ।

राजा—वाह विन्ध्यकेतु, वाह वाह !!

विजयसेन—कितना वर्णन किया जाय, संक्षेपमें वताता हूँ—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पादातं पत्तिरेव प्रथमतरमुरःपेषमात्रेण पिष्ट्वा
दूरन्नीत्वा शरौघैर्हरिणकुलमिव त्रस्तमश्वीयमाशाः।
सर्वत्रोत्सृष्टसर्वप्रहरणनिवहस्तूर्णमुत्खाय खड्गं
पश्चात्कर्तुं प्रवृत्तः करिकरकदलीकाननच्छेदलीलाम् ॥९॥
एवं बलत्रितयमाकुलमेक एव
कुर्वन्कृपाणकिरणच्छुरितांसकूटः।
शस्त्रप्रहारशतजर्जरितोरुवक्षाः
श्रान्तश्चिराद्विनिहतो युधि विन्ध्यकेतुः ॥१०॥

पादातमिति॰ प्रथमतरम् आदौ पत्तिः अनपेक्षितयानतया पादचारी सन् एव पादातम्, पदातिसैन्यसमुदयम् उरःपेषमात्रेण केवलं वक्षसा घर्षणेन पिष्ट्वा चूर्णयित्वा विनाश्येत्याशयः। (ततः) शरौघैः बाणवृष्टिभिः त्रस्तम् भीतम् अश्वम् हरिणकुलम् मृगयूथमिव दूरम् आशाः दिशः नीत्वा प्रापय्य दूरं विद्राव्येत्यर्थः, सर्वत्र सैन्यनिवेशस्थलावच्छेदेन उत्सृष्टः विकीर्णः सर्वेषाम् सर्वविधानाम् प्रहरणानाम् आयुधानाम् निवहः समूहो येन स तथोक्तः विन्ध्यकेतुः तूर्णम् वेगात् खड्गम् असिम् उत्खाय कोशादाकृष्य पश्चात् खड्गकर्षणानन्तरम् करिणाम् हस्तिनाम् कराः शुण्डाः एव कदल्यः रम्भातरवः तासाम् काननं वनं समूहस्तस्यच्छेदलीलाम् कर्त्तनकेलिम् कर्त्तुं प्रवृत्तः। युद्धाय सन्नद्धोऽसौ विन्ध्यकेतुः पादचारिसैन्यसमुदयमुरसा पिष्ट्वैव विनिपात्य बाणवर्षात्रस्तमश्वसमूहं दिक्षु विद्राव्य सर्वतो नानाविधान्यस्त्राणि च निक्षिप्यासिमादायचान्ते हस्तिशुण्डादण्डकाननं कर्त्तितुं प्रावर्त्ततेति तात्पर्यम्। वृत्तं शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ९ ॥

एवमिति॰ कृपाणकिरणच्छुरितांसकूटः खड्गमयूखप्रभासितस्कन्धशिखरः विन्ध्यकेतुः एवम् प्रागुक्तया पद्धत्या बलत्रितयम् हस्तिघोटकपादचारिनामकं त्रिविधम् अपि सैन्यम् एकः सहायकान्तररहित एव आकुलम् पर्यस्तम् कुर्वन् विदधानः शस्त्रप्रहारेण आस्माकजनविहितखड्गकुन्तादिनानाविधप्रहरणनिपातेन जर्ज-

पैदल चलकर पादचारि सैन्यको छातीसे लेकर मसल दिया, बाणवर्षासे घोड़ोंको भयभीत करके हरिणोंकी तरह दूर भगा दिया, सब ओर सभी तरहके अस्त्रोंको छोड़कर पीछे शीघ्रतासे तलवार निकालकर हाथीके शुण्डादण्डरूपी कदलीवनके छेदनमें प्रवृत्त हो गया ॥ ९ ॥

इस तरह तलवारकी चमकसे अपने उन्नत स्कन्धदेशको चमकाता हुआ अकेला ही वह हमारे तीनों प्रकारके सैन्यको तवाह करने लगा, किन्तु हमारे शस्त्रप्रहारसे उसकी जङ्घा और चौड़ी छाती चलनी हो गई, देर तक लड़ते लड़ते वह थककर युद्धमें मारागया ॥१०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा—रुमण्वन्, सत्पुरुषोचितं मार्गमनुगच्छतो यत्सत्यं व्रीडिता एव वयं विन्ध्यकेतोर्मरणेन।

रुमण्वान्—देव, त्वद्विधानामेव गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति।

राजा—विजयसेन, अप्यस्ति विन्ध्यकेतोरपत्यम्? यत्रास्य परितोषस्य फलं दर्शयामि।

विजयसेनः—देव, इदमपि विज्ञापयामि। एवं सबन्धुपरिवारे हते विन्ध्यकेतौ, तमनुसृतासु सहधर्मचारिणीषु, विन्ध्यशिखराश्रितेषु जनपदेषु, शून्यभूते तत्स्थाने 'हा तात हा तात' इति कृतकृपणप्रलापा विन्ध्यकेतो-

---

रितम् खण्डखण्डं कृतम् ऊरुवक्षः जङ्घा हृदयं यस्य तादृशः सन् श्रान्तः योद्धुमक्षमः सन् चिरात् सुचिरं युद्ध्वा युधि युद्धे विनिहतः मारितः। अयमाशयः—खङ्गं भ्रामयतो विन्ध्यकेतोरंसदेशस्तत्प्रभया मण्डलाकारया चकासे, सहि सहायशून्योऽपि मदीयं त्रिप्रकारकमपि सैन्यमाकुलयत्, परंमदीययोधैः प्रहृतैः शस्त्रैस्तस्याङ्गानिक्षतानि, तन्निस्सरद्रुधिरधारया श्रान्तिरिव तेनान्वभावि, तदित्थं चिरं युध्यमानस्य तस्य वधः कर्त्तुमपारीति ॥ १० ॥

सत्पुरुषोचितम्–वीरपुरुषाभ्यस्तम्। मार्गम्–पन्थानं सम्मुखयुद्धे प्राणत्यागम्। व्रीडिताः–लज्जिताः।

तमनुसृतासु–तेन सह सतीभावं प्राप्तासु। सहधर्मचारिणीषु–स्त्रीषु। कृतकृपणप्रलापाकृपणं रुदती। वेश्मनि–गृहे। आभिजात्यानुरूपा–सत्कुलोत्पन्नत्वयोग्या।

राजा—रुमण्वन्, सत्पुरुषके मार्गको अनुसरण करनेवाले विन्ध्यकेतुके मरणसे सचमुच हम लज्जित हो गये हैं।

रुमण्वान्—महाराज, आपके समान गुणज्ञ लोगोंको ही शत्रुओंके गुणसे आनन्द होता है।

राजा—विजयसेन, क्या विन्ध्यकेतुकी कोई सन्तान है जिसपर कि इस सन्तोषका फल दिखाया जाय।

विजयसेन—महाराज, यह भी बताता हूँ। इस प्रकार बन्धुपरिवार समेत विन्ध्यकेतु के मारे जाने पर और स्त्रियोंके सती हो जाने पर, गांवके लोग विन्ध्यके शिखरों पर चले गये, वह स्थान उजाड़ हो गया, विन्ध्यकेतुके घरमें—'हा तात हा तात' इस प्रकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेंश्मन्याभिजात्यानुरूपा कन्यका 'तद्दुहिता' इत्यस्माभिरानीता द्वारि तिष्ठति । तां प्रति देवः प्रमाणम् ।

राजा—यशोधरे, गच्छ गच्छ । त्वमेव वासवदत्तायाः समर्पय । वक्तव्या च देवी—'भगिनीबुद्ध्या त्वयैव सर्वदा द्रष्टव्या । गीतनृत्तवाद्यादिषु विशिष्टकन्यकोचितं सर्वं शिक्षयितव्या । यदा वरयोग्या भविष्यति तदा मां स्मारय' इति ।

प्रतीहारी—यद्देव आज्ञापयति । (जं देवो आणवेदि)

(इति निष्क्रान्ता)

(नेपथ्ये वैतालिकः)

लीलामज्जनमङ्गलोपकरणस्नानीयसंपादिनः
सर्वान्तःपुरवारविभ्रमवतीलोकस्य ते संप्रति ।

दुहिता-पुत्री । विशिष्टकन्यकोचितम्—सत्कुलोत्पन्नकन्यावत् । वरयोग्या-प्राप्तविवाहयोग्यावस्था ।

लीलेति० सम्प्रति मध्याह्ने ते तव स्नानभूः स्नानार्थं कल्पिता भूमिः लीलया विलासेन यत् मज्जनम् स्नानम् तदेव मङ्गलम् ऐहिकामुष्मिककल्याणसाधकतया शुभं कर्म तत्र उपकरणानि साधनसामग्रीभावेन प्रसिद्धानि स्नानीयचूर्णप्रभृतीनि तेषां सम्पादिनः कल्पकस्य, सर्वस्य अन्तःपुरवासिनः वारविभ्रमवती लोकस्य वेश्याजनस्य, आयासेन स्नानोपकरणसम्पादनव्यग्रतया जातेन श्रमेण स्वलद्भिः

विलाप करती हुई उसकी लड़की पाई गई जो सत्कुलके अनुरूप है, हम उसे यहाँ ले आये हैं । इसके वाद आपकी जैसी आज्ञा ।

राजा—यशोधरे, जाओ जाओ, तुम उसे वासवदत्ताको सौंप दो । देवीसे कहना कि इसे वहनकी दृष्टिसे सदा देखा करें, नृत्यगीत वाद्य आदिमें विशिष्ट कन्याकी तरह शिक्षा दिलावें, जब विवाहके योग्य हो जाय तो हमको याद दिलावें ।

प्रतीहारी—महाराजकी जैसी आज्ञा ।

[जाती है]

[नेपथ्यमें वैतालिक]

तुम्हारे सविलास स्नान रूप शुभकार्यमें अपेक्षित स्नानीय चूर्ण आदि प्रस्तुत करने वाली समस्त अन्तःपुरवासिनी विलासिनी जनके श्रमवश खिसके हुए सूक्ष्मवस्त्रसे स्फुट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आयासस्खलदंशुकाव्यवहितच्छायावदातैः स्तनै-
रुत्क्षिप्तापरशातकुम्भकलशेवालंकृता स्नानभूः ॥ ११ ॥

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये कथं नभोमध्यमध्यास्ते भगवान्सहस्र-दीधितिः । संप्रति हि,

आभात्यर्कांशुतापक्कथदिव शफरोद्वर्तनैर्दीर्घिकाम्भ-
श्छत्राभं नृत्तलीलाशिथिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति ।

स्रंसमानैः अंशुकैः वस्त्रैः अव्यवहिता अपिहिता छाया कान्तिर्येषां तैस्तथाभूतैः अवदातैः स्वभावनिर्मलैश्च स्तनैः उत्क्षिप्ताः ऊर्ध्वंधृताः अपरे जलपूर्णस्वर्णघटातिरिक्ताः शातकुम्भकलशा यत्र सा तथोक्ता अलङ्कृता इव शोभासंभृता विभाति इतिशेषः। अधुना मध्याह्नमागतं दृष्ट्वा तव स्नानकालोऽयमिति बुद्ध्या स्नानसामग्रीसङ्कलनव्यग्रास्तदधिकृता वारवनितास्सञ्चरन्ति, चरन्तीनां च तासामायासवशादंशुकानि स्खलन्ति येन तासां स्वर्णकलशोपमाः स्तनाः प्रकाशी भवन्ति, तेन च त्वदीयायां स्नानभुवि जलभृतस्वर्णघटातिरिक्ता अपि उपरि देशेन्यस्ताः तद्वारवनितास्तनात्मकाः स्वर्णकलशाः प्रतीयन्ते, तैश्चालङ्कृता तव स्नानभूमिरिति भावः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। 'तपनीयं शातकुम्भं रुक्मं हेम च हाटकम्' इति पारिजातकोशः। स्पष्टमितरत् ॥ ११ ॥

नभो मध्यम्–आकाशमध्यभागम् । सहस्रदीधितिः–सूर्यः ।

आभातीति० दीर्घिकायाः वत्सराजान्तःपुरसमीपगाया वाप्याः अम्भः जलम् शफराणाम् लघुमत्स्यानाम् उद्वर्त्तनैः विवर्तनैः अर्कांशुतापेन सूर्यकिरणसंतापेन क्वथत् उत्तपत् इव । (यथान्यज्जलं क्वाथावस्थां गतं स्वभावेनोच्छलति, तथैवास्या वाप्या अपि जलं सूर्यकरकृततापात् क्वथदिव प्रतिभाति, शफरोद्वर्त्तनं च तत्र जलोच्छलनम्) शिखी मयूरः नृत्तलीलायाम् नर्त्तनकेलौ शिथिलम् अक्षमतया निवृत्त

दृश्यमान छायावाले स्तनोंसे तुम्हारी यह स्नानभूमि ऐसी दीखरही है कि मानों यहाँ पर दूसरे स्वर्णघट समुदाय ऊपर उठाकर रखे गये हों। (एक स्वर्णघट तो जलपूर्ण करके नीचे रखे ही हैं, दूसरे स्वर्णघट समान यह स्तन हैं जो ऊपर उठाकर रखे गये हैं] ॥११॥

राजा—(ऊपरकी ओर देखकर) क्यों, भगवान् सूर्य आकाशके मध्यमें आ गये । इस समय—

वापीके जलमें शफरी नामक छोटी छोटी मछलियाँ उछल रही हैं, मानों सूर्यके किरणोंसे सन्तप्त वापीका जल उबल रहा हो, नाचनेसे थके हुए बर्हको भी मयूरगण आतपनिवारणार्थ छातेकी तरह फैला रहा है, वृक्षके आलवालमें न्यस्त जलके लोभसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः
सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ॥१२॥

रुमण्वन्, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । प्रविश्याभ्यन्तरमेव कृतयथोचितक्रियाः सत्कृत्य विजयसेनं कलिङ्गोच्छित्तये प्रेषयामः ।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति प्रथमोऽङ्कः ।

चेष्टम् अपि बर्हभारम् कलापसञ्चयम् छत्राभम् छायालाभलोभेन छत्राकारप्रसारितम् करोति । हरिणशिशुः मृगशावकः आलवालाम्बूनि वृक्षाधोदेशे तत्सेचनार्थं जलावस्थितये निर्मिते गर्त्तविशेषे स्थिते पयसि लुब्धः पिपासुतया लालसायुक्तः सन् तरूणाम् वृक्षाणाम् छायाचक्रम् मण्डलाकारां छायाम् उपैति उपसर्पति । छायाचक्रे जलभ्रमेण तत्रोपतिष्ठत इत्यर्थः । मधुकरः भृङ्गः सद्यः गजस्य कपोलम् गण्डस्थलम् त्यक्त्वा विमुच्य कर्णपालीम् कर्णाभ्यन्तरदेशमनातपस्थानरूपम् विशति । तप्ते पयसि शफराः विवर्त्तन्ते, मन्ये पयः सूर्यकिरणसन्तापात् क्वथदिवास्ति, नृत्ताद्विरतमपि स्वीयं कलापं मयूरः केवलच्छायालाभदृष्ट्या छत्ररूपेण प्रसारयति, हरिणपोतो वृक्षालवालस्थितपयोलाभलोभेन छायामुपैति तरूणामथ च सुगन्धिगजमदरसिकोऽपि भ्रमरः कपोलदेशं गजस्य हित्वा छायावत् कर्णान्तःस्थानं प्रविशतीत्याशयः ॥ १२ ॥

इति मैथिलपण्डित श्रीरामचन्द्रमिश्रप्रणीते प्रियदर्शिका 'प्रकाशे'
प्रथमाङ्कप्रकाशः ।

हरिणोंके बच्चे वृक्षकी छायामें जा रहे हैं, और भ्रमर तत्काल हाथीके कपोल प्रदेशको (जहाँ वह दानवारिकी गन्ध पर आकृष्ट हो बैठा था) छोड़कर हाथीके कानोंकी छायामें छिप रहा है ॥ १२ ॥

रुमण्वान् , उठिये उठिये । अभ्यन्तरमें जाकर यथोचित आचार करके विजयसेनको सत्कृत कर कलिङ्गराजके उच्छेदको भेजें ।

[सबका प्रस्थान]

प्रथम अङ्क समाप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः—ननु भणितोऽस्मीन्दीवरिकया, यथा—'आर्य, उपवासनियमस्थिता देवी वासवदत्ता स्वस्तिवायननिमित्तं शब्दापयेत्' इति। तद्यावद्धारागृहोद्यानदीर्घिकायां स्नात्वा देवीपार्श्वं गत्वा कुक्कुटवादं करिष्यामि। अन्यथा कथमस्माभिः सदृशा ब्राह्मणा राजकुले प्रतिग्रहं कुर्वन्ति। (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथमेष प्रियवयस्योऽद्य देव्या विरहोत्कण्ठाविनोदननिमित्तं धारागृहोद्यानमेव प्रस्थितः। तद्यावद्वयस्येन सहैव गत्वा यथोदितमनुष्ठास्यामि। (णं भणिदोह्मि इन्दीवरिआए, जह—'अज्ज, उववासणिअमट्ठिआ देवी वासवदत्ता सोत्थिवाअणणिमित्तं सद्दावेदि'त्ति। ता जाव धाराघरुज्जाणदिग्घिआए ण्हाइअ देवीपासं गदुअ कुक्कटवादं करिस्सं। अण्णहा कहं अह्माणं सरिसा बह्मणा राअकुले पडिग्गहं करेन्ति। कहं एसो पिअवअस्सो अज्ज देवीए विरहुक्कण्ठाविणोदणणिमित्तं धाराघरुज्जाणं एव्व पत्थिदो। ता जाव वअस्सेण सह एव्व गदुअ जहोदिदं अणुचिठ्ठिस्सं)

(ततः प्रविशति सोत्कण्ठो राजा)

उपवासनियमस्थिता–उपवासाख्यव्रतपरा। शब्दापयेत्–आकारयेत्। दीर्घिकायाम्–वाप्याम्। कुक्कुटवादम्–कुक्कुटरुतमिव रुतम्। विरहोत्कण्ठाविनोदननिमित्तम्–विरहकृतमौत्सुक्यं शमयितुम्।

[विदूषकका प्रवेश]

विदूषक—इन्दीवरिकाने कहा है कि—'आर्य, उपवास नियममें वर्त्तमान देवी वासवदत्ता स्वस्तिवायनके लिये बुला सकती हैं।' अतः तबतक धारागृहके बागके तालावमें स्नान कर देवीके समीप जाकर मुरगेका शब्द करूंगा। अन्यथा हमारे ऐसे ब्राह्मणोंको राजकुलमें कहाँ प्रतिग्रह मिलेगा। क्यों, यह प्रियवयस्य आज देवीके मनोविनोदार्थ धारागृहकी फुलवारीकी ओर ही जा रहे हैं। तब तो वयस्यके साथ ही जाकर यथोक्त कार्य सम्पादन करता हूँ।

[उत्कण्ठित अवस्थामें राजाका प्रवेश]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा—

क्षामां मङ्गलमात्रमण्डनभृतं मन्दोद्यमालापिनी-
मापाण्डुच्छविना मुखेन विजितप्रातस्तनेन्दुद्युतिम्।
सोत्कण्ठां नियमोपवासविधिना चेतो ममोत्कण्ठते
तां द्रष्टुं प्रथमानुरागजनितावस्थामिवाद्य प्रियाम्॥ १॥

विदूषकः—(उपसृत्य) स्वस्ति भवते। वर्धतां भवान्। (सोत्थि होदे। वड्ढतु भवं)

राजा—(विलोक्य) वसन्तक, कस्मात्प्रहृष्ट इव लक्ष्यसे।

विदूषकः—अर्चति खलु देवी ब्राह्मणम्। (अच्चदि खु देवी बह्मणं)

राजा—यद्येवं ततः किम्।

क्षामामिति० नियमोपवासविधिना उपवासरूपव्रतेन, क्षामाम् कृशशरीराम्, मङ्गलमात्रमण्डनभृतम् सौभाग्यसूचकमङ्गलसूत्रमात्रमण्डनधारिणीम्, मन्दोद्यमालापिनीम् मन्दमन्दमतिप्रयासपूर्वकमालपन्तीम्, आपाण्डुच्छविना कार्श्यवशाच्छुक्लप्रभेण मुखेन विजिता परास्ता प्रातस्तनस्य प्रभातकालिकस्य इन्दोर्द्युतिर्यया तादृशीम् श्वेतामवदनविजितप्रभातचन्द्रच्छविम्, सोत्कण्ठाम् मदवलोकने घृतोत्सुकभावाम्, ताम् चिरसहचरीम् (अपि) प्रियाम् वासवदत्ताम् प्रथमानुरागजनितावस्थाम् पूर्वरागकृतकार्श्यादिम् इव द्रष्टुम् मम वत्सराजस्य चेतः उत्कण्ठते उत्सुकं भवति। वासवदत्ताद्यव्रतकृतेन कार्श्यादिना पूर्वानुरागकालिककार्श्यादियुतत्वं स्वीयं स्मारयन्तीव ममोत्कण्ठां जनयति, यथा पूर्वानुरागावसरे मदर्थं कृशां शुक्लवदनां च तां द्रष्टुं मदीयं चित्तमुदकण्ठत तद्वदद्यचिरपरिचये वृत्तेपि नियमोपवासादिना कृशां तां द्रष्टुमुत्सुकं भवति मदीयं मानमिति भावः॥ १॥

राजा—अतिकृशाङ्गी, केवल मङ्गलसूत्रक अलङ्कारधारिणी, प्रयत्नपूर्वक मन्दभाषिणी अतिस्वच्छ मुखकान्तिसे प्रातःकालिक चन्द्रमाको जीतने वाली, तथा नियम उपवास आदिके कारण मेरे दर्शनके लिये उत्कण्ठित अपनी प्रिया वासवदत्ताको पूर्वानुरागावस्थामें दुर्बलत्वको प्राप्त रूपमें देखनेकी उत्कण्ठा हो रही है॥ १॥

विदूषक—(समीप जाकर) आपका कल्याण हो, आपका अभ्युदय हो।

राजा—(देखकर) वसन्तक, क्यों इतने प्रसन्नसे दीख रहे हो।

विदूषक—देवी ब्राह्मणोंका सत्कार कर रही है।

राजा—इससे तुमको क्या?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विदूषकः—(सगर्वम्) भो ईदृशः खलु ब्राह्मणः यश्चतुर्वेदपञ्चवेदषड्वेदब्राह्मणसहस्रपर्याकुले राजकुले प्रथममहमेव देवीसकाशात्स्वस्तिवायनं लभे । (भो, ईरिसो क्खु वह्मणो । जो चउव्वेदपञ्चवेदछट्टवेदवह्मणसहस्सपज्जाउले राअउले पुढमं अहं एव्व देवीसआसादो सोत्थिवाअणं लहेमि)

राजा—(विहस्य) वेदसंख्ययैवावेदितं ब्राह्मण्यम् । तदागच्छ महाब्राह्मण । धारागृहोद्यानमेव गच्छावः ।

विदूषकः—यद्भवानाज्ञापयति । (जं भवं आणवेदि)

राजा—गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—भो एहि गच्छावः । (परिक्रम्यालोक्य च) भो वयस्य, पश्य पश्य अविरतपतद्विविधकुसुमसुकुमारशिलातलोत्सङ्गस्य परिमलनिलीनमधुकरभरभग्नबकुलमालतीलताजालकस्य कमलगन्धग्रहणोद्दाममारुतपर्यवबुद्धबन्धूकबन्धनस्याविरलतमालतरुपिहितातपप्रसारस्यास्य धारागृहोद्यानस्य सश्रीकताम् । (भो एहि गच्छह्म । वअस्स, पेक्ख पेक्ख—

वेदसंख्यया—पञ्चवेदादिकथनेन । यतस्त्वं वेदानां चतुष्ट्वं विहाय पञ्चविधत्वं, षड्विधत्वं चाभिहितवानसि तत एव निवेदितं ते ब्राह्मणत्वमिति परिहासतात्पर्यम् ।

अविरतेति० अविरतम् अनारतम् पतद्भिः पातुकैः विविधकुसुमैः नानापुष्पैः सुकुमारः कोमलीकृतः शिलातलस्य उत्सङ्गः क्रोडदेशो यत्र तादृशस्य सततच्यवमाननानाप्रकारककुसुमसुरभिपर्वतोत्सङ्गस्येत्यर्थः । परिमलार्थम् सुगन्धलोभेन निलीनाः लग्नाः ये मधुकराः भ्रमरास्तैः भग्नम् त्रुटितं वकुलस्य पुष्पभेदस्य मालत्याश्च लताजालकं लतावलयं यत्र तस्य । कमलगन्धस्य सरोजसौरभस्य ग्रहणे उद्दामाः सरभसव्यग्रा ये

विदूषक—(सहर्ष) अजी मैं ऐसा ब्राह्मण हूँ कि हजार चतुर्वेद पञ्चवेद षड्वेद ब्राह्मणोंके रहते हुए भी राजकुलमें देवी मुझे ही पहले स्वस्तिवायन देती हैं ।

राजा—(हंसकर) वेदोंकी संख्यासे ही तुम्हारा ब्राह्मणत्व स्पष्ट हो रहा है। अच्छा, आओ महाब्राह्मण, धारागृहकी पुष्पवाटिकाकी ओर चलें।

विदूषक—आपकी जो आज्ञा ।

राजा—तुम आगे चलो ।

विदूषक—अजी आओ, चलें। (आगे चलकर और देखकर) वयस्य ! देखो देखो इस धारागृहोद्यानकी शोभा देखो, यहाँ अनवरत चूते हुए विविध फूलोंसे शिलातल सुवासित हो उठे हैं, सुगन्धिके लोभसे लीन भ्रमरगणके भारसे वकुल तथा मालती पुष्पके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अविरदपडन्तविविहकुसुमसुउमालसिलाअलुच्छङ्गस्स परिमलणिलीणमहुअरभरभग्गबउलमालदीलदाजालअस्स कमलगन्धग्गहणुद्दाममारुदपज्जवबुद्धबन्धूअबन्धणस्स अविरलतमालतरुपिहिदातपप्पसारस्स अस्स धाराघरुज्जाणस्स सस्सरीअअं)

राजा—वयस्य, साध्वभिहितम्। अत्र हि—

वृन्तैः क्षुद्रप्रवालस्थगितमिव तलं भाति शेफालिकानां
गन्धः सप्तच्छदानां सपदि गजमदामोदमोहं करोति।
एते चोन्निद्रपद्मच्युतबहलरजः पुञ्जपिङ्गाङ्गरागा
गायन्त्यव्यक्तवाचः किमपि मधुलिहो वारुणीपानमत्ताः ॥२॥

मारुता वायवस्तैः पर्यवबुद्धानि मोचितानि बन्धूकस्य पुष्पभेदस्य बन्धनानि वृन्तानि यत्र तस्य। अविरलैः परस्परासक्तैः तमालतरुभिः तापिच्छवृक्षैः पिहितः आवृतः आतपप्रसारः सूर्यकरनिकरो यत्रेति तथाभूतस्य। अत्राद्यविशेषणेनोपवेशनयोग्यस्थानशालित्वम्, द्वितीयेन सुगन्धसंभृतत्वप्रतिपादनमुखेन चेतोहरत्वम्, तृतीयेन शीतलपवनसञ्चारकृतं रमणीयत्वम्, बन्धूकविकासकृतं सश्रीकत्वञ्च, चरमेण चानातपत्वकृतं सुखदत्वं व्यञ्जितम् ॥

वृन्तैरिति० शेफालिकानाम् पुष्पविशेषाणाम् तलम् अधोदेशः वृन्तैः श्लथीभूय पतितैः प्रसवबन्धनैः क्षुद्रप्रवालैः लघुभिर्विद्रुमैः स्थगितम् आकीर्णम् इव विभाति शोभते, अत्रोद्याने शेफालिकातरोरधस्तात् पतितैः वृन्तैः शोणद्युतिभिः तत्तलं प्रवालकीर्णमिवप्रतीयत इत्यर्थः। सप्तच्छदानां सप्तपर्णाख्यपुष्पभेदानां गन्धः गजमदस्य करिदानवारिणो य आमोदः सुगन्धस्तस्य मोहं भ्रमं करोति उत्पादयति। उन्निद्राणि विकसितानि यानि पद्मानि कमलानि तेभ्यः च्युतैः पतितैः बहलरजसां पुञ्जैः समधिकपरागसमुदयैः पिङ्गः पीताभः अङ्गानां देहावयवानां रागो वर्णो येषां ते तथोक्ताः अव्यक्तवाचः अस्फुटशब्दा मधुलिहो भ्रमरा वारुणीपानमत्ताः पुष्परसा-

---

समूह टूट रहे हैं, कमलकी सुगन्धिके ग्रहणार्थ व्याकुल पवन द्वारा बन्धूकपुष्पके बन्धन ढीले किये जा रहे हैं, और निरन्तर वर्त्तमान तमालतरुकी छायासे धूपका प्रसार रुका हुआ है।

राजा—वयस्य, तुमने ठीक ही कहा है, यहाँ पर—

शेफालिकाके डंटलोंसे ऐसी शोभा बढ़ रही है मानों छोटे छोटे मूगोंसे उसके नीचे की भूमि भर गई हो, छतवनकी महक हठात् हाथीके मदवारिकी याद दिलाते हैं, और विकसित कमलोंसे गिरनेवाले परागपुञ्जसे पीत अङ्गरागको धारण करनेवाले तथा अस्पष्ट भाषी यह भ्रमरगण दारू पीकर मस्त हो कुछ अंटसंट गा रहे हैं ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विदूषकः—भो वयस्य, एतमपि तावत्पश्य पश्य—य एषोऽविरलपतत्कुसुमनिकरोऽद्यापि पत्रान्तरगलद्वर्षावसानसलिलबिन्दुरिव लक्ष्यते सप्तपर्णपादपः। (भो वअस्स, एदं वि दाव पेक्ख पेक्ख—जो एसो अविरलपडन्तकुसुमणिअरो अज्ज वि पत्तन्तरगलन्तवरिसावसाणसलिलविन्दू विअ लक्खीअदि सत्तवण्णपाअवो)

राजा—वयस्य, सम्यगुत्प्रेक्षितम्। बह्वेव सदृशं जलदसमयस्य। तथाहि।

बिभ्राणा मृदुतां शिरीषकुसुमश्रीहारिभिः शाद्वलैः
सद्यः कल्पितकुट्टिमा मरकतक्षोदैरिव क्षालितैः।
एषा संप्रति बन्धनाद्विगलितैर्बन्धूकपुष्पोत्करै-
रद्यापि क्षितिरिन्द्रगोपकशतैश्छन्नेव संलक्ष्यते॥ ३॥

सवपानोपजातमदाः किमपि कलं गायन्ति गानं कुर्वन्ति। कमलपरागपिशङ्गदेहा वारुणीपानमत्ताश्चालयः श्रुतिसुखदं किमपि गायन्तीत्याशयः। शार्दूलविक्रीडितमेववृत्तम्॥ २॥

अविरलपतत्कुसुमनिकरः—सततनिपतत्पुष्पसमुदयः। पत्रान्तरगलद्वर्षावसानसलिलविन्दुः—पत्रान्तरालनिपतत्प्रावृट्समाप्तिकालिकजलकणः। पुष्पाणि जलविन्दव इव दृश्यमानानि स्वनिपातेन जलविन्दुनिपातभ्रमसातन्वत इति भावः।

वह्वेव सदृशं जलदसमयस्य—वर्षाकालस्य समधिकं सादृश्यमस्तीति तात्पर्यम्।

विभ्राणेति० शिरीषकुसुमश्रीहारिभिः शिरीषपुष्पकान्तिचौरैः शाद्वलैः तृणहरितप्रदेशैः मृदुताम् कोमलताम् बिभ्राणा धारयन्ती, क्षालितैः धौतशुद्धैः मरकतक्षोदैः मरकतमणिखण्डैः कल्पितकुट्टिमा निर्मिता भूमिरिव एषा धारागृहोद्यानगता क्षितिः मही अद्यापि वर्षायाश्चिरवीतत्वेऽपि सम्प्रति सद्यः बन्धनात् वृन्तात् विगलितैः च्युतैः वन्धूकपुष्पोत्करैः रक्ताभवन्धूकपुष्पसमूहैः इन्द्रगोपकशतैः शत-

---

विदूषक—अजी वयस्य, इस सप्तपर्ण (छतवन) वृक्षको देखो, जिससे बराबर फूल चू रहे हैं जो ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानों वर्षाके अन्तमें पत्रोंके अन्तरालसे जलविन्दुएँ गिर रही हों।

राजा—वयस्य, तुमने बड़ी अच्छी उत्प्रेक्षाकी। वर्षाऋतुसे बहुत समता है। क्योंकि—

शिरीष कुसुमकी शोभाको धारण करनेवाले हरे हरे नये घाससे मृदुताको धारण करनेवाली तथा अभी अभी धुले हुए मरकतमणिके खण्डोंसे बनाया गया है पक्कीमञ्च जहां की ऐसी यहाँ की भूमि इस समय वृन्तच्युत बन्धूक कुसुम समूहसे ऐसी लग रही है मानो वह सैकड़ों वीरवहुटियोंसे आच्छादित हो॥ ३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—आज्ञप्तास्मि देव्या वासवदत्तया—'हञ्जे इन्दीवरिके, अद्य मया अगस्त्यमहर्षयेऽर्घ्यं दातव्यम्। तद्गच्छ त्वम्। शेफालिकाकुसुममालां लघु गृहीत्वागच्छ। एषाप्यारण्यका धारागृहोद्यानदीर्घिकाया यावदेव विकसितानि कमलानि नास्ताभिलाषिणा सूर्येण मुकुलाय्यन्ते तावदेव लध्ववचित्यागच्छतु' इति। एषा तपस्विनी तां दीर्घिकां न जानाति। तद्गृहीत्वा तां गमिष्यामि (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) इत इत आरण्यके एहि। (आणत्तह्मि देवीए वासवदत्ताए—'हञ्जे इन्दीवरिए, अज्ज मए अगत्थिमहेसिणो अग्घां दादव्वम्। ता गच्छ तुमम्। सेहालिआकुसुममालं लहु गेण्हिअ आअच्छ एसा वि आरण्णआ धाराघरुज्जाणदीहिआए जाव एव्व विअसिआइ कमलाइ ण अत्थाहिलासिणा सुज्जेण मउलाविज्जन्ति दाव एव्व लहुअं अवचिणुअ आअच्छदु'त्ति। एसा तवस्सिणी तं दीहिअं ण जाणादि। ता गेण्हिअ तं गमिस्सं। इदो इदो आरण्णए एहि)

शतसंख्याकैरिन्द्रगोपनामकवर्षोद्भवकीटैः छन्ना आवृता इव लक्ष्यते प्रतीयते। वर्षर्तौ मही मृदुला हरिताभा च जायते, अत्रापि शाद्वला भूर्मार्दवं हरिताभतां च विभर्त्ति, मन्ये महीयं मरकतखण्डैरिव कल्पितभूमिः। वर्षासमये रक्तावर्णाः इन्द्रगोपनामकाः कीटविशेषा 'वीरवहूटी' नाम्ना ख्याताः प्रकटीभवन्ति, अत्रापि वन्धनात् च्युतानि वन्धूककुसुमानि तद्दव प्रतीयन्ते, तद्बहु सादृश्यं जलदसमयस्येति पूर्वोक्तं समर्थितम्। मरकतक्षोदानां क्षालितत्वेन वर्णप्रकर्षः, सम्प्रति विगलितत्वकथनादम्लानता बन्धूककुसुमानां तया चेन्द्रगोपसादृश्यं व्यज्यते। उत्प्रेक्षात्रालङ्कारः॥३॥

लघु–शीघ्रम्। दीर्घिकायाः–वाप्याः, अपादाने पञ्चमी। अस्ताभिलाषिणा–अस्तंगच्छता। मुकुलाय्यन्ते–सङ्कुचन्ति। अवचित्य सङ्गृह्य।

[अनन्तर चेटी प्रवेश करती है]

चेटी—देवी वासवदत्ताने आज्ञा दी है 'सखी इन्दीवरिके, आज मुझे महर्षि अगस्ति को अर्घ्य प्रदान करना है, अतः तुम जाओ, शेफालिका फूलकी माला शीघ्र लेकर आओ। यह आरण्यका भी धारागृहके उद्यानकी वापीसे तब तक शीघ्रतासे कमलके फूल ले आवे जब तक कि अस्तगामी सूर्य उन्हें मुकुलित नहीं कर देते हैं'। यह बेचारी उस वापीको नहीं जानती है, अतः उसे वहाँ लेकर जाऊंगी। (नेपथ्यकी ओर देख कर) इधर आओ आरण्यके, इधर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[ततः प्रविशत्यारण्यका]

आरण्यका—(सवाष्पोद्वेगमात्मगतम्) तथा नाम तादृशे वंश उत्पन्नयान्यजनमाज्ञाप्य स्थितया सांप्रतं परस्य मयाज्ञप्तिः कर्तव्येति नास्ति खलु दुष्करं दैवस्य। अथवा ममैवैष दोषः। येन जानत्यापि न व्यापादित आत्मा। तत्किं सांप्रतं करिष्यामि। अथवा दुष्करमिदानीं मया चिन्तितम्। वरमेवैतदपि। न पुनरात्मनो मयार्घं वंशं प्रकाशयन्त्या मया लघूकृत आत्मा। तत्का गतिः। यथाभणितमनुष्ठास्यामि। (तह णाम तारिसे वंसे उप्पण्णाए अण्णजणं आणविअ ट्ठिदाए संपदं परस्स मए आणत्ती कादव्वेत्ति णत्थि खु दुक्खरं देव्वस्स। अहवा मह एव्व एसो दोसो। जेण जाणन्तीए वि ण वावादिओ अप्पा। ता किं संपदं करिस्सं। अहवा दुक्खरं दाणिं मए चिन्तिदं। वरं एव्व एदं वि। ण उण अप्पणो महग्घं वंसं पआसअन्तीए मए लहुईकिदो अप्पा। ता का गई। जहभणिदं अणुचिट्ठिस्सं)

चेटी—इत एह्यारण्यके। (इदो एहि आरण्णए)

आरण्यका—इयमागच्छामि। (श्रमं नाटयन्ती) हञ्जे, दूरे किमद्यापि दीर्घिका। (इअं आअच्छामि। हञ्जे, दूरे किं अज्ज वि दीहिआ)

तादृशे—समृद्ध्या आभिजात्येन च प्रसिद्धे। आज्ञप्तिः—आदेशः। कर्त्तव्या—पालनीया। व्यापादितः—प्राणैर्वियोजितः। लघूकृतः—लाघवङ्गमितः।

[अनन्तर आरण्यकाका प्रवेश होता है]

आरण्यका—(आंसू तथा दुःखके साथ, स्वगत) मैंने वैसे वंशमें जन्म लिया जहाँ मैं दूसरों पर आदेश किया करती थी, (परन्तु) सम्प्रति मुझे ही दूसरेकी आज्ञाका पालन करना पड़ता है इससे स्पष्ट है कि भाग्यके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है। अथवा—यह हमारा ही दोष है कि हमने यह जानकर आत्मघात नहीं कर लिया। अब इस समय क्या करूँगी। अथवा इस समय मैं यह दुष्कर कार्य शोच रही हूँ, यह भी ठीक ही है, मैंने अपने वंशको प्रकाशित करके अपनी हेठी नहीं होने दी। फिर उपाय ही क्या है? यथा आदेश कार्य करूंगी।

चेटी—यहाँ आना आरण्यके।

आरण्यका—यह आई। (थकावटका अभिनय करती हुई) सखी, क्या अभी भी वापी दूर है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चेटी—एषा शेफालिकागुल्मान्तरिता। तदेहि। अवतरावः। (एसा सेहालिआगुम्मन्तरिआ। ता एहि। ओदरह्म) (अवतरणं नाटयतः)

राजा—वयस्य, किमन्यदिव चिन्तयसि। ननु ब्रवीमि। बह्वेव सदृशं जलदसमयस्य।

[इति 'विभ्राणा मृदुताम्' इत्यादि पुनः पठति]

विदूषकः—(सक्रोधम्) भोः, त्वं तावदेतदन्यच्च पश्यन्नुत्कण्ठानिर्भरं विनोदयस्यात्मानम्। मम पुनर्ब्राह्मणस्य स्वस्तिवायनवेलातिक्रामति। तत्तावदहं त्वरितं दीर्घिकायां स्नात्वा देव्याः सकाशं गमिष्यामि। (भो तुमं दाव एदं अण्णं अ पेक्खन्तो उक्कण्ठाणिब्भरं विणोदेसि अप्पाणं। मम उण बह्मणस्स सोत्थिवाअणवलां अदिक्कमदि। ता दाव अहं तुवरिअं दीहिआए ण्हाइअ देवीए सआसं गमिस्सं)

राजा—ननु मूर्ख, पारं गता एव वयं दीर्घिकायाः 'एवमनेकेन्द्रिय-सुखातिशयमनुभवन्नपि नोपलक्षयसि 'पश्य'।

शेफालिकागुल्मान्तरिता—शेफालितालताप्रच्छन्ना।

उत्कण्ठानिर्भरम्—उत्सुकम्। विनोदयसि—प्रसादयति।

अनेकेन्द्रियसुखातिशयम्—एकाधिककरणानन्दप्रकर्षम्। अत्रानेकपदेन चक्षुः श्रोत्रनासा त्वचः संग्राह्याः, तत्र चक्षुषोः सुरूपकमलाद्यवेक्षणकृतः, श्रोत्रयोः हंस-स्वनेन श्रुतेन, नसोः विकसितकुसुमामोदाघ्राणेन, त्वचः शीतलसमीरसम्पर्केण च सुखातिशयो विविक्षितोऽज्ञेयः, नोपलक्षयसि—न तर्कयसि। वापीसन्निकर्षे तवैतानी-

---

चेटी—यही तो शेफालिकाकी झाडीके बाद है, अतः आओ, उतरें।

[अवतरणका अभिनय करती हैं]

राजा—वयस्य, क्या दूसरी बात शोच रहे हो! मैं कह रहा हूँ कि वर्षा समयके अति सदृश है।

[इस पर—'विभ्राणा' इत्यादि पद्य फिर पढ़ता है]

विदूषक—(रंज होकर) अजी, तुम तो इधर उधर देखते हुए अपने उत्कण्ठित हृदयको बहला रहे हो, और मुझ ब्राह्मणकी तो स्वस्तिवायनवेला बीती जारही है। इस लिये मैं शीघ्रतासे तालावमें नहाकर देवीके पास जाता हूँ।

राजा—अरे मूर्ख, हमलोग तो उस तालावको पार कर गये हैं इस प्रकारकी अने-केन्द्रिय सुख समृद्धिका अनुभव करके भी समझ नहीं रहे हो, देखो—दयिताके नूपुररवका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रोत्रं हंसस्वनोऽयं सुखयति दयितानूपुरह्लादकारी
दृष्टिप्रीतिं विधत्ते तटतरुविवरालक्षिता सौधपाली।
गन्धेनाम्भोरुहाणां परिमलपटुना जायते घ्राणसौख्यं
गात्राणां ह्लादमेते विदधति मरुतो वारिसंपर्कशीताः॥ ४॥

तदेहि। दीर्घिकातटमुपसर्पावः। (परिक्रम्यावलोक्य च) वयस्य, पश्य पश्य।

उद्यानदेवतायाः स्फुटपङ्कजकान्तिहारिणी स्वच्छा।
दृष्टिरिव दीर्घिकेयं रमयति मां दर्शनेनैव॥ ५॥

न्द्रियाणि प्रसादातिशयमलप्सतथापि त्वं वापीमतीतां नाज्ञासीरितिवक्तुरभिप्रायः।

श्रोत्रमिति० दयितायाः प्रियतमाया नूपुरह्लादं मञ्जीरशिञ्जितं करोतीति तादृशः अयम् हंसस्वनः हंसरुतम् श्रोत्रम् कर्णेन्द्रियम् सुखयति आह्लादयति, तटतरुविवरालक्षिता पुलिनप्ररूढपादपान्तरालदृश्यमाना सौधपाली प्रासादपरम्परा दृष्टिप्रीतिम् नयनानन्दं विधत्ते जनयति। परिमलपटुना सुगन्धहृद्येन अम्भोरुहाणाम् गन्धेन कमलवासेन घ्राणसौख्यं नासातृप्तिः जायते, वारिसम्पर्कशीताः जलकलसम्पर्कशीतलाः एते मरुतः वायवः गात्राणाम् अङ्गानाम् ह्लादम् परमानन्दम् विदधति कुर्वते। अनेकेन्द्रियसुखातिशयः पूर्वोक्तोऽत्रोपपादितः। शार्दूलविक्रीडितमेववृत्तम्॥ ४॥

दीर्घिकातटम्—वापीपरिसरम्। उपसर्पावः—गच्छावः।

उद्यानदेवताया इति० स्फुटानां विकचानां पङ्कजानां पद्मानां कान्तिभिः शोभाभिः हारिणी मनोहरा (दीर्घिका) विकसितकमलकान्तिजयिनी च (दृष्टिः) स्वच्छेत्युभयत्रसमानम्। उद्यानदेवतायाः पुष्पवाटिकाऽधिष्ठात्र्याः देवतायाः दृष्टिः नेत्रमिव इयं दीर्घिका मां दर्शनेन एव केवलेन वीक्षणेन मां रमयति प्रसादयति, यथा· कस्याश्चन सुन्दर्याः कमलकमनीया स्वच्छा दृष्टिः सकृन्निपातमात्रेण कमपि सौभाग्यजुषं पुरुषं प्रसादयति तद्वदेषा विकसितकमलहृद्या स्वच्छाम्रदीर्घिका स्वावलोकन· मात्रेण मां प्रसादयतीतिभावः, उपमालङ्कारः॥ ५॥

अनुकरण करने वाला हंस कानोंको आनन्दित कर रहा है, किनारे पर वर्त्तमान वृक्षोंके छिद्रसे दीखने वाली प्रासादमाला आँखोंको तृप्त करती है, सुगन्धपूर्ण कमलामोदसे नाक तृप्त होती है और जलकलसंपर्कसे शीतल वायु समस्त शरीरको आनन्द दे रहा है॥ ४॥

चलो, वापीतट पर चलें, (चलकर और देखकर) वयस्य, देखो देखो, विकसित कमलके सदृश कान्तिवाली तथा स्वच्छ वापी ऐसी लगती है कि मानों यह उद्यान देवताकी आँख हो, जो दर्शनमात्रसे प्रसन्न कर रही है॥ ५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विदूषकः—(सकौतुकम्) भो वयस्य, पश्य पश्य। कैषा कुसुमपरिमलसुगन्धवेणिमधुकरावलिविद्रुमलतारुणहस्तपल्लवा उज्ज्वलत्तनुकोमलबाहुलता सत्यं प्रत्यक्षचरीवोद्यानदेवता स्त्री दृश्यते। (भो वअस्स पेक्ख पेक्ख। का एसा कुसुमपरिमलसुअन्धवेणीमहुअरावली विद्दुमलआरुणहत्थपल्लवा उज्जुलुन्ततणुकोमलबाहुलदा सच्चं पच्चक्खचरीविअउज्जाणदेवदा इत्थिआ दीसइ)

राजा—(सकौतुकं विलोक्य) वयस्य, निरतिशयस्वरूपशोभाजनितबहुविकल्पेयम्। यत्सत्यमहमपि नावगच्छामि। पश्य

पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता।

वयस्य–सुहृत्, वयसा तुल्यो वयस्यः। 'नौवयोधर्मविषमूले'त्यादिना यत्। कुसुमानां पुष्पाणां परिमलेन सुगन्धावेणिः संयतः केशराशिरेव मधुकरावलिर्भ्रमरमाला यस्यां सा तथोक्ता। विद्रुमलता–प्रवालयुक्तावल्लरी तद्वदरुणो हस्तपल्लयो यस्याः सा तथोक्ता। उज्ज्वलन्ती प्रकाशशालिनी तन्वीकृशा च कोमला बाहुलता यस्याः सा तादृशी। सत्यम्–वस्तुतः। प्रत्यक्षचरी–दृश्यमाना। अयमभिसन्धिः—प्रियदर्शिकां दृष्ट्वा विदूषकेण तस्यां सौन्दर्यातिशयेनोद्यानदेवतात्वमुत्प्रेक्ष्यते, तत्रोद्यानदेवताया लताभावावश्यकतया लताधर्मास्तस्यामुपपादनीयाः, लतायां भ्रमराः सुगन्धलोभेन तिष्ठन्ति, सैषाऽस्यावेणिरेव मधुकरावलिः श्यामत्वश्लक्ष्णत्वसाम्यात्। लतायां पल्लवा इति अस्या हस्ताएव पल्लवस्थानीया इति तनुश्च लतायष्टिस्थानीयेति। आश्चर्यं चैतद्यदियं देवतासत्यपि प्रत्यक्षपथातिथिरिति व्यतिरेकध्वनिः।

निरतिशया सर्वाधिका या स्वरूपशोभा रूपसंपत् तया जनितः कृतः बहुः विकल्पः नानाविधः संशयो यया तादृशी इयम् प्रत्यक्षदृश्या वनिता। वनिताया अस्या सर्वातिशायिनीं रूपसंपदं दृष्ट्वा नानाप्रकारा विकल्पा मनसिपदमादधते इति भावः। यत्सत्यम्–निश्चयेन। यत्सत्यमित्यखण्डमव्ययं नियतार्थमिति शास्त्रविदः कथयन्ति। विकल्पानुपपादयितुमाह—पश्येत्यादि०।

पातालादिति० किं भुवनावलोकनपरा पृथिवीदर्शनतत्परा नागकन्यका पातालात्

विदूषक—(उत्सुकभावसे) अजी वयस्य, देखो देखो, यह कौन स्त्री दीख रही है जो सामने आई हुई उद्यानदेवताके समान लग रही है, जिसके केशपाश परिमलाकृष्ट भ्रमर हैं, जिसके हाथ विद्रुमलता की तरह रक्ताभ हैं, और जिसकी देह लताके समान शोभाशाली है।

राजा—(उत्सुकभावसे, देखकर) वयस्य, अत्यन्त स्वरूप सौन्दर्यके कारण इसके विषयमें नानाप्रकारके तर्क हो रहे हैं अतः मैं भी ठीक निश्चय नहीं कर पारहा हूँ, देखो—क्या पृथ्वीको देखनेके लिये कोई नागकन्या पाताललोकसे निकल आई है? परन्तु यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी।
मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं
केयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव ॥ ६ ॥

विदूषकः—(निरूप्य) एषा खलु देव्याः परिचारिकेन्दीवरिका। तद्गुल्मान्तरितौ भूत्वा पश्यावः। (एसा क्खु देवीए परिआरिआ इन्दीवरिआ। ता गुम्मन्तरिआ भविअ पेक्खह्म)

(उभौ तथा कुरुतः)

चेटी—(कमलिनीपत्रग्रहणं नाटयन्ती) आरण्यके, अपचिनु त्वं पद्मानि। अहमप्येतस्मिन्नलिनीपत्रे शेफालिकाकुसुमान्यपचित्य देवीसकाशं गमिष्यामि। (आरण्णए, अवइणु तुमं पदुमाइ। अहं वि एदस्सिं णलिनीपत्तम्मि सेहालिआकुसुमाइ अवइणुय देवीसआसं गमिस्सं)

नागलोकात् उत्थिता उत्थायागता ? उक्तं विकल्पं दूषयति–मिथ्येति० मिथ्यातत् नागलोकान्नागकन्याऽऽयातेति यदुक्तं तदसत्यं (यतः) मया वत्सराजेन दृष्टम् एव खलु, तस्मिन् नागलोके ईदृशी प्रत्यक्षदृश्यसुन्दरी सदृशी कुतोऽस्ति ? नास्तीत्यर्थः। विकल्पान्तरमुपस्थापयति—मूर्तेति० मूर्त्ता शरीरधारिणी कौमुदी चन्द्रिका इह अत्र स्यात् आगताभवेत् ? नैषोऽप्यर्थः संभवीत्याह—तस्याः कौमुद्या दर्शनं दिवा दिने न घटते नोपपद्यते, कौमुद्याश्चन्द्राभावेऽभावात् तस्य रात्र्येकसञ्चारित्वादिति। ततः संशय एव पर्यवसानमित्याह—हस्ततलस्थितेन करयोर्निहितेन स्वामिन्याः कृतेऽवचितेन कमलेन (उपलक्ष्यमाणा) श्रीःलक्ष्मीरिव आलोक्यते, लक्ष्म्या अपि कमलोपेतकरतया तत्सादृश्यं सन्दिग्धमिति भावः। निश्चयगर्भःससन्देहालङ्कारः ॥ ६ ॥

परिचारिका–दासी।

नलिनीपत्रे—कमलदले। अपचित्य–संगृह्य। अवचित्येतियुक्तः पाठः चिनोते-

---

कल्पना सङ्गत नहीं है क्योंकि मैंने पाताललोकमें ऐसी कन्या नहीं देखी, वहाँ तो मैं गया हूँ। यह शरीरधारिणी चन्द्रिका हो सकती है, परन्तु दिनमें चन्द्रिकाके दर्शनकी आशा नहीं की जा सकती है, तव फिर कमल हाथमें लिये लक्ष्मीके समान यह कौन स्त्री देखनेमें आरही है ॥ ६ ॥

विदूषक—(देखकर) यही देवीकी परिचारिका इन्दीवारिका है, अतः झाड़ीमें छिप कर देखें।

[दोनों वैसाही करते हैं]

चेटी—(कमलिनीके पत्र लेती हुई) आरण्यके, तुम कमलके फूल चुनले, मैं भी इस कमलिनी पत्रमें शेफालिकाके फूल चूनकर देवीके पास जाऊँगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा—वयस्य, संलाप इव वर्तते। तदवहिताः शृणुमः। कदाचिदित एव व्यक्तीभविष्यति।

(चेटी गमनं नाटयति)

आरण्यका—हला इन्दीवरिके, न शक्नोमि त्वया विनात्रासितुम्। (हला इन्दीवरिए, ण सक्कुणोमि तुए विणा एत्थ आसिदुं)

चेटी—(विहस्य) यादृशमद्य मया देव्या मन्त्रितं श्रुतम्, तादृशेन चिरमेव मया विना त्वयासितव्यम्। (जारिसं अज्ज मए देवीए मन्तिदं सुदं, तारिसेण चिरं एव्व मए विणा तुए आसिदव्वं)

आरण्यका—(सविषादम्) किं देव्या मन्त्रितम्? (किं देवीए मन्तिदं?)

चेटी—एतत् 'तदैषाहं महाराजेन भणिता, यथा 'यदैषा विन्ध्यकेतुदुहिता वरयोग्या भविष्यति तदाहं स्मारयितव्यः।' इति। तत्साम्प्रतं महाराजं स्मारयामि येनास्या वरचिन्तापर्याकुलो भविष्यति।' (एदं

स्वपूर्वस्यैवोपयुक्तार्थकत्वात्। अपचिनोतेस्तु ह्रासार्थता, यथा—'राजहंस, तव सैव शुभ्रता चीयते न च नचापचीयते'।

अवहिताः-सावधानाः। व्यक्तीभविष्यति-केयमित्यर्थः कदाचिदाकर्णितात्संलापादेव प्रकटीभवेदित्यर्थः।

मन्त्रितम्-विचारः। मयाविना-मया वियुज्य। देवी तव विवाहविषये चिन्तयति, तया तव विवाहे सम्पादिते त्वमन्यत्र यास्यसि तच्चिरं तत्र त्वया मम वियोगे स्थेयमिति तात्पर्यम्।

वरचिन्तापर्याकुलः-वरान्वेषणसावधानः।

राजा—वयस्य, कुछ बातचीत सुन रहा हूँ, अतः सावधान होकर सुनें, कदाचित् इसीसे कुछ पता चल जाये।

[चेटी जानेका अभिनय करती है]

आरण्यका—सखी इन्दीवरिके, तुम्हारे विना मैं यहाँ रह नहीं सकती हूँ।

चेटी—(हंसकर) जैसा मैंने आज देवीका विचार सुना है, उसके अनुसार तुझे मुझसे बहुत दिनके लिये अलग रहना होगा।

आरण्यका—(खेदसे) देवीने क्या विचार किया?

चेटी—यही कि 'महाराजने मुझसे कहा था कि जब यह विन्ध्यकेतुकी कन्या विवाहके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'तदा एसा अहं महाराएण भणिदा, जह 'जदा एसा विञ्झकेदुदुहिदा वरजोग्गा भविस्सदि तदा अहं सुमराइदव्वो'त्ति । ता सम्पदं महाराअं सुमरावेमि । जेण से वरचिन्तापज्जाउलो भविस्सदि ।')

राजा—(सहर्षम्) इयं सा विन्ध्यकेतोर्दुहिता । (सानुतापम्) चिरं मुषिताः स्मो वयम् । वयस्य, निर्दोषदर्शना कन्यका खल्वियम् । विस्रब्धमिदानीं पश्यामः ।

आरण्यका—(सरोषं कर्णौ पिधाय) तद्गच्छ त्वम् । न त्वयासम्बद्धप्रलापिन्या प्रयोजनम् । (ता गच्छ तुमं । ण तुए असम्बद्धप्पलाविणीए पओअणं)

(चेट्यपसृत्य पुष्पापचयं नाटयति)

राजा—अहो सुतरां प्रकटीकृतमाभिजात्यं धीरतया । वयस्य, धन्यः खल्वसौ य एतदङ्गस्पर्शसुखभाजनं भविष्यति ।

(आरण्यका कमलापचयं नाटयति)

मुषिताः-वञ्चिताः, लभ्यालाभकृतावञ्चनात्र राज्ञोऽनुतापस्य विषयः । निर्दोषदर्शना यस्या दर्शनं न दोषाधायकं तादृशी । विस्रब्धम्-यथारुचि ।

असंबद्धप्रलापिन्या-निरर्थकव्याहारिण्या ।

आभिजात्यम्-सत्कुलप्रसूतत्वम् । एतदङ्गस्पर्शसुखभाजनम्-इदमीयशरीरालिङ्गनप्रभवप्रमोदपात्रम् ।

योग्य हो जाय तब मुझे याद दिलाना' । इसलिये अब महाराजको याद दिला दूं कि वह इसके वरकी चिन्ता करेगें ।

राजा—(सहर्ष) यही वह विन्ध्यकेतुकी पुत्री है । (पश्चात्तापके स्वरमें) हमलोग चिरकाल तक ठगे गये । वयस्य, यह अविवाहिता कन्या है, इसके दर्शनमें कोई दोष नहीं है, विश्रब्धभावसे इसे देखेगें ।

आरण्यका—(सक्रोध कान मूंदकर) अच्छा, जाओ तुम मुझे तुम्हारे सदृश वेशिर पैरकी बात करने वाली सखीसे कुछ प्रयोजन नहीं है ।

[चेटी वहाँसे हटकर फूल चुनने लगती है]

राजा—इसकी धीरता और कुलीनता स्पष्ट अभिव्यक्त कर रही है, वयस्य, वह धन्य है जो इस शरीरके स्पर्शसे होने वाले सुखका पात्र होगा ।

[आरण्यका फूल चुनती हैं]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विदूषकः—भो वयस्य, पश्य पश्य। आश्चर्यमाश्चर्यम्। एषा सलीलचलत्करपल्लवप्रभाविस्तृतेनापहसितशोभं करोति कमलवनमपचिन्वती। (भो वअस्स, पेक्ख पेक्ख। अच्चरिअं अच्चरिअं। एसा सलीलचलन्तकरपल्लवप्पहावित्थदेण ओहसिअसोहं करेदि कमलवणं अवचिणन्ती।)

राजा—वयस्य, सत्यमेवैतत्। पश्य—

अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टिसदृशीं प्रीतिं ददत्या दृशा
याताया विगलत्पयोधरपटाद्द्रष्टव्यतां कामपि।
अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव करस्पर्शास्पदत्वं गता
नैते यन्मुकुलीभवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम् ॥७॥

सलीलचलत्करपल्लवप्रभाविस्तृतेन-सलीलं चलतः करपल्लवस्य शोभाया विस्तृतेन विस्तारेण। विस्तृतपदं भावक्तप्रत्ययान्तम्। हस्तचालनेन शोभां विस्तार्य कमलानां शोभामुपहसतीवेयं वधूरित्यर्थः।

अच्छिन्नेति० दृशा नेत्रेण दृक्पातेनेत्यर्थः अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टिसदृशीम् अविरलपतत्सुधासीकरवर्षणोपमाम् प्रीतिम् तृप्तिम् ददत्या वितरन्त्या दृक्पातेनामृतमिव वर्षन्त्या इत्याशयः। विगलत्पयोधरपटात् च्यवमानस्तनांशुकात् कामपि रमणीयां द्रष्टव्यतां दृश्यताम् यातायाः प्राप्तायाः, चन्द्रमसस्तनोः पक्षे पयोधरो मेघः स एव पट आवरकस्तस्यविगलनाद् दृश्यतां गताया इत्यर्थः। चन्द्रमसस्तनोः चन्द्रमूर्त्तेरिव अस्याः सुन्दर्याः करस्पर्शास्पदत्वम् हस्तसम्पर्कपात्रताम् किरणसम्पर्कञ्च गताः एते पद्माः कमलानि सहसा हठात् नयन्मुकुलीभवन्ति न सङ्कुचन्ति

विदूषक—अजी वयस्य, देखो देखो, आश्चर्य है आश्चर्य, यह कमलपुष्पोंको चुनते समय सलील चलते हुए करपल्लवकी शोभासे कमलवनकी शोभाको न्यून बना रही है।

ी है, देखो,

यह दृष्टिप्रक्षेपसे अविच्छिन्न अमृतबिन्दुवर्षणका आनन्द देती है, पयोधरपटके खिसक जानेसे इसकी दर्शनीयता बढ़ती जा रही है, [चन्द्रमा भी अमृतकी वर्षा करता है, वह भी मेघरूप आवरणके हटनेसे द्रष्टव्य हो जाता है, इस तरह यह चन्द्रमा हुई] चन्द्रमाके समान इसके शरीरके करस्पर्शसे [हस्तस्पर्श या किरणस्पर्श] सम्बद्ध होने पर भी जो ये कमल मुकुलित नहीं हो जाते यही आश्चर्य की बात है। (चन्द्रमाके करस्पर्शसे कमल सङ्कुचित होते हैं, इनके करस्पर्शसे कमल नहीं सङ्कुचित हो रहे हैं यही आश्चर्यकी बात है)॥ ७॥

 Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरण्यका—(भ्रमरसंबाधं नाटयन्ती) हा धिक् हा धिक् । एते खल्वपरे परित्यज्य कमलिनीं नीलोत्पलवनानि समापतन्तो निपुणतरं बाधमाना आयासयन्ति मां दुष्टमधुकराः । (उत्तरीयेण मुखं पिधाय सभयम्) हला इन्दीवरिके, परित्रायस्व मां परित्रायस्व माम् । एते दुष्टमधुकराः परिभविष्यन्ति । (हद्धि हद्धि । एदे क्खु अवरे परिच्चइअ कमलिणीं णीलुप्पलवणाइ समापडन्ता णिउणअरं बाधन्ता आआसअन्ति मं दुट्ठमहुअरा । हला इन्दीवरिए परित्ताएहि मं परित्ताएहि मं । एदे दुट्ठमहुअरा परिभविस्सन्ति ।)

विदूषकः—भो वयस्य, पूर्णास्ते मनोरथाः । यावदेव गर्भदास्याः सुता नागच्छति, तावदेव त्वमपि तूष्णीको भूत्वोपसर्प । एषापि सलिलशब्दश्रुतेन पदसंचारेणेन्दीवरिकागच्छतीति ज्ञात्वा त्वामेवावलम्बिष्यते । (भो वअस्स, पुण्णा दे मणोरहा । जाव एव्व गब्भदासीए सुदा ण आअच्छदि, दाव एव्व तुमं वि तुण्हीको भविअ उवसप्प । एसा वि सलिलसद्द सुणिदेण पदसंचारेण इन्दीवरिआ आअच्छदित्ति जाणिअ तुमं एव्व ओलम्बिस्सदि)

राजा—साधु वयस्य साधु । कालानुरूपमुपदिष्टम् ।

तदेवाद्भुतम् आश्चर्यंकरम् । चन्द्रमसस्तनुरमृतवर्षणेन तृप्तिं करोति लोकलोचनानाम् , मेघावरणनिर्मुक्ता च विशेषतो दृश्यभावं भजते, तथैवेयं नेत्रपातेन तर्पयति स्तनावरणांशुकपाताल्लोचने चाकर्षतीदमुभयं समानं परमयन्त्वाश्चर्यकरो विशेषोऽस्यां चन्द्रतनोर्यत्तत् किरणसम्पर्केण सङ्कोचमञ्चन्तोऽपि कमला एतत्क्रियमाणावचयकाल इदमीयकरस्पर्शमवाप्यापि न मुकुलीभवन्तीति तात्पर्यम् । व्यतिरेकसङ्कीर्णोपमा । 'पद्माः' इति पदे क्लीबत्वमप्रयुक्तत्वदोषाधायकम् ॥ ७ ॥

बाधमानाः-उपद्रवकराः । आयासयन्ति–खेदयन्ति । परिभविष्यन्ति–खेदप्रदानेन व्यथयिष्यन्ति ।

आरण्यका—(भ्रमरके उपद्रवका अनुभव करती हुई) हाय हाय ! ये दुष्ट भ्रमर कमलिनीको छोड़कर नीलकमलसमुदायकी ओर आते हुए अपने उपद्रवसे मुझे तंग कर रहे हैं । (दुपट्टेसे मुख ढाँककर भयपूर्वक) सखि इन्दीवरिके, मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो । ये दुष्ट भ्रमर मझे तंग कर देंगे ।

विदूषक—अजी वयस्य, तुम्हारे मनोरथ पूरे हुए, जब तक वह गर्भदासीकी पुत्री नहीं आती तभीतक तुम चुपचाप समीप चले जाओ । यह भी पानी में पड़ने वाले चरणशब्दसे समझेगी कि इन्दीवरिका हो आरही है यह जानकर तुम्हें ही पकड़ लेगी ।

राजा—ठीक है वयस्य ठीक है, समयके अनुकूल तुमने परामर्श दिया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(इत्यारण्यकासमीपमुपसर्पति)

आरण्यका—(पदशब्दाकर्णनं नाटयन्ती) इन्दीवरिके, लघूपसर्प लघूपसर्प । आकुलीकृतास्मि दुष्टमधुकरैः । (इन्दीवरिए, लहु उवसप्प लहु उवसप्प । आउलीकिदह्मि दुट्ठमहुअरेहिं ।) (राजानमवलम्बते)

(राजा कण्ठे गृह्णाति । आरण्यकोत्तरीयं मुखादपनीय राजानमपश्यन्ती भ्रमरावलोकनं नाटयति)

राजा—(स्वोत्तरीयेण भ्रमराञ्जिवारयन्)

अयि विसृज विषादं भीरु भृङ्गास्तवैते
परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति ।
विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायताक्षी
कुवलयवनलक्ष्मीं तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति ॥ ८ ॥

गर्भदास्याः सुता–निन्द्या दासी । तूष्णीको भूत्वा–मौनावलम्बी भूय । सलिलशब्दश्रुतेन–जले चरणन्यासेन जायमानो यः शब्दस्तेन श्रुत आकर्णित ऊहितः पदशब्दस्तेन ।

कालानुरूपम्–समयोपयुक्तम् ।

लघु उपसर्प–त्वरितमागच्छ ।

अयि विसृजेति० अयि भीरु अये भयशीले, विषादम् भयजन्यं खेदम् विसृज जहिहि, एतेभृङ्गाः परिमलरसलुब्धाः सुगन्धलोभाकृष्टाः सन्तः तव वक्त्रपद्मे मुखकमले पतन्ति निपतन्ति । त्रासलोलायताक्षी भयचलविशालनयनासतीत्वं यदि भूयः पुनः पुनः प्राचुर्येण च कुवलयवनलक्ष्मीम् (सभयनेत्रसञ्चारेण तन्नीलकान्तिप्रसारविधया) नीलकमलशोभाम् विकिरसि प्रसारयसि ददासि वा तव

[आरण्यकाके समीप जाता है]

आरण्यका—(चरणशब्दको सुनती हुई) इन्दीवरिके, जल्दी आओ, जल्दी आओ। इन दुष्ट भ्रमरोंने मुझे व्याकुल कर दिया है । (राजाको पकड़ती है ।)

[राजा गलेसे लगा लेता है, आरण्यका मुंहपरसे चादर हटाकर राजाको नहीं देखती हुई भ्रमरको देखती है]

राजा—(अपनी चादरकी छोरसे भ्रमरोंका निवारण करता हुआ)

अरी ओ भोली, विषादका त्याग करो, सुगन्धिसे लुभाये गये ये भ्रमर तुम्हारे मुखपद्मपर आरहे हैं, फिर भी यदि तुम इनके भयसे आंखें इधर उधर नचाकर कुमुदकी शोभा फैलाने लगोगी तो भला ये तुम्हें कैसे छोड़ेंगे ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरण्यका—(राजनं दृष्ट्वा साध्वसं नाटयन्ती) कथं नैषेन्दीवरिका ? (सभयं राजानं त्यक्त्वापसरन्ती) इन्दीवरिके, लघ्वागच्छ लघ्वागच्छ । परित्रायस्व माम् । (कहं ण एसा इन्दीवरिआ । इन्दीवरिए, लहु आअच्छ लहु आअच्छ । परित्ताएहि मं)

विदूषकः—भवति, सकलपृथ्वीपरित्राणसमर्थेन वत्सराजेन परित्रायमाणा चेटीमिन्दीवरिकामाक्रन्दसि । (होदि, सअलपुडवीपरित्ताणसमत्थेण वच्छराएण परित्ताअन्ती चेडिं इन्दीवरिअं अक्कन्देसि)

(राजा 'अयि विसृज—' इत्यादि पुनः पठति)

आरण्यका—(राजानमवलोक्य सस्पृहं सलज्जं चात्मगतम्) अयं खलु स महाराजो यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः । (अअं क्खु सो महाराओ जस्स अहं तादेण दिण्णा । ठाणे क्खु तादस्स पक्खवादो) [आकुलतां नाटयति]

चेटी—आयासिता खल्वारण्यका दुष्टमधुकरैः । तद्यावदुपसृत्य समाश्वासयामि । आरण्यके, मा बिभिहि । एषोपागतास्मि । (आआसिआ क्खु आरण्णआ दुट्ठमहुअरेहिं ता जाव उवसप्पिअ समस्सासेमि । आरण्णए, मा

तदा त्वाम् कुतः त्यजन्ति । सुगन्धाकृष्टा भ्रमराः सुगन्धाधारमनिर्णीय पतन्तो यदा कुवलयवनं त्वदीयनेत्रप्रभया निश्चेष्यन्ति तदा तु नैव कथमपि तवमुखोपकण्ठं त्यक्ष्यन्तीति तात्पर्यम् ॥ ८ ॥

सकलपृथ्वीपरित्राणसमर्थेन-समस्तभूमण्डलरक्षादक्षेण ।

पक्षपातः-आग्रहः, अभिनिवेशः, अन्योपेक्षापूर्विकाऽनुमतिरित्यर्थः ।

आरण्यका—(राजाको देखकर लज्जाका अनुभव करती हुई) क्यों यह इन्दीवरिका नहीं है ? (सभय राजाको छोड़कर दूर होती हुई) इन्दीवरिके, शीघ्र आओ, शीघ्र आओ, बचाओ मुझे ।

विदूषक—अरी, समस्त पृथ्वीके रक्षक वत्सराज तुम्हारी रक्षा कर रहे हैं फिर भी तुम दासी इन्दीवरिकाको पुकार रही हो ।

[राजा 'अयि विसृज' इत्यादि पुनः पढ़ता है]

आरण्यका—(राजाको देखकर सस्पृह तथा सलज्ज भावसे स्वगत) ये ही वे महाराज हैं, जिनके लिये पिताजीने मुझे दान कर दिया था, पिताजीका पक्षपात ठीक ही था ।

चेटी—दुष्ट भौरोंने आरण्यकाको तंग कर रखा है, अतः उसके समीप जाकर उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भआहि । एसा उवाअदम्हि ।)

विदूषकः—भोः अपसरापसर ! एषा खल्विन्दीवरिकागता । तदेतं वृत्तान्तं प्रेक्ष्य देव्यै निवेदयिष्यति । (अङ्गुल्या निर्दिश्य) तदिदमेव कदलीगृहं प्रविश्य मुहूर्तं तिष्ठावः । (भो ओसर ओसर । एसा क्खु इन्दीवरिआ आअदा । ता एदं उत्तन्तं पेक्खिअ देवीए णिवेदइस्सदि । ता इमं एव्व कदलीघरं पविसिअ मुहुत्तं चिट्ठह्म ।)

(उभौ तथा कुरुतः)

चेटी—(उपसृत्य कपोलौ स्पृशन्ती) हञ्जे आरण्यके, कमलसदृशस्य तव वदनस्यायं दोषो यन्मधुकरा एवमपराध्यन्ति । (हस्ते गृहीत्वा) तदेहि गच्छावः । परिणतो दिवसः । (हञ्जे आरण्णए; कमलसरिसस्स तुह वअणस्स अअं दोसो जं महुअरा एव्वं अवरज्झन्ति । ता एहि गच्छह्म । परिणदो दिअहो)

(गमनं नाटयतः)

आरण्यका—(कदलीगृहाभिमुखमवलोक्य) हञ्जे इन्दीवरिके, अतिशिशिरतया सलिलस्योरुस्तम्भ इव समुत्पन्नः । तच्छनैः शनैर्गच्छावः । (हञ्जे इन्दीवरिए, अदिसिसिरदाए सलिलस्स ऊरुत्थम्भो विअ समुप्पण्णो । ता सणिअं सणिअं गच्छह्म)

अपसर–दूरंगच्छ, पलायस्व ।
परिणतः–समाप्तः ।
अतिशिशिरतया–अतिशीतलतया । ऊरुस्तम्भः–जङ्घाया निष्क्रियत्वम् ।

आश्वासन दूँ । आरण्यके, डरो मत, यही मैं आई ।

विदूषक—अजी भागो भागो, यह इन्दीवरिका आई, इस स्थितिको देखकर रानीसे कह देगी । (अंगुलीसे इशारा कर) तबतक इसी कदलीगृहमें प्रवेश कर थोड़ी देर ठहर जावें ।

[दोनों वैसाही करते हैं]

चेटी—(समीप जाकर गाल सहलाती हुई) सखी आरण्यके, कमलके समान तुम्हारे मुखका यह दोष है कि भौंरे इस तरह तंग करते हैं । (हाथ पकड़कर) आओ चलें, दिन ढल चुका है ।

[जाती हैं]

आरण्यका—(कदलीगृहकी ओर देखकर) सखी इन्दीवरिके, पानीके अतिशीतल होनेसे ऊरुस्तम्भ सा हो रहा है, अतः धीरे धीरे चलें ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चेटी—तथा। (तह) [इति निष्क्रान्ते]

विदूषकः—भोः एहि निष्क्रामावः। तां गृहीत्वैषा दास्याः सुतेन्दीवरिका गता। (भो एहि णिक्कमह्म। तं गेण्हिअ एसा दासीए सुदा इन्दीवरिआ गदा)

राजा—(निःश्वस्य) कथं गता। सखे वसन्तक, नखल्वविघ्नमभिलषितमधन्यैः प्राप्यते। (विलोक्य) सखे, पश्य पश्य—

आबद्धमुखमपीदं कण्टकितं कमलकाननं तस्याः।
सुकुमारपाणिपल्लवसंस्पर्शसुखं कथयतीव ॥ ९ ॥

(निःश्वस्य) सखे, क इदानीमुपायः पुनस्तां द्रष्टुम्।

विदूषकः—भोः त्वमेव पुत्तलिकां भङ्क्त्वेदानीं रोदिषि। न मे मूर्खस्य ब्राह्मणस्य वचनं करोषि। (भो तुमं एव्व पुत्तलिअं भञ्जिअ दार्णि रोदिसि। ण मे मुक्खस्स बह्मणस्स वअणं करेसि)

निष्क्रामावः-बहिर्भवावः।

अविघ्नम्-प्रतिबन्धं विना। अधन्यैः-भाग्यहीनैः। अभिलषित प्राप्तिः साधारणजनस्यकृते सर्वत्र वाधायुक्तैव, केचनैव महाभागाः पूर्वसुकृतमहिम्ना विनैव विघ्नं मनोरथविषयं वस्तु लभन्ते, न सर्वे इति भावः।

आबद्धमुखमिति० आबद्धमुखम् मुकुलितम् अपि इदं कमलकाननम् एतत् प्रियदर्शिकाऽवचितकुसुमम् पद्मवनम् कण्टकितम् कण्टकविशिष्टं स रोमाञ्चञ्च सत् तस्याः प्रियदर्शिकायाः सुकुमारस्य मृदोः पाणिपल्लवस्य हस्तपल्लवस्य संस्पर्शेन (जायमानम्) सुखम् आनन्दम् कथयति इव। यद्यपि कमलकाननमिदं मुखसङ्कोचेन स्फुटमभिधातुमशक्तमथापि स्वरोमाञ्चप्रदर्शनेन प्रियदर्शिकापाणिसम्पर्कसम्भवमानन्दं व्यञ्जयतीवेत्याशयः। रोमाञ्चोद्गमोहर्षसूचक इति प्रसिद्धमेव ॥ ९ ॥

पुत्तलिकामिति० यथा कश्चन बालकः करस्थितां क्रीडापुत्तलिकामात्मनैव भङ्क्त्वा

चेटी—ठीक है। (यह कहकर चली गई)

विदूषक—अजी, आओ निकल चलें, उसे साथ लेकर रांड़ इन्दीवरिका गई।

राजा—(निःश्वास छोड़कर) क्यों, चली गई। सखे वसन्तक, विना विघ्न मनोरथका फल अभागोंको नहीं मिला करता है। (देखकर) सखे ! देखो देखो—

यद्यपि यह कमलवन मुकुलित होरहा है, फिर भी इसमें रोमाञ्चतुल्य कण्टक प्रकट हो रहे हैं जो आरण्यकाके कोमलपाणिपल्लवके सम्पर्कसे जातसुखकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं ॥९॥

(निःश्वास छोड़कर) सखे, अब क्या उपाय है जिससे उसका दर्शन प्राप्त हो।

विदूषक—तुम तो खुद खिलौना तोड़कर रोने बैठे हो। मुझ मूर्ख ब्राह्मणकी बात तो तुम मानते नहीं हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा—किं मया न कृतम्।

विदूषकः—तदिदानीं विस्मृतम्, यत् तूष्णीको भूत्वोपसर्पेति मया भणितम्। अतिसंकटे भवान्प्रविश्यालीकपाण्डित्यदुर्विदग्धतया 'अयि विसृज विषादम्' इत्येतैरन्यैश्च कटुवचनैर्निभर्त्स्य सांप्रतं किं रोदिषि। पुनरप्युपायं पृच्छसि। (तं दाणिं विसुमरिदं, जं तुण्हीको भविअ उवसप्पेत्ति मए भणिदं। अदिसंकडे भवं पविसिअ अलिअपण्डिच्चदुव्विदद्धदाए 'अइ विसिज विसादं' त्ति एदेहिं अण्णेहिं अ कडुअवअणेहिं णिब्भच्छिअ संपदं किं रोदिसि। पुणो वि उवाअं पुच्छसि।)

राजा—कथं समाश्वासनमपि निर्भर्त्सितमिति भणितं मूर्खेण।

विदूषकः—ज्ञातमेव कोऽत्र मूर्ख इति। तत्किमेतेन। अस्तमयाभिलाषी भगवान्सहस्ररश्मिः। तदेह्यभ्यन्तरमेव प्रविशावः। (जाणिदं एव्व को एत्थ मुक्खोत्ति। ता किं एदेण। अत्थमआहिलासी भअवं सहस्सरस्सी। ता एहि अब्भन्तरं एव्व पविसह्म।)

राजा—(विलोक्य) अये, परिणतप्रायो दिवसः। अहह। संप्रति हि।

तद्वियोगे रोदिति, तद्वत्त्वमपि करप्राप्तां प्रियां किञ्चिदुक्त्वा विद्राव्य तदपगमे रोदिषीति भावः।

अतिसङ्कटे-भयजनके। अलीकपाण्डित्यदुर्विदग्धतया-मिथ्याबुद्धिमत्ताऽभिमानेन। कटुवचनैः-कठोरोक्तिभिः। निर्भर्त्स्य-अपमत्य, अप्रियाभिधानद्वारा विरक्तां कृत्वा।

समाश्वासनम्-भयत्यागावसरोचितं धैर्यप्रदानम्।

अस्तमयाभिलाषी-अस्तोन्मुखः। सहस्ररश्मिः-सूर्यः। एहि-आगच्छ।

परिणतप्रायः-समाप्तकल्पः।

राजा—मैंने कौनसा तुम्हारा कहना नहीं किया ?

विदूषक—तुम उस बातको भूल रहे हो, मैंने कहा था कि चुपचाप समीप जाओ, तुम अतिसंकट समयमें पहुँचकर मिथ्या चातुर्य के बल पर 'अयि विसृज विषादम्' इत्यादि वाक्योंसे उसे भर्त्सित कर अब क्यों रोते हो, फिर भी उपाय पूछते हो।

राजा—क्यों, आश्वासनको भी इस मूर्खने भर्त्सना कह दिया।

विदूषक—मालूम ही गया होगा कि हममें कौन मूर्ख है, अब इसमें क्या पड़ा है, सूर्य भगवान् डूबने जारहे हैं, अतः भीतर चलें।

राजा—(देखकर) अरे, दिन तो ढल गया। अहा ! इस समय—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता
रागोऽस्मिन्मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।
चक्राह्वोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे
सञ्जाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ॥ १० ॥

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

हत्वेति० इयम् दिनश्रीः दिवसलक्ष्मीः पद्मवनस्य कमलाकरस्य कान्तिम् विकासक्तां चारुताम् हत्वा समाप्य प्रियतमा आरण्यका इव गता, (यथेयं दिनश्रीः कमलवनं विच्छायं कृत्वा प्रस्थिता, तथैव इयं मम प्रियतमाऽपि स्वमुखशोभया कमलवनं विजित्यगतेत्याशयः) अस्मिन् सवितुः सूर्यस्य बिम्बे मण्डले मम चेतसि चित्ते इव रागः रक्तिमा अनुरागश्च अधिकम् प्राचुर्येण दृश्यते, (दिवावसाने सूर्यमण्डलं रज्यति, प्रेयस्यपगमेऽहमपि तदर्थं धृतोत्कण्ठतया समधिकरागभागिव भवामीति भावः) सहचरीम् प्रियाम् ध्यायन् मनसा स्मरन् चक्राह्वः चक्रवाक नामापक्षी नलिन्याः दीर्घिकायास्तटे (प्रियां ध्यायन्) अहमिव स्थितः । भुवनस्य जगतः दिशः दिगवकाशाः सहसा मम प्रियावियुक्तस्य दिश इव अन्धकाराः अप्रकाशाः सञ्जाताः । भुवने तमो विजृम्भते, यथा मम पुरो दुःखरूपं तम इति भावः । अत्र पादचतुष्टयेप्युमेति चतस्तोऽत्रोपमाः ॥ १० ॥

इति मैथिलपण्डित श्रीरामचन्द्रमिश्रप्रणीते प्रियदर्शिका 'प्रकाशे'
द्वितीयाङ्क प्रकाशः ॥

जिस प्रकार दिनश्री कमलवनकी शोभा साथ लेकर चली जाती है उसीप्रकार कमलोंके हरण द्वारा कमलाकरकी शोभाका अपहरण कर प्रेयसी आरण्यका चली गई, मूर्यमण्डल रक्त वर्ण हो रहा है और हमारा हृदय भी सराग होता जारहा है, चक्रवाक जैसे अपनी प्यारीका ध्यान करते हुए कमलवनीके पास रहते हैं उसीतरह मैं भी अपनी प्रियतमाका ध्यान करता हुआ इस वापीके किनारे बैठा हुआ हूँ, जैसे संसारमें चारो ओर अन्धेरा छा रहा है उसी तरह मेरे भी चारोओर अन्धकार–प्रियादौर्लभ्यजन्य निराशा व्याप्त होती जारही है ॥ १० ॥

[सभीका प्रस्थान]

द्वितीय अङ्क समाप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति मनोरमा)

मनोरमा—आज्ञप्तास्मि देव्या वासवदत्तया—'हञ्जे मनोरमे, यः स साङ्कृत्यायन्यार्यपुत्रस्य मम च वृत्तान्तो नाटकोपनिबद्धः, तस्य नर्तितव्यशेषमद्य युष्माभिः कौमुदीमहोत्सवे नर्तितव्यम्' इति। ह्यः खल्वारण्यकया प्रियसख्या शून्यहृदययान्यथैव नर्तितम्। अद्य पुनर्वासवदत्ताभूमिकया तया यदि तथा क्रियते ततोऽवश्यं देवी कोपिष्यति। तत्कुत्र तावत्तां प्रेक्ष्योपालप्स्ये। (विलोक्य) एषारण्यकात्मनैव किमपि किमपि मन्त्रयमाणा दीर्घिकातीरे कदलीगृहं प्रविशति। तद्गुल्मान्तरिता भूत्वा श्रोष्यामि तावदस्या विस्रब्धजल्पितानि। (आणत्तह्मि देवीए वासवदत्ताए—'हञ्जे मणोरमे, जो सो संगिच्चायणीए अज्जउत्तस्स मम अ उत्तन्दो णाडओवणिबद्धो, तस्स णच्चिदव्वसेसं अज्ज तुह्मेहिं कोमदीमहूसवे णच्चिदव्वं' त्ति। हिओ क्खु आरण्णआए पिअसहीए सुण्णहिअआए अण्णहा एव्व णच्चिदं। अज्ज उण वासवदत्ताभूमिआए ताए जइ तह करीअदि तदो अवस्सं देवी कुप्पिस्सदि। ता कहिं दाव तं पेक्खिअ उवालम्भिस्सं। एसा आरण्णआ अप्पणा एव्व किं वि किं वि मन्तअन्ती दिग्घिआतीले कदलीघरअं पविसदि। ता गुम्मन्तरिआ भविअ सुणिस्सं दाव से वीसद्धजप्पिदाणि।)

इति प्रवेशकः

नर्तितव्यशेषम्–अभिनेयभागोऽभिनेतुमवशिष्टः। शून्यहृदयया–अन्यत्रगतचित्तया उदासीनयेत्यर्थः, वासवदत्ताभूमिकया–धृतवासवदत्तानेपथ्यया। उपालप्स्ये–निन्दां करिष्यामि। विस्रब्धजल्पितानि–एकान्तस्वगतभाषणानि।

[मनोरमाका प्रवेश]

मनोरमा—महारानी वासवदत्ताने आदेश दिया है—'सखि मनोरमे, आर्या साङ्कृत्यायनीने हमारे तथा आर्यपुत्रके वृत्तान्तको जो नाटकरूपमें निबद्ध किया है, उसका अवशिष्ट अभिनय तुम लोग आज कौमुदी महोत्सवके अवसर पर सम्पन्न कर लो।' कल आरण्यका अन्यमनस्कताके कारण कुछ दूसरे ही प्रकारका अभिनय कर बैठी थी। आज फिर वासवदत्ताका पार्ट लेकर अगर उसने वही क्रम अपनाया तो देवी अवश्य नाराज हो जायेंगी। इसलिये वह कहाँ मिलेगी जो उसे उलाहना दूंगी। यही तो आरण्यका अपने ही आप कुछ विचारती सी तालाबके किनारे वाले कदलीगृहमें प्रवेश कर रही है। इसीलिये झाड़ीमें छिपकर तब तक इसकी रहस्य बातें सुनती हूँ। [प्रवेशक समाप्त]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशत्यासनस्था कामावस्थां नाटयन्त्यारण्यका)

आरण्यका—(निःश्वस्य) हृदय, दुर्लभजनं प्रार्थयमानं त्वं कस्मान्मां दुःखितां करोषि। (हिअअ, दुल्लहजणं पत्थअन्तो तुमं कीस मं दुक्खिदं करेसि)

मनोरमा—तदेतच्छून्यहृदयत्वस्य कारणम्। कं पुनरेषा प्रार्थयते। अवहिता तावच्छ्रोष्यामि। (तं एदं सुण्णहिअअत्तणस्स कारणं। कं उण एसा पत्थेदि। अवहिदा दाव सुणिस्सं।)

आरण्यका—(सास्रम्) कथं तथा नाम शोभनदर्शनो भूत्वा महाराज एवं सन्तापयति माम्। आश्चर्यमाश्चर्यम्। (विश्वस्य) अथवा ममैवैषाऽभागधेयता। न पुनर्महाराजस्य दोषः। (कहं तह णाम सोहणदंसणो भविअ महाराओ एव्वं सन्दावेदि मं। अच्चरिअं अच्चरिअं। अहवा मह एव्व एसा अभाअहेअदा। ण उण महाराअस्स दोसो)

मनोरमा—(सबाष्पम्) कथं महाराज एवास्याः प्रार्थनीयः साधु प्रियसखि साधु। आभिजात्यसदृशस्तेऽभिलाषः। (कहं महाराओ एव्व से पत्थणिज्जो। साहु पिअसहि साहु। आभिजाअसरिसो दे अहिलासो)

प्रार्थयमानम्–कामयमानम्। इदं हृदयविशेषणम्।
शून्यहृदयत्वस्य–अन्यमनस्कतायाः। अवहिता–सावधाना।
शोभनदर्शनः–सुन्दराकृतिः। अभागधेयता–भाग्यहीनता।
आभिजात्यसदृशः–कुलगौरवानुरूपः।

[अनन्तर आसन पर बैठी तथा कामावस्थाका अभिनय करती हुई आरण्यकाका प्रवेश]

आरण्यका—(निःश्वास छोड़कर) हृदय, दुर्लभ जनकी प्रार्थना करके तुम मुझे क्यों तकलीफ दे रहे हो?

मनोरमा—यही इसकी अन्यमनस्कताका कारण है। यह चाहती फिर किसे हैं? जरा सावधान होकर सुनूँगी।

आरण्यका—उस प्रकार प्रियदर्शन होकर महाराज मुझे इस तरह क्यों सन्ताप प्रदान कर रहे हैं। अथवा—मेरा ही यह दुर्भाग्य है, इसमें महाराजका क्या दोष है?

मनोरमा—(आंसू भरकर) क्यों, महाराज ही इसके प्रार्थनीय हैं। ठीक है, सखी ठीक है, अपनी वंशप्रतिष्ठाके अनुकूल ही तुम्हारा अभिलाष है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरण्यका—कस्मै तावदेतं वृत्तान्तं निवेद्य सह्यवेदनमिव दुःखं करिष्यामि। (विचिन्त्य) अथवा अस्ति मे हृदयनिर्विशेषा प्रियसखी मनोरमा। तस्या अप्येतल्लज्जया न पारयामि कथयितुम्। सर्वथा मरणं वर्जयित्वा कुतो मे हृदयस्यान्या निर्वृतिः। (कस्स दाव एदं उत्तन्तं णिवेदिअ सज्झवेअणं विअ दुक्खं करिस्सं। अहवा अत्थि मे हिअअणिव्विसेसा पिअसही मणोरमा। ताए वि एदं लज्जाए ण पारेमि कहिदुं। सव्वहा मरणं वज्जिअ कुदो मे हिअअस्स अण्णा णिव्वुदी)

मनोरमा—(सास्रम्) हा धिक् हा धिक्। अतिभूमिं गतोऽस्यास्तपस्विन्या अनुरागः। तत्किमिदानीमत्र करिष्यामि। (हद्धि हद्धि। अदिभूमिं गदो से तवस्सिणीए अणुराओ। ता किं दाणिं एत्थ करिस्सं)

आरण्यका—(साभिलाषम्) अयं स उद्देशः, यस्मिन्मधुकरैरायास्यमानावलम्ब्य महाराजेन समाश्वासितास्मि 'भीरु मा बिभीहि' इति। (अअं सो उद्देसो, जस्सिं महुअरेहिं आआसिज्जन्ती ओलम्बिअ महाराएण समस्सासिदह्मि 'भीरु मा भआहि' त्ति)

मनोरमा—(सहर्षम्) कथमेषापि दृष्टा महाराजेन। सर्वथास्त्यस्या

सह्यवेदनम्-सोढुं शक्यम्। हृदयनिर्विशेषा-हृदयादभिन्ना। निर्वृतिः-शान्तिः।

अतिभूमिंगतः-अत्यारूढः।

उद्देशः—प्रदेशः, यथा दृश्यते—'उद्देशोऽयं सरसकदलीश्रेणिशोभातिशायी'ति।

आरण्यका—अपने इस समाचारको किससे कहकर अपने दुःखको सहन करनेके योग्य बनाऊंगी? (सोचकर) अथवा—हमारी अभिन्नहृदया सखी मनोरमा तो है। लज्जाके कारण उससे भी यह बात नहीं कह सकूँगी। सर्वथा मृत्यु छोडकर कहीं भी हमारे हृदयको शान्ति नहीं होगी।

मनोरमा—हाय हाय! इस तपस्विनीका अनुराग बहुत दूर पहुँच चुका है। इस सम्बन्धमें मैं क्या कर सकती हूँ।

आरण्यका—(साभिलाष) यह वही स्थान है जहाँ मधुकरों द्वारा तंगकी गई मैंने पकड़कर महाराजसे आश्वासन प्राप्त किया था कि—'भरी भोली, मत डर'।

मनोरमा—(सहर्ष) क्यों महाराजने भी इसे देख लिया है? तब तो सर्वथा इसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवितव्यस्योपायः यावदुपसृत्य समाश्वासयाम्येनाम्। (सहसोपसृत्य) युक्तं नाम हृदयस्यापि लज्जितुम् ?। (कहं एसा वि दिट्ठा महाराएण। सव्वहा अत्थि से जीविदव्वस्स उवाओ। जाव उवसप्पिअ समस्सासेमि णं। जुत्तं णाम हिअअस्स विलज्जिदुं ?)

आरण्यका—(सलज्जमात्मगतम्) हा धिक् हा धिक्। सर्वं श्रुतमेतया। तदत्र युक्तमेव प्रकाशयितुम्। (प्रकाशं हस्ते गृहीत्वा) प्रियसखि, मा कुप्य मा कुप्य। लज्जात्रापराध्यति। (हद्धि हद्धि। सव्वं सुदं एदाए। ता एत्थ जुत्तं एव्व पआसइदुं पिअसहि, मा कुप्प मा कुप्प। लज्जा एत्थ अवरज्झदि)

मनोरमा—(सहर्षम्) सखि, अलं शङ्कया। एतन्मे आचक्ष्व—सत्यमेव त्वं महाराजेन दृष्टा न वेति। (सहि, अलं सङ्काए। एदं मे आअक्खसच्चं एव्व तुमं महाराएण दिट्ठा ण वेत्ति)

आरण्यका—(सलज्जमधोमुखी) श्रुतमेव प्रियसख्या सर्वम्। (सुदं एव्व पिअसहीए सव्वं)

मनोरमा—यदि दृष्टा महाराजेन त्वं तदलं सन्तापितेन। स एवेदानीं दर्शनोपायपर्याकुलो भविष्यति। (जइ दिट्ठा महाराएण तुमं ता अलं सन्तप्पिदेण। सो एव्व दाणिं दंसणोवाअपज्जाउलो हविस्सदि)

युक्तं नाम हृदयस्यापि लज्जितुम्—हृदयान्नकोऽपि लज्जते, तव हृदयाभिन्ना चाहं तन्मत्कृतलज्जया त्वया न युक्तं कृतमिति प्रियसख्युपालम्भः।

लज्जात्रापराध्यति—निजोरागविषयोऽनुरागो मया यत्तेनोक्तस्तत्र लज्जैव मुख्यं कारणमित्यर्थः।

दर्शनोपायपर्याकुलः—त्वदवलोकनचिन्तावान्।

जीनेका उपाय है। जब तक समीप पहुंचकर इसे आश्वासन देती हूँ। (सहसा समीप जाकर) अरी, क्या अपने हृदयसे भी लाज की जाती है ?

आरण्यका—(लज्जापूर्वक, स्वगत) हाय हाय, इसने सब सुन लिया। तब तो यही ठीक है कि प्रकाशित कर दिया जाय। (प्रकाश—हाथ पकड़कर) प्रियसखी, रंज मत होओ, इसमें लज्जाका अपराध है।

मनोरमा—(सहर्ष) सखि, शङ्काकी कुछ बात नहीं है, यह तो मुझे बताओ वस्तुतः तुमको महाराजने देखा या नहीं ?

आरण्यका—(लज्जापूर्वक मुंह नीचे करके) तुमने तो सब सुन ही लिया है।

मनोरमा—यदि महाराजने तुझे देख लिया है तब सन्ताप करना व्यर्थ है, वह खुद अब दर्शनके उपायके लिये बेचैन होंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आरण्यका—(स्वगतम्) अयं सखीजनः पक्षपातेन मन्त्रयते। (प्रकाशम्) अयि सखीपक्षपातिनि, देवीगुणनिगलनिबद्धे खलु तस्मिन् जने कुत एतत्। (अअं सहीअणो पक्खवादेण मन्तेदि। अइ सहिपक्खवादिणि, देवीगुणणिअलणिबद्धे क्खु तस्सिं जणे कुदो एदं)

मनोरमा—(विहस्य) हला अपण्डिते, कमलिनीबद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पटः कुतस्तामनासाद्य स्थितिं करोति। (हला अपण्डिदे, कमलिणीवद्धाणुराओ वि महुअरो मालदीं पेक्खिअ अहिणवरसास्सादलम्पडो कुदो तं अणासादिअ ट्ठिदिं करेदि)

आरण्यका—किमेतेनासम्भावितेन। तदेहि। अधिकं खलु शरदातपेन सन्तप्तान्यद्यापि न मेऽङ्गानि सन्तापं मुञ्चन्ति। (किं एदिणा असम्भाविदेण ता एहि। अहिअं क्खु सरदादवेण सतप्पाइ अज्ज वि ण मे अङ्गाइ सन्दावं मुञ्चन्दि)

सखीपक्षपातिनि–सखीविषये धृतपक्षपाता। देवीगुणनिगलबद्धे–वासवदत्ता सौन्दर्यादिपाशसन्दानिते। राजा वासवदत्तानुरक्त इति तत्र मद्विषयकोऽनुरागः कथमिवोपद्यत इत्याशयः।

कमलिनीबद्धानुरागः–नलिनीधृतस्नेहः। अभिनवरसास्वादलम्पटः–नवरसग्रहणलालसः। ताम्–मालतीम्, अनासाद्य–अप्राप्य। यथा कमलिन्यामनुरक्तोऽपि भ्रमरो मालतीं दृष्ट्वा तदभिनवरसप्रेप्सया तत्र धावत्येव तथैव वासवदत्तायामनुरक्तोऽपि राजा तव रूपमाधुरीमधिगन्तुमवश्यं त्वदन्तिकमुपैष्यतीति रूपकरहस्यम्।

असम्भावितेन–असम्भविना।

शरदातपेन–शारदसूर्यकरेण।

आरण्यका—(स्वगत) यह सखी पक्षपात करके ऐसा कह रही है। (प्रकाश) महारानीके गुणरूप शृङ्खलामें वद्ध महाराजके लिये यह बात नहीं हो सकती है।

मनोरमा—(हँसकर) सखि तुम नासमझ है, कमलिनीसे अनुराग रखने वाला भ्रमर भी मालतीको देखकर अभिनव रसके आस्वादनके लिये लालायित होकर उसे विना पाये कहां धीरज रखता है।

आरण्यका—इस असम्भावित बातमें क्या रखा है आओ शरत्कालिक धूपसे संतप्त हुए हमारे यह अङ्ग अभी भी सन्तापका त्याग नहीं कर रहे हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनोरमा—अयि लज्जालुके, न युक्तमेतामवस्थां गतयापि त्वया आत्मा प्रच्छादयितुम्। (अइ लज्जालुए, ण जुत्तं एदं अवत्थं गदाए वि तुए अप्पा पच्छादिदुं)

(आरण्यका मुखमवनमयति)

मनोरमा—अयि अविस्रम्भशीले, किमिदानीं प्रच्छायसि। निश्वासनिभविनिर्गतो दिवसं रात्रिमपि तवानुरागोऽविरतपतत्कुसुमशरशरनिवहप्रवृत्तहुङ्कारशब्द इव न भणति ? (आत्मगतम्) अथवा न खल्वयं काल उपालम्भस्य। तत्तावन्नलिनीपत्राण्यस्या हृदये दास्यामि। (उत्थाय दीर्घिकाया नलिनीपत्राणि गृहीत्वारण्यका हृदये ददती) समाश्वसितु सखी समाश्वसितु। (अइ अविस्सम्भसीले, किं दाणिं पच्छादेसि। णीसासणिहविणिग्गओ दिअहं रत्तिं वि तुज्झ अणुराओ अविरदपडन्तकुसुमसरसरणिवहप्पउत्तहुङ्कारसद्दो विअ ण अहवा ण हु अअं कालो उवालम्भस्स। ता दाव णलिणीपत्ताइ से हिअए दाइस्सं। समस्ससदु सही समस्ससदु)

(ततः प्रविशति विदूषकः)

एतामवस्थांगतया–इमां दीनां दशामुपेतया। प्रच्छादयितुम्–गोपयितुम्।
अविस्रम्भशीले–अविश्वासस्वभावशालिनि। निःश्वासनिभविनिर्गतः–निःश्वासवद्बहिर्भवन्।

अविरतेति० अविरतम् सततम् पतता कुसुमशरस्य कामस्य शराणाम् बाणानाम् निवहात् समूहात् प्रवृत्तः प्रकटीभूतः हुंकारशब्द इव। तत्रायमनुरागोऽनायासलक्ष्यः सर्वमपि रहस्यमाख्याति तदलं तद्गोपनप्रयासेनेति भावः।

मनोरमा—अरी लज्जावती, इस स्थितिमें पहुंच कर भी तुम अपनेको छिपा रही है यह तो ठीक नहीं है।

[आरण्यका मुहको अवनत कर लेती है]

मनोरमा—अरी विश्वास नहीं रखनेवाली, अब क्या छिपाती है ? सांसकी तरह दिनरात निकलनेवाला तुम्हारा यह अनुराग सतत गिरनेवाले कामशरसमुदायमें प्रवृत्त हुङ्कार शब्दकी तरह कह रहा है। (स्वगत) अथवा यह समय उलाहना देनेका नहीं है। तब तक इसके हृदयपर कमलके पत्ते रखती हूं। (उठकर तालाबसे कमलके पत्ते लाकर आरण्यकाके हृदयपर देती हुई) सखी, धीरज धरो धीरज धरो।

[अनन्तर विदूषकका प्रवेश]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विदूषकः—अतिमहान्खलु प्रियवयस्यस्यारण्यकाया उपर्यनुरागः। येन परित्यक्तराजकार्यस्तस्या एव दर्शनोपायं चिन्तयन्नात्मानं विनोदयति। (विचिन्त्य) कुत्रेदानीं तां प्रेक्षे। अथवा तत्र दीर्घिकायामन्विष्यामि। (अदिमहन्तो क्खु पिअवअस्सस्स आरण्णआए उवरि अणुराओ। जेण परिच्चत्तराअकज्जो ताए एव्व दंसणोवाअं चिन्तअन्तो अप्पाणं विणोदेइ। कहिं दाणिं तं पेक्खामि। अहवा तहिं दिग्घिआए अण्णेसामि) [परिक्रामति]

मनोरमा—(आकर्ण्य) पदशब्द इव श्रूयते। तत्कदलीगुल्मान्तरिते भूत्वा पश्यावस्तावत्क एष इति। (पदसद्दो विअ सुणीअदि। ता कदलीगुम्मन्तरिदा भविअ पेक्खह्म दाव को एसोत्ति)

(उभे तथा कृत्वा पश्यतः)

आरण्यका—कथं स एव महाराजस्य पार्श्वपरिवर्ती ब्राह्मणः। (कहं (सो एव्व महाराअस्स पस्सपरिवट्टी बह्मणो)

मनोरमा—कथं वसन्तक एव (सहर्षमात्मगतम्) अपि नाम तथा भवेत्। (कहं वसन्तओ एव्व। अविणाम तह हवे)

विदूषकः—(दिशोऽवलोक्य) किमिदानीमारण्यका सत्यमेव संवृत्ता। (किं दाणिं आरण्णआ सच्चं एव्व संवुत्ता)

परित्यक्तराजकार्यः—त्यक्तसकलराजकार्यः।

पार्श्वपरिवर्त्ती—सदासन्निहितः, सदासन्निहितप्रतिपादनेन तद्रहस्यज्ञातायोग्यतोक्ता।

विदूषक—हमारे प्रियवयस्यका आरण्यकाके ऊपर बड़ा प्रेम है। जिसकी वजहसे समस्त कार्यभारका त्याग करके उसीके दर्शनोपायको सोचते हुए वह अपना दिल बहलाया करते हैं। इस समय उसे कहाँ देखूं? अथवा उस तालावके पास खोज करूं।

मनोरमा—(सुनकर) पदशब्दसा सुना जारहा है। इसीलिये केलेकी झुरमुटमें विलीन होकर तवतक देखेंकि यह कौन है?

[दोनों वैसा ही करती हैं]

आरण्यका—क्यों, वही तो महाराजके साथ रहने वाला ब्राह्मण है।

मनोरमा—क्यों, वसन्तक ही है! (सहर्ष, स्वगत) अगर वैसा ही हो जाता।

विदूषक—(चारो ओर देखकर) क्या इस समय वह ठीक ही 'आरण्यका' हो रही है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनोरमा—(सस्मितम्) सखि, राजवयस्यः खलु ब्राह्मणस्त्वामुद्दिश्य मन्त्रयते। तत्तावदवहिते शृणुवः। (सहि, राअवअस्सो क्खु वह्मणो तुमं उद्दिसिअ मन्तेदि। ता दाव अवहिदा सुणह्म)

(आरण्यका सस्पृहं सलज्जं च शृणोति)

विदूषकः—(सोद्वेगम्) यदा तावन्मया गुरुमदनसंतापनिस्सहस्य प्रियवयस्यस्यास्वस्थवचनेन देव्योर्वासवदत्तापद्मावत्योरन्यासां च देवीनां भवनान्यन्विष्यता न सा दृष्टा, तदा यत्र दीर्घिकायां दृष्टा एतामपि तावत्प्रेक्षिष्य इत्यागतोऽस्मि। तद्यावदिहापि नास्ति। किमिदानीं करिष्ये। (जदा दाव मए गुरुअमअणसंदावणीसहस्स पिअवअस्सस्स अस्सत्थवअणेण देवीणं वासवदत्तापदुमावदीणं अण्णाणं अ देवीणं भवणाइ अण्णेसन्तेण ण सा दिठ्ठा, तदा जहि दिग्घिआए दिट्ठा एदं वि दाव पेक्खिस्सं ति आअदोह्मि। ता जाव इह णत्थि। किं दाणिं करिस्सं)

मनोरमा—श्रुतं प्रियसख्या ? (सुदं पिअसहीए ?)

विदूषकः—(विचिन्त्य) अथवा भणित एवाहं वयस्येन—'यदि तामन्विष्यन्न प्रेक्षसे, तत्ततोऽपि तावद्दीर्घिकातस्तस्याः करतलस्पर्शद्विगु-

---

गुरुमदनसन्तापनिःसहस्य—कामकृतातितापसहनाशक्तस्य। अस्वस्थवचनेन—सखेदोक्त्या। करतलस्पर्शद्विगुणितसुखशीतलानि—आरण्यकापाणिसम्पर्कमहिम्ना द्विगुणीभूतसुखदशैत्यानि। आरण्यकाऽलाभे तत्स्पृष्टनलिनीपत्राहरणप्रेरणया राज्ञो हृदये वर्त्तमानस्तद्विषयोऽनुरागोऽव्यक्तः॥

मनोरमा—(हंसकर) सखी, राजाका प्रियमित्र वह ब्राह्मण तुम्हारे ही विषयमें कुछ मन्त्रणा कर रहा है। इसलिये तब तक सावधानीसे सुनें।

(आरण्यका स्पृहा और लज्जासे सुनती है)

विदूषक—(खेदपूर्वक) जब मैंने गुरुतर काम पीड़ाके सहनेमें असमर्थ प्रियवयस्यके खेद पूर्ण कथनसे प्रेरित होकर वासवदत्ता, पद्मावती तथा अन्यान्य महारानियोंके प्रासादोंमें उसे खोजकर नहीं देखा, तब जिस तालाबके किनारे वह देखी गई थी, उसे भी देखलूँ इसीसे यहाँ भी चला आया। लेकिन वह यहाँ भी नहीं है, अब क्या करूँ।

मनोरमा—प्रियसखी, सुना तुमने ?

विदूषक—(सोचकर) मुझे प्रियवयस्यने तो कहा ही था, 'यदि उसे खोजने पर भी नहीं देखसको तो उस दीर्घिकासे आरण्यकाके हाथोंके स्पर्शसे द्विगुण सुखद तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

णितसुखशीतलानि नलिनीपत्राणि गृहीत्वागच्छ' इति। तत्कथमेतानि ज्ञातव्यानि। (अहवा भणिदो एव्व अहं वअस्सेण-'जइ तं अण्णेसन्तो ण पेक्खसि, ता तदो वि दाव दिग्घिआदो ताए करअलप्परिसदिउणिअसुहसीअलाइ णलिणीपत्ताइ गेण्हिअ आअच्छ' त्ति। ता कहं एदाइ जाणिदव्वाइ)

मनोरमा—अयं ममावसरः। (अअं मे अवसरो) (उपसृत्य विदूषकं हस्ते गृहीत्वा) वसन्तक, एहि। अहं ते ज्ञापयामि। (वसन्तअ, एहि। अहं दे जाणावेमि)

विदूषकः—(सभयम्) कस्य त्वं ज्ञापयसि। किं देव्याः। न खलु मया किमपि मन्त्रितम्। (कस्स तुमं जाणावेसि। किं देवीए। ण हु मए किं वि मन्तिदं)

मनोरमा—वसन्तक, अलं शङ्कया। यादृश्यारण्यकायाः कृते आत्मनः प्रियवयस्यस्यावस्था त्वया वर्णिता, ततो द्विगुणतरा भर्तुरपि कृते मम प्रियसख्या अवस्था। तत्पश्य पश्य। (वसन्तअ, अलं संकाए। जादिसी आरण्णआए किदे अत्तणो पिअवअस्सस्स अवत्था तुए वण्णिदा, तदो दिउणदरा भट्टिणो वि किदे मह पिअसहीए अवत्था। ता पेक्ख पेक्ख) [उपसृत्यारण्यकां दर्शयति]

विदूषकः—(दृष्ट्वा सहर्षम्) सफलो मे परिश्रमः। स्वस्ति भवत्यै। (सफलो मे परिस्समो। सोत्थि होदीए)

आत्मनः प्रियवयस्यस्य-स्वमित्रस्य राज्ञः।

शीतल कमलिनी पत्र लेते आना'। तब यह कैसे जाना जाय कि वैसे कमलिनीपत्र हैं कौन ?

मनोरमा—यही मेरे लिये उपयुक्त अवसर है (समीप जाकर और विदूषकका हाथ पकड़ कर) वसन्तक, आओ, मैं तुम्हें जना देती हूँ।

विदूषक—(भयपूर्वक) तुम किसे जनाने जारही हो ? क्या महारानीको ? मैंने कुछ भी नहीं कहा है ?

मनोरमा—वसन्तक, आशङ्का करना व्यर्थ है। आरण्यकाके लिये अपने प्रियवयस्यकी जैसी अवस्थाका वर्णन तुमने किया है, महाराजके लिये आरण्यकाकी अवस्था उससे भी दुगुनी है, देखो तो, देखो। (समीप जाकर आरण्यकाको दिखाती है)

विदूषक—(देखकर, हर्षसे) मेरा परिश्रम सफल हुआ, तुम्हारा भला हो।

 Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(आरण्यका सलज्जं कमलिनीपत्राण्यपनीयोत्तिष्ठति ।)

मनोरमा—आर्य वसन्तक, तव दर्शनेनैवापगतः प्रियसख्याः संतापः, येन स्वयमेव नलिनीपत्राण्यपनयति । तदनुगृह्णात्वार्य इमानि । (अज्ज वसन्तअ, तुह दंसणेण एव्व अवगदो पिअसहीए संदाओ, जेण सअं एव्व णलिणीपत्ताइ अवणेदि । ता अणुगिण्हादु अज्जो इमाइ ।

आरण्यका—(सावेगम्) अयि परिहासशीले, कस्मान्मां लज्जयसि। (अइ परिहाससीले, कीस मं लजावेसि)

विदूषकः—(सविषादम्) तिष्ठन्तु तावन्नलिनीपत्राणि । अतिलज्जालुका ते प्रियसखी । तत्कथमेतयोः समागमो भविष्यति । (चिट्ठन्दु दाव णलिनीपत्ताइ । अदिलज्जालुआ दे पिअसही । ता कहं एदाणं समाअमो हविस्सदि)

मनोरमा—(क्षणं विचिन्त्य सहर्षम्) वसन्तक, एवमिव । (वसन्तअ, एव्वं विअ) (कर्णे कथयति)

विदूषकः—(अपवार्य) साधु प्रियसखि साधु । यावदेव युवां नेपथ्यग्रहणं कुरुथः, तावदेवाहमपि वयस्यं गृहीत्वागच्छामि । (साहु पिअसहि साहु । जाव एव्व तुह्मे णेवच्छग्गहणं करेत्थ, दाव एव्व अहं वि वअस्सं गेण्हिअ आअच्छामि) (इति निष्क्रान्तः)

अनुगृह्णातु-ग्रहणेन सनाथयतु ।
अतिलज्जालुका-अतित्रपाशीला । एतयोः-राजारण्यकयोः ।
नेपथ्यग्रहणम्-वेशपरिग्रहम् ।

[आरण्यका लज्जापूर्वक कमलिनी पत्रोंको दूर हटाकर खड़ी होती है]

मनोरमा—वसन्तक, तुम्हारे दर्शनसे ही इसके सन्ताप मिट गये, जिससे यह खुद नलिनीपत्रोंको दूर कर रही है । तु इन नलिनी पत्रोंको लेलो । और इन नलिनी पत्रोंको लेकर इन पर अनुग्रह करो ।

आरण्यका—(आवेगके साथ) अरी दिल्लगी पसन्द, क्यों मुझे लज्जित कर रही है?

विदूषक—(विषादसे) तब तक यह नलिनो पत्र यहीं रहें, तुम्हारी सखी बड़ी लाज करने वाली है, फिर कैसे इनका समागम होगा ?

मनोरमा—(थोड़ी देर तक सोचकर, सहर्ष) वसन्तक, इसी तरह (कानों में कहती है)

विदूषक—ठीक है प्रियसखी, ठीक है । (छिपाकर) जब तक तुम दोनों नेपथ्य ग्रहण करोगी तब तक मैं भी प्रियवयस्यको पकड़े आता हूँ । (जाता है)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

ए.नं. 802
Acc-968

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनोरमा—अतिकोपने, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । नर्तितव्यमस्माभिस्तस्यैव नाटकस्य नर्तितशेषम् । तदेहि । प्रेक्षागृहमेव गच्छावः । (परिक्रम्यावलोक्य) इदं प्रेक्षागारम् । यावदेहि प्रविशावः । (प्रविष्टकेनावलोक्य) साधु साधु । सर्वं सज्जीकृतम् । देव्यागन्तव्यम् । (अदिकोवणे, उट्ठेहि उट्ठेहि । णच्चिदव्वं अम्होहिं तस्स एव्व णाडअस्स णच्चिदसेसं । ता एहि । पेक्खाघरं एव्व गच्छह्य । इदं पेक्खागारं । जाव एहि पविसह्य । साहु साहु । सव्वं सज्जीकिदं देवीए आअन्तव्वं)

(ततः प्रविशति देवी सांकृत्यायनी विभवतश्च परिवारः)

वासवदत्ता—भगवति, अहो ते कवित्वम् । येनैतद्गूढवृत्तान्तं नाटकोपनिबद्धं सानुभवमप्यस्माकमार्यपुत्रचरितमदृष्टपूर्वमिव दृश्यमानमधिकतरं कौतूहलं वर्धयति । (भअवदि, अहो दे कवित्तणं । जेण एदं गूढवुत्तन्तं णाडओवणिवद्धं साणुभवं वि अह्माणं अज्जउत्तचरिदं अदिट्ठपुव्वं विअ दीसयन्तं अहिअअरं कोदूहलं वड्ढअदि)

सांकृत्यायनी—आयुष्मति, आश्रयगुण एवायमीदृशः । यदसारमपि काव्यमवश्यमेव शृण्वतां श्रवणसुखमुत्पादयति । पश्य,

---

तस्यैव नाटकस्य-साङ्कृत्यायनीरचितस्य । नर्त्तितशेषम्-यावानंशोऽभिनीतस्ततोऽवशिष्टम् । प्रेक्षागृहम्-रङ्गशालाम् ।

अहो ते कवित्वम्-आश्चर्यजनकं तव काव्यसृष्टिसामर्थ्यम् । गूढवृत्तान्तम्-रहस्यविषयम् । नाटकोपनिबद्धम्-रूपकसमाविष्टम् । सानुभवम्-अनुभूतम् । अदृष्टपूर्वम्-नवम् । कौतूहलम्-उत्कण्ठाम् । आश्रयगुणः—यमाधारीकृत्य काव्यं प्रवृत्तं तस्य नायकस्य गुणः । असारम्-विगुणम् ।

मनोरमा—अरी कोपशीले, उठ उठ, हमलोगोंको उस नाटकके शेष भागका अभिनय करना है, इसलिये आओ, नाट्यशाला चलें । (थोड़ा चलकर और देखकर) यही तो नाट्यशाला है, तब तक प्रवेश करें । ठीक है ठीक है, सब प्रस्तुत है, महारानी आती हीं होंगी ।

(देवी, साङ्कृत्यायनी, और विभवानुकूल परिवारका प्रवेश होता है)

वासवदत्ता—देवि, तुम्हारा कवित्व धन्य है, क्योंकि अनुभवपूर्ण तथा मूढ वृत्तान्त यह हमारे आर्यपुत्रका चरित्र अदृष्टपूर्वकी तरह दिखता हुआ अधिकतर कौतूहलको बढ़ारहा है ।

साङ्कृत्यायनी—यह तो इसका पात्रगुण है जिसके कारण असार भी काव्य श्रोताओं के श्रोत्रको सुख देते हैं, देखो—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रायो यत्किञ्चिदपि प्राप्नोत्युत्कर्षमाश्रयान्महतः।
मत्तेभकुम्भतटगतमेति हि श्रृङ्गारतां भस्म॥ १॥

वासवदत्ता—(सस्मितम्) भगवति, सर्वस्य वल्लभो जामाता भवतीति ज्ञायत एवैतत्। तत्किमेतेन कथानुबन्धेन। वरं तदेव नर्तितव्यं द्रष्टुम्। (भअवदि, सव्वस्स वल्लहो जामादा होदित्ति जाणीअदि एव्व एदं ता किं एदिणा कहाणुबन्धेण। वरं तं एव्व णच्चिदव्वं दट्ठुं)

सांकृत्यायनी—एवम्। इन्दीवरिके, प्रेक्षागृहमादेशय।

चेटी—एतु एतु भट्टिनी। (एदु एदु भट्टिणी) (सर्वाः परिक्रामन्ति)

सांकृत्यायनी—(विलोक्य) अहो प्रेक्षणीयता प्रेक्षागृहस्य।

आभाति रत्नशतशोभितशातकुम्भ-
स्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदामरम्यम्।

प्रायोयदिति॰ यत्किञ्चित् असारम् अपि वस्तु महतः प्रधानस्य गुणवतश्च आश्रयात् सम्बन्धात् उत्कर्षम् श्रेष्ठत्वम् प्रायः भूयसा प्राप्नोति। तत्रदृष्टान्तमाह—मत्तेभेति॰ मत्तः मदस्रावीय इभः हस्ती तस्य कुम्भतटम् मस्तकस्थलम् गतम् प्राप्तम् भस्म भसितम् श्रृङ्गारताम् गजमण्डनत्वम् एति गच्छति। साधारणस्यापि वस्तुनः श्रेष्ठवस्तुसम्पर्कमहिम्ना प्रकर्षो जायते, यथा करिकुम्भसम्पर्कप्रभावात् सामान्यमपि भस्म मण्डनतां प्रपनीपद्यते। दृष्टान्तोऽलङ्कारः। आर्या वृत्तम्॥ १॥

वल्लभः-प्रियः। जामाता सर्वस्यप्रियो भवति, तव जामाता वत्सराजो मत्सम्बन्धादतस्त्वं तं महान्तं गुणगणपूर्णञ्चोत्प्रेक्ष्य तत्सम्बन्धद्वारा स्वग्रथितं नाटकं गौरवान्वितं मन्यसे, वस्तुतस्तु तव कवित्वमेव विजृम्भत इति तात्पर्यम्।

प्रेक्षणीयता—सौन्दर्यम्। प्रेक्षागृहस्य-रङ्गशालायाः।

अभातीति॰ रत्नशतैः नानारत्नैः शोभितेषु अलङ्कृतेषु शातकुम्भस्तम्भेषु स्वर्ण-

---

कोई भी वस्तु महान् आश्रय प्राप्त करने पर उत्कर्षको प्राप्त करती है, मतवाले हाथीके कुम्भस्थल पर पहुँचा हुआ भस्म भी श्रृङ्गार कहाने लगता है॥ १॥

वासवदत्ता—भगवति, दामाद सबको प्रिय होते हैं, यह बात सबको मालूम है, फिर बात बनानेकी क्या जरूरत है। इससे अच्छा है कि हम अभिनय को ही देखें।

साङ्कृत्यायनी—ठीक है, इन्दीवरिके, नाट्यशालाका मार्ग तो दिखलाना।

चेटी—आइये महारानी जी आइये। (सभी चलती हैं)

साङ्कृत्यायनी—(देखकर) नाट्यशालाकी सुन्दरता विलक्षण है।

सैकड़ों रत्नोंसे सुशोभित सुवर्णमय स्तम्भों पर लटकती हुई स्थूलमुक्ताकी मालाओंसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अध्यासितं युवतिभिर्विजिताप्सरोभिः
प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत् ॥ २॥

मनोरमारण्यके—(उपसृत्य) जयतु जयतु भट्टिनी। (जेदु जेदु भट्टिणी)

वासवदत्ता—मनोरमे, अतिक्रान्ता खलु सन्ध्या। तद्गच्छतम्। लघु गृहीतं नेपथ्यम्। (मणोरमे, अदिक्कन्दा क्खु संज्भा। ता गच्छह। लहु गेण्हह णेवच्छं)

उभे—यद्देव्याज्ञापयति। (जं देवी आणवेदि) (इति प्रस्थिते)

वासवदत्ता—आरण्यके, एतैरेव मदङ्गपिनद्धैराभरणैर्नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं प्रसाधय। (आभरणान्यङ्गादवतार्यारण्यकायाः समर्पयति) मनोरमे, त्वमपि नलगिरिग्रहणपरितुष्टेन तातेनार्यपुत्राय दत्तान्याभरणानीन्दीवरि-

---

रचितासु स्थूणासु अवसक्तानि लम्बीभूय स्थितानि यानि पृथूनि महान्ति मौक्तिकदामानि मुक्तास्रजः तैः रम्यम् रमणीयम्, विजिताप्सरोभिः जितसुरवनिताभिः युवतिभिः प्रौढनारीभिः अध्यासितम् अधिष्ठितम् एतत् प्रेक्षागृहम् सुरविमानसमानम् देवयानोपमम् आभाति भासते। अत्र प्रेक्षागृहे स्वर्णनिर्मितस्तम्भेषु मौक्तिकस्रजोलम्बन्ते, स्तम्भेषु नानामणयश्चावसक्ताः सन्ति, युवतयश्चात्र स्थितास्तदित्थमेतत् प्रेक्षागृहं सुरविमानसमं प्रतीयते, उपमाने सुरविमाने देवाङ्गनासत्त्वं तस्यालङ्कृतत्वं चानुक्तमप्यर्थबललभ्यमिति बोध्यम्। उपमाऽत्रालङ्कारः। 'तपनीयं शातकुम्भं सुवर्णं रुक्महाटकम्' इति कोशः॥ २॥

अतिक्रान्ता—व्यतीता। लघु—शीघ्रम्। गृहीतम्—धारयतम्। नेपथ्यम्—अभिनयापेक्षितां भूमिकाम्।

मदङ्गपिनद्धैः—मया धारितैः। आभरणैः—भूषणैः। नेपथ्यभूमिम्—वेशपरिग्रहस्थानम्। प्रसाधय—मण्डय। नलगिरिग्रहणपरितुष्टेन—नलगिरिर्नाम काष्ठगजस्तस्य-

---

रमणीय तथा अप्सराओंको स्वरूपशोभासे परास्त करनेवाली युवतियोंसे अध्यासित यह नाट्यशाला देवविमानके समान मालूम पड़ती है॥ २॥

मनोरमा और आरण्यका—(समीप जाकर) जय हो जय हो महारानीकी।

वासवदत्ता—मनोरमे, सन्ध्या बीत गई, जाओ, शीघ्र तुम दोनों नेपथ्य ग्रहण करो।

दोनों—महारानीकी जैसी आज्ञा। (जाती हैं)

वासवदत्ता—इन्हीं मेरे द्वारा धारित आभरणोंसे अपनेको नेपथ्य भूमिमें जाकर सजा लो। [शरीरसे गहने उतारकर आरण्यकाको सौंपती है] मनोरमे, तुम भी इन्दी-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कासकाशाद्गृहीत्वा नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं मण्डय, येन सुसदृशी दृश्यसे महाराजस्य। (आरण्णए, एदेहिं एव्व मदङ्गपिणद्धेहिं आभरणेहिं णेवच्छभूमिं गदुअ अप्पाणं पसाहेहि। मणोरमे, तुमं वि णलगिरिग्गहणपरितुट्ठेण तादेण अज्जउत्तस्स दिण्णाइ आभरणाइ इन्दीवरिआसआसादो गेण्हिअ णेवच्छभूमिअं गदुअ अप्पाणं मण्डेहि, जेण सुसदिसी दीससि महाराअस्स)

(मनोरमा इन्दीवरिकासकाशादाभरणानि गृहीत्वा सहारण्यकया निष्क्रान्ता)

इन्दीवरिका—इदमासनम्। उपविशतु भट्टिनी। (एदं आसणं। उवविसदु भट्टिणी)

वासवदत्ता—(आसनं निर्दिश्य) उपविशतु भगवती। (उपविसदु भअवदी)

[उभे उपविशतः। ततः प्रविशति गृहीतनेपथ्यः कञ्चुकी]

कञ्चुकी—

अन्तःपुराणां विहितव्यवस्थः
पदे पदेऽहं स्खलितानि रक्षन्।

ग्रहणेन वत्सराजकृतेन आमणेन परितुष्टेन प्रसन्नेन। प्रद्योतो हि वत्सराजं पराजेतुं काष्ठकरिणं वने विससर्जेति कथात्र ध्यातव्या, कालिदासोप्याह–'अत्रोद्भ्रान्तःकिल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पात्' इति मेघदूते। सुसदृशी–योग्या अनुरूपा।

अन्तःपुराणामिति० अन्तःपुराणाम् अवरोधवधूजनानाम् विहिता सम्पादिता व्यवस्था व्यवस्थितिः येन तादृशः, पदे अन्तः स्वराष्ट्रे पुराणाम् ग्रामाणां कृतव्य-

---

वरिकासे वह आभूषण लेलो जो नलगिरिग्रहणसे खुश होकर पिताजीने आर्यपुत्रको दिये थे। अनन्तर नेपथ्यभूमिमें जाकर अपनेको सजा लो, जिससे महाराजके समान दीख सको।

[मनोरमा आरण्यकासे गहने लेकर आरण्यकाके साथ जाती है]

इन्दीवरिका—यह आसन है, महारानी इसे ग्रहण करें।

वासवदत्ता—(आसनकी ओर निर्देश करके) भगवति, आप आसन ग्रहण करें।

[दोनों बैठती हैं, अनन्तर नेपथ्यग्रहण करके कञ्चुकी प्रवेश करता है]

कञ्चुकी—वृद्ध होनेके कारण इस समय हमने दण्ड रखना स्वीकार कर लिया है इस प्रकार मैं राजाके समस्त वृत्तका अनुकरण कर रहा हूँ, मैं अन्तःपुर–राजाके जनानीखानेकी व्यवस्था करता हूँ, राजा नगरके अन्दरकी व्यवस्था करते हैं, मैं पगपग पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जरातुरः संप्रति दण्डनीत्या
सर्वं नृपस्यानुकरोमि वृत्तम् ॥ ३॥

भोः आज्ञापितोऽस्मि विमानिताशेषशत्रुसैन्येन यथार्थनाम्ना महासेनेन—'समादिश्यतामन्तःपुरेषु। यथा श्वो वयमुदयनोत्सवमनुभवामः। अतो युष्माभिरुत्सवानुरूपवेषोज्ज्वलेन परिजनेन सह मन्मथोद्यानं गन्तव्यम्।' इति।

सांकृत्यायनी—(कञ्चुकिनं निर्दिश्य) राजपुत्रि, प्रवृत्ता प्रेक्षा। दृश्यताम्।

कञ्चुकी—तदेतदादेष्टव्यं परिजनेन सह गन्तव्यमिति। गृहीतने-

वस्थश्च। पदे पदे प्रतिपदं प्रतिविषयम् तेषाम् अन्तःपुराणाम् स्खलितानि प्रमादकृतास्त्रुटी रक्षन् निवारयन् गोपयन् वा, पक्षे स्वराष्ट्रवर्त्तिजनानां स्खलितानि निवारयन्। अहम् कञ्चुकी जरातुरः वार्धकेन क्लिष्टः सन् दण्डनीत्या अवलम्बनयष्टिप्राप्तया, दण्डनीतिनामकार्थशास्त्रीयप्रकारेण वेति पक्षान्तरे। सम्प्रति सर्वम् वृत्तम् चरितम् अनुकरोमि अनुहरामि। यथा राजाऽन्तः पुराणां व्यवस्थाम् स्खलितेभ्यो रक्षां च कुर्वन् दण्डनीत्या वर्त्तते तथाऽहमपि वृद्धतया दण्डं ग्रहीतुं बाध्येऽन्तःपुरे चाधिक्रिये, तदित्थं राजवृत्तं सर्वांशतो मयाऽनुक्रियत इति भावः। श्लेषोत्थापितोपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकाख्यं वृत्तम् ॥ ३ ॥

आज्ञापितः—आदिष्टः। विमानिताशेषशत्रुसैन्येन—विजितसमस्तरिपुबलेन। यथार्थनाम्ना—अन्वर्थाभिधानेन। समादिश्यताम्—उच्यताम्। अन्तःपुरेषु—अवरोधवर्त्तिषु स्त्रीजनेषु। उत्सवानुरूपवेषोज्ज्वलेन—उत्सवसमयोपयुक्तवसनाभरणादिसज्जेन। मन्मथोद्यानम्—स्थानविशेषस्यसंज्ञा। प्रवृत्ता—प्रारब्धा। प्रेक्षा—अभिनयः।

अन्तःपुरिकाओंको प्रमाद–असावधानीसे रक्षित करता हूं, राजा भी पुरवासियोंको (दण्ड भय दिखलाकर) गलतियाँ करनेसे बचाते हैं, मैंने बुढ़ापेके कारण दण्ड ग्रहण किया है राजा दण्डनीति–चाणक्यादिप्रणीत नीतिशास्त्रसे वरतते हैं ॥ ३ ॥

समस्त शत्रु सैन्यको विमानित करनेके कारण यथार्थ नामधारी महासेनने आज्ञा दी है—'अन्तः पुरवासिनियोंसे कह दिया जाय कि कल हमलोग उदयनोत्सव करने जारहे हैं, अतः आप सभी उत्सवके अनुरूप प्रशस्त बेषमें परिजनके साथ मन्मथोद्यानमें चलें।

साङ्कृत्यायनी—(कञ्चुकीकी ओर दिखाकर) राजपुत्रि, अभिनय प्रारंभ हो गया है ,देखिये।

कञ्चुकी—इतना ही भर कहना है कि परिजनके साथ चलें, वेशविन्यास करके चलें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पथ्येनेति नादेष्टव्यम् । कुतः ।

पादैर्नूपुरिभिर्नितम्बफलकैः शिञ्जानकाञ्चीगुणै-
र्हारापादितकान्तिभिः स्तनतटैः केयूरिभिर्बाहुभिः ।
कर्णैः कुण्डलिभिः करैः सवलयैः सस्वस्तिकैर्मूर्धजै-
र्देवीनां परिचारिकापरिजनोऽप्येतेषु संदृश्यते ॥ ४ ॥

न खलु किञ्चिदत्रापूर्वमनुष्ठेयम् । केवलं स्वाम्यादेश इति मत्वाहं समादिष्टः । तदाज्ञाशेषं राजपुत्र्यै निवेदयामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) इयं सा वासवदत्ता वीणाहस्तया काञ्चनमालयानुगम्यमाना गन्धर्वशालां प्रविष्टा । यावदस्याः कथयामि । (परिक्रामति)

नादेष्टव्यम्—न वाच्यम्, तस्यार्थस्य स्वतःसिद्धतयाऽऽदेशानावश्यकत्वात् । अयमाशयः—उत्सवयोग्यवसनभूषणादिनोऽपेक्षितत्वेनादेष्टव्यस्य वस्तुनः पूर्वसिद्धतयाऽऽदेशः केवलं परिजनसाहित्यांशे एवापेक्ष्यते न तत्सज्जायामिति ।

पादैर्नूपुरिभिरिति० नूपुरिभिः नूपुरनाम्नाप्रसिद्धेन चरणालङ्कारेण युक्तैः पादैः चरणैः, शिञ्जानः सशब्दः काञ्चीगुणो मेखलादाम यत्र तादृशैः नितम्बफलकैः विस्तृतकटिपश्चाद्भागैः, हारापादितकान्तिभिः मुक्तामालासमेधितश्रीकैः स्तनतटैः कुचस्थलैः, केयूरिभिः धृताङ्गदैः बाहुभिः भुजैः, कुण्डलिभिः धृतकुण्डलाख्यमण्डनविशेषैः कर्णैः श्रोत्रैः, सवलयैः वलयवेष्टितैः करैः हस्तैः, सस्वस्तिकैः मङ्गलद्रव्यसहितैः शिरोधार्यभूषणविशेषयुतैर्वा मूर्धजैः केशैः उपलक्षितः देवीनाम् राजभार्याणाम् परिचारिकापरिजनः अनुचरी सेवाधिकृतदासीजनः अपि संदृश्यते । अत्रावरोधे देवीनां परिचारिकाणां का कथा, तासामपि परिजनः पुरोदीरितप्रकारेण सर्वावयवावच्छेदेन भूषितो दृश्यते, एतेनास्यावरोधजनस्योज्ज्वलवेशतार्थमादेशप्रदानं पिष्टपेषणमात्रमिति सरांशः ॥ ४ ॥

यह कहने की बात नहीं है, क्योंकि—

नूपुर युक्त चरणों, सशब्द काञ्चीमालासे युक्त वृहत् नितम्बों, हार द्वारा शोभा सम्पन्न स्तनतटों, केयूर युक्त बाहुँओं, कुण्डल युक्त कर्णों, कङ्कण युक्त करों एवं मङ्गल द्रव्य सहित केशपाशोंसे सज्जित तो यहाँ देवियोंकी दासियाँ भी दीख पड़ रही हैं (फिर देवियोंके शृङ्गार प्रसाधन आदिके विषयमें क्या कहना है) ॥ ४ ॥

यहाँ कुछ नया तो करना है नहीं । केवल स्वामीकी आज्ञाका पालन भर करनेके लिये मुझे भेज दिया गया है । अतः आज्ञाका शेष भाग राजपुत्रीसे कह दूं । (चलकर तथा देखकर) यही तो वह वासवदत्ता बीणा हाथमें लिये काञ्चनमालासे अनुगता होकर गन्धर्वशालामें प्रवेश कर रही है । जब तक इससे कह दूं । (चलता है)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति गृहीतवासवदत्तानेपथ्यासनस्थारण्यका वीणाहस्ता काञ्चनमाला च)

आरण्यका—हला काञ्चनमाले, कस्मात्पुनश्चिरयत्यद्यापि वीणाचार्यः। (हला कञ्चणमाले, कीस उण चिरअदि अज्ज वि वीणाआरिओ)

काञ्चनमाला—भर्तृदारिके, दृष्टस्तेनैक उन्मत्तः। तस्य वचनं श्रुत्वा चित्रेण भावितोऽपहसंस्तिष्ठति। (भट्टिदारिए, दिट्ठो देण एक्को उम्मत्तो। तस्स वअणं सुणिअ चित्तेण भाविदो ओहसन्तो चिट्ठइ)

आरण्यका—(सहस्ततालं विहस्य) हञ्जे, सुष्ठु तं पृच्छति। सदृशाः सदृशे रज्यन्त इति द्वावत्रोन्मत्तौ। (हञ्जे, सुट्ठु एदं पुच्छदि। सरिसा सरिसे रज्जन्तित्ति दुवे एथ्थ उम्मत्ता)

सांकृत्यायनी—राजपुत्र्याः सदृशमाकारं पश्याम्यस्याः। तादृशेनाकारेणावश्यं त्वदीयां भूमिकां सम्भावयिष्यति।

कञ्चुकी—(उपसृत्य) राजपुत्रि, देवस्त्वामाज्ञापयति—'श्वोऽवश्य-

चित्रेण भावितः—आश्चर्यरसेनयुक्तः। उन्मत्तदर्शनजन्याश्चर्ययुक्तोहसन् वर्त्तत इत्यर्थः।

'सदृशाः सदृशे रज्यन्ते' 'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्' इति रीत्या सदृशजनैः सह तत्सदृशगुणवज्जनस्नेहस्य सम्भव इति भावः।

राजपुत्र्याः सदृशम्—राजकुमारीतुल्यम्। **त्वदीयां भूमिकाम्**—तवाभिनयम्, त्वदीयामनुकृतिम्। **सम्भावयिष्यति**—करिष्यति।

[वासवदत्ताका रूपबनाये आसन पर बैठी हुई आरण्यका तथा वीणाधारिणी काञ्चनमालाका प्रवेश]

आरण्यका—सखी काञ्चनमाले, फिर क्यों अभी भी वीणाचार्य विलम्बकर रहे हैं ?

काञ्चनमाला—भर्तृदारिके, उन्होंने एक पागल देखा, उसकी बातें सुनकर उन्हें इतना आश्चर्य हुआ कि वह हंस रहे हैं।

आरण्यका—(तालियाँ बजाती हुई हंसकर) सखी, ठीक ही वह पूछते हैं, सबको अपने समान जनसे प्रसन्नता होती है, दोनों तो पागल ही हैं।

साङ्कृत्यायनी—इसका आकार राजपुत्रीके समान देख रही हूँ। वैसे आकार से यह अवश्य उसका पार्ट अदा कर सकेगी।

कञ्चुकी—(समीप जाकर) राजपुत्रि ! आर्यपुत्र आपको आज्ञा दिया है कि तुम्हें वीणा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मस्माभिर्वीणां वादयन्ती श्रोतव्या। तत्त्वया नवतन्त्रीसज्जया घोषवत्या स्थेयम् ।' इति ।

आरण्यका—यद्येवं लघु वीणाचार्यं विसर्जय। (जइ एव्वं लहु वीणाआरिअं विसज्जेहि)

कञ्चुकी—एष वत्सराजं प्रेषयामि। (इति निष्क्रान्तः)

आरण्यका—काञ्चमाले, उपनय मे घोषवतीम्; यावदस्यास्तन्त्रीः परीक्षे। (कञ्चणमाले, उवणेहि मे घोसवदीं; जाव से तन्तीओ परिक्खेमि)

(काञ्चनमाला वीणामर्पयति। आरण्यकोत्सङ्गे वीणां कृत्वा सारयति।

(ततः प्रविशति गृहीतवत्सराजनेपथ्या मनोरमा)

मनोरमा—(स्वगतम्) चिरयति खलु महाराजः। किं न कथितं वसन्तकेन। अथवा देव्या बिभेति। यदीदानीमागच्छेत्ततो रमणीयं भवेत्। (चिरअदि क्खु महाराओ। किं ण कहिदं वसन्तएण। अहवा देवीए भाअदि। जइ दाणिं आअच्चे तदो रमणिज्जं हवे)

वीणां वादयन्तीश्रोतव्या-त्वदीयो वीणावादनप्रकारः श्रवणेन परीक्षणीय इत्यर्थः, अत्र यद्यपि वीणां वादयन्त्या वासवदत्तायाः श्रवणकर्मतानोपपद्यते, तस्या अशब्दरूपत्वाच्छ्रवणेन्द्रियस्य चातस्मिन्पदार्थेऽप्रसरात्तथापि धर्मधर्मिणोरभेदोपचारात् तादृशाः प्रयोगाः समर्थ्यन्ते, एवं च सति वीणां वादयन्ती श्रोतव्येत्यस्य वीणावादनं श्रोतव्यमितिफलितार्थः पर्यवसितः। दृश्यन्ते चेदृशाः सम्प्रदायसिद्धाः, यथावाल्मीकेः—'तर्जयन्तीराक्षसीरश्रृणोत्कपिः'। वाणभट्टस्य-'विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषम्' इति। नवतन्त्रीसज्जया-नवतन्त्रीयुक्तया। घोषवत्या-वीणया। विसर्जय-प्रेषय।

चिरयति-विलम्बते।

बजाते अवश्य सुनेंगे, अतः आप अपनी घोषवती वीणाको नये तारोंसे सुसज्जित किये रहिये।

आरण्यका—यदि ऐसी बात है तो शीघ्र वीणाचार्यको भेज दो।

कन्चुकी—यही वत्सराजको भेज रहा हूं। (जाता है)

आरण्यका—काञ्चनमाले, लाओ तो हमारी घोषवती, जब तक इसके तारोंकी परीक्षा करलूं।

[काञ्चनमाला वीणा देती है, आरण्यका वीणाको गोदमें रखकर ठीक करती है, अनन्तर वत्सराजके वेशमें मनोरमा प्रवेश करती है]

मनोरमा—(स्वगत) महाराज देर कर रहे हैं, क्या वसन्तकने नहीं कहा? या महारानीसे डर रहे हैं, यदि इस समय आजाते तो सुन्दर होता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति राजावगुण्ठितशरीरो विदूषकश्च)

राजा—

संतापं प्रथमं तथा न कुरुते शीतांशुरद्यैव मे
निश्वासा ग्लपयन्त्यजस्रमधुनैवोष्णास्तथा नाधरम् ।
संप्रत्येव मनो न शून्यमलसान्यङ्गानि नो पूर्वव-
द्दुःखं याति मनोरथेषु तनुतां संचिन्त्यमानेष्वपि ॥ ५ ॥

वयस्य, सत्यमेवोक्तं मनोरमया ? यथा—'एषा मम प्रियसखी देव्या महाराजस्य दर्शनपथादपि रक्ष्यते । तदयं समागमोपायः । अद्य रात्राव-स्माभिरुदयनचरितं नाम नाटकं देव्याः पुरतो नर्तितव्यम् । तत्रारण्यका वासवदत्ता भविष्यति । अहमपि वत्सराजः । तच्चरितेनैव सर्वं शिक्षितव्यम् ।

सन्तापमिति० शीतांशुः चन्द्रः मे मम प्रथमम् पूर्वनिर्विशेषम् सन्तापम् अद्यैव अधुनैव न कुरुते, यथापूर्वं चन्द्रो मामतापयत् तथा नाधुना तपतीति भावः । उष्णाः अशीताः निःश्वासा अधुना सम्प्रति एव अधरम् ओष्ठम् अजस्रम् अनवरतम् न ग्लपयन्ति न शोषयन्ति, प्राग्यथा ममोष्णा निःश्वासा अधरं बाधितुं प्रावर्त्तन्त, नाधुना तथेति तात्पर्यम् । सम्प्रत्येव मनः शून्यम् न । अङ्गानि शरीरावयवाः पूर्ववत् अलसानि न आलस्ययुक्तानि न, तत्र सर्वत्र समानं कारणमाह—दुःखमिति० दुःखं क्लेशः मनोरथेषु अभिलाषेषु चिन्त्यमानेषु मनसा ध्यायमानेष्वपि तनुतां यान्ति क्षीयन्ते । चित्ताभीष्टपदार्थचिन्ताऽपि खेदहरी, का कथा तदवाप्तेर्यतोऽहं प्रियासमागमं चिन्तयन्नेव प्राचीनैः शीतांशुविहितसन्तापोष्णनिःश्वासाङ्गालस्यमनः शून्यताभिर्मुक्त इति भावः । आरण्यका मिलनसम्भावनाकृता राज्ञस्तृप्त्यभिव्यक्तिरियमिति बोध्यम् ॥५॥

दर्शनपथादपि रक्ष्यते-दृष्टिदेशादपि बहिःस्थाप्यते ।

[अनन्तर राजा तथा शरीर ढांके विदूषकका प्रवेश]

राजा—आज चन्द्रमा पहलेकी तरह मुझे सन्तप्त नहीं कर रहे हैं, गरम सांस हमारे अधरको मुरझा नहीं रही है, हमारा हृदय सूना नहीं लग रहा है, और न हमारे अङ्ग पहलेकी तरह अलसाए से लगते हैं, मनोभिलषित वस्तुकी चिन्ता करनेसे भी दुःख घट जाते हैं ॥ ५ ॥

वयस्य, क्या मनोरमाने ठीक ही कहा था, कि हमारी यह प्रियसखी देवी द्वारा महाराजके दर्शन पथसे भी अलग रखी जाती है, अतः समागमका यही उपाय है । आज रातमें हमलोग उदयनचरित नामक नाटकका अभिनय करने जारहे हैं उसमें आरण्यका वासवदत्ता बनेगी, मैं वत्सराज बनूंगी, उसीके चरितसे सब सीखना होगा । अतः आकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदागत्य स्वयमेव स्वां भूमिकां कुर्वाणः समागमोत्सवमनुभवतु' इति।

विदूषकः—यदि मां न प्रत्येषि, एषा मनोरमा तव वेषं धारयन्ती तिष्ठति। तदुपसृत्य स्वयमेव पृच्छ। (जइ मं ण पात्तेसि, एसा मणोरमा तुह वेसं धारअन्ती चिट्ठइ। ता उवसप्पिअ सअं एव्व पुच्छ)

राजः—(मनोरमामुपसृत्य) मनोरमे, सत्यमिदम्? यद्वसन्तकोऽभिधत्ते।

मनोरमा—भर्तः, सत्यमेव। मण्डयैतैराभरणैरात्मानम्। (भट्टा, सच्चं एव्व। मण्डअ एदेहिं आभरणेहिं अप्पाणं)

(इत्याभरणान्यङ्गादवतार्य राज्ञे समर्पयति)

(राजा परिदधाति)

विदूषक—एते खलु राजानो दास्याप्येवं नर्त्यन्ते। अहो कार्यस्य गुरुता। (एदे क्खु राआणो दासीए वि एव्वं णच्चाविअन्ति। अहो कज्जस्स गुरुअदा)

राजा—(विहस्य) मूर्ख, नैष कालः परिहासस्य। निभृतेन चित्रशालां

प्रत्येषि-विश्वसिषि। उपसृत्य-समीपंगत्वा।

मण्डय-अलङ्कुरु।

नर्त्यन्ते-स्वेच्छानुरूपं व्यापार्यन्ते, यथा रुचि आदिश्यन्त इत्यर्थः। कार्यस्य गुरुता-निजस्य साध्यस्य महत्त्वम्। इदं स्वसाध्यस्यैव महत्त्वं यद्राजानोपि दास्याऽऽदिश्यन्ते तदादेशं पालयन्ति चेति। उक्तश्चायमर्थः परत्रापि:-'प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु'॥

परिहासस्य-विनोदस्य। निभृतेन-तूष्णींभावेन। अस्मन्नृत्तम्-मया क्रियमाणमभिनयम्॥

अपना पार्ट आप अदा करते हुए समागम सुखका अनुभव करलें।

विदूषक—यदि मेरा विश्वास नहीं करते तो यहीं तो मनोरमा तुम्हारे वेश ग्रहण किये वैठी है उसके पास जाकर खुद पूछ लो।

राजा—(समीप जाकर) मनोरमे, क्या यह ठीक है जो वसन्तक कहा रहा है?

मनोरमा—महाराज, ठीक ही है, इन आभूषणोंसे आप अपनेको अलङ्कृत करलें।

[यह कहकर अपनी देहसे गहने उतार कर राजाको देती है]

[राजा पहनता है]

विदूषक—यह राजा लोग दासियों द्वारा भी इस तरह नचाए जाते हैं, कार्यका अधिक महत्त्व है।

राजा—(हंसकर) मूर्ख, यह परिहासका समय नहीं है, चुपचाप तुम रङ्गशालामें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रविश्य मनोरमया सहास्मन्नृत्तं पश्यता त्वया स्थीयताम् ।

(उभौ तथा कुरुतः)

आरण्यका—काञ्चनमाले, तिष्ठतु वीणा प्रक्ष्यामि तावत्किमपि । (कञ्चणमाले, चिट्ठदु वीणा । पुच्छिस्सं दाव किं वि)

राजा—शृणोमि तावत्कतमोऽयमुद्देशो वर्त्तते । (इत्यवहितः शृणोति)

काञ्चनमाला—पृच्छतु भर्तृदारिका । (पुच्छदु भट्टिदारिआ)

आरण्यका—सत्यमेव तातो मन्त्रयते एवम् ? यथा—'यदि वीणां वादयन्नपहरति मां वत्सराजः, अवश्यं बन्धनान्मुञ्चामि' इति । (सच्चं एव्व तादो मन्तेदि एव्वं ? 'जह जइवीणं वादअन्तो अवहरेदि मं वच्छराओ, अवस्सं बन्धणादो मुञ्चेमि' त्ति)

राजा—(प्रविश्य पटाक्षेपेण सहर्षं वस्त्रान्ते ग्रथितं बध्नाति) एवमेतत् । कः संदेहः ।

सपरिजनं प्रद्योतं विस्मयमुपनीय वादयन्वीणाम् ।
वासवदत्तामपहरामि नचिरादेव पश्याम्यहम् ॥ ६ ॥

उद्देशः–प्रसङ्गः ।

सपरिजनमिति० अहं वत्सराजः वीणां वादयन् वीणाचार्यतया नियुक्तस्य वीणावादनदक्षताभिमानेनेत्थमुक्तिः । सपरिजनम् दासामात्यादिसमन्वितम् प्रद्योतम् वासवदत्तायाः पितरं विस्मयमुपनीय आश्चर्ये पातयित्वा वासवदत्ताम् अपहरामि

जाकर मनोरमाके साथ हमारा नृत्य देखते रहो ।

[दोनों वैसाही करते हैं]

आरण्यका—काञ्चनमाले, तब तक वीणा रहने दे, तुमसे कुछ पूछूंगी ।

राजा—सुनूं तो यह कौन सा प्रसङ्ग है ? [सावधानीसे सुनता है]

काञ्चनमाला—राजकुमारि, पूछो ।

आरण्यका—क्या पिताजी ठीक ही ऐसा कहते हैं कि 'यदि वीणा बजाते हुए मुझे वत्सराज हरण करलें तो मैं अवश्य वत्सराजको बन्धन मुक्त कर दूं' ।

राजा—[पर्दा हटाकर प्रवेश करके सहर्ष कपड़े की छोरमें गांठ डालता है) यह ठीक है, इसमें क्या सन्देह है ।

परिजनसे युक्त प्रद्योतको आश्चर्यान्वित करके वीणा बजाते हुए, मैं देखता हूँ, शीघ्र ही वासवदत्ताका अपहरण कर रहा हूँ ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यतः सुसंविहितं सर्वं यौगन्धरायणेन ।

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) जयतु जयत्वार्यपुत्रः । (जेदु जेदु अज्जउत्तो)

राजा—(स्वगतम्) कथं प्रत्यभिज्ञातोऽस्मि देव्या ।

साङ्कृत्यायनी—(सस्मितम्) राजपुत्रि, अलमलं सम्भ्रमेण । प्रेक्षणीयकमेतत् ।

राजा—(आत्मगतम् सहर्षम्) इदानीमुच्छ्वासितोऽस्मि ।

वासवदत्ता—(सविलक्षस्मितमुपविश्य) कथं मनोरमैषा । मया पुनर्ज्ञातमार्यपुत्र एष इति । साधु मनोरमे साधु । शोभनं नर्तितम् । (कहं मणोरमा एसा । मए उण जाणिदं अज्जउत्तो एसोत्ति । साहु मणोरमे साहु । सोहणं णच्चिदं)

अपहृत्य नयामि वशीकरोमिति वा । न चिरात्–अविलम्बेनैव अहम् (अर्थमिममुपपद्यमानम्) पश्यामि सम्भावयामि । अत्र चतुर्थचरणेऽर्थांशे वृत्तांशे च श्लथभावः प्रतीयत इति सुधियो विचारयन्तु ॥ ६ ॥

सुसंविहितम्–अपहरणानन्तरं मध्येमार्गं क्लेशो न स्यादेतदर्थं सर्वः प्रबन्धः कृत इत्यर्थः । प्रत्यभिज्ञातः–परिचितः । सोऽयमिति बुद्धिः प्रत्यभिज्ञा, तद्विषयीकृत इत्यर्थः । सम्भ्रमेण–आवेगेन, राजोपस्थितिसम्भावनाकृतेन व्यग्रभावेनेत्याशयः । प्रेक्षणीयकम्–अभिनयः ।

उच्छ्वासितः–धैर्यंगमितः ।

शोभनं नर्त्तितम्—उत्तमोऽभिनयः कृतो यन्ममापि भ्रमो जनितः, इदमेव हि सौन्दर्यमभिनये यल्लोकाः सत्यत्वभ्रमे पतेयुरिति ।

क्योंकि यौगन्धरायणने सब ठीक ठीक कर रखा है ।

वासवदत्ता—(घबड़ाहटके साथ) जय हो महाराजकी जय हो ।

राजा—(स्वगत) क्या देवीने पहचान लिया ?

सांकृत्यायनी—(मुस्कुराहटके साथ) राजपुत्रि, घबड़ाओ मत, यह अभिनय हो रहा है ।

राजा—(स्वगत, सहर्ष) अब जानमें जान आई ।

वासवदत्ता—(लज्जा तथा हास्यके साथ, बैठकर) क्या यह मनोरमा है ? मैंने तो समझा कि यह आर्यपुत्र हैं । वाह मनोरमा, वाह ! तुमने खूब सुन्दर अभिनय किया ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साङ्कृत्यायनी—राजपुत्रि, स्थान एव कृता भ्रान्तिस्ते मनोरमया। पश्य।

रूपं तन्नयनोत्सवास्पदमिदं वेषः स एवोज्ज्वलः
सा मत्तद्विरदोचिता गतिरियं तत्सत्त्वमत्यूर्जितम्।
लीला सैव स एव सान्द्रजलदह्रादानुकारी स्वरः
साक्षाद्दर्शित एष नः कुशलया वत्सेश एवानया॥ ७॥

वासवदत्ता—हञ्जे इन्दीवरिके, बद्धेनार्यपुत्रेणाहं वीणां शिक्षिता। तदस्य कुरु नीलोत्पलदाम्ना निगलनम्। (हञ्जे इन्दीवरिए, बद्धेण अज्जउत्तेण अहं वीणं सिक्खाविदा। ता से करेहि णीलुप्पलदामएण णिअलणम्)

(शिरसोऽपनीय नीलोत्पलदामार्पयति)

स्थाने-युक्तम्। मनोरमां दृष्ट्वा त्वया यद्राजभ्रमोलब्धस्तन्नायुक्तं, सर्वथासाम्यादित्यर्थः।

रूपं तदिति० नयनोत्सवास्पदम् नयनानन्दजननं तदिदं रूपं सौन्दर्यम्, (यदनुभूतपूर्वम्) सः पूर्वदृष्टः एव वेषः परिच्छदः, मत्तद्विरदोचिता मदयुक्तकरिसदृशी सा अन्यविलक्षणा गतिः, अत्यूर्जितम् अतिबलवत् तत् वत्सराजमात्रगोचरं सत्त्वम् बलम्, सा वत्सराजस्थिता एव लीला विलासः, सान्द्रजलदह्रादानुकारी घनमेघस्तनितसमः स एव तदाश्रित एव स्वरः कण्ठध्वनिः (तदित्थम् रूपवेषगतिसत्त्वलीलास्वराणां सफलया भेदनिगूहिन्यानुकृत्या) अनया कुशलयाऽभिनयचतुरया मनोरमया नः अस्माकम् वत्सेशः वत्सराज एव साक्षाद्दर्शितः प्रत्यक्षतां गमितः। कुशलानुकृतिमहिम्नाऽनुकार्यस्वरूपतामासाद्य वयं भ्रमे पात्यामहे इति धन्यमिदमीयमभिनयचातुर्यमित्यर्थः॥ ७॥

बद्धेन-निगडितचरणेन। आर्यपुत्रेण-महाराजेन। अस्य-अनुक्रियमाणदशायां वासवदत्तावुद्धौ मनोरमारूपस्य वत्सेशस्य। निगलनम्-बन्धनम्।

साङ्कृत्यायनी—राजकुमारि, ठीक ही मनोरमाने तुम्हें धोखे में डाल दिया। देखो—वही आंखोंको आनन्दित करने वाला यह रूप, वही मनोहर वेश, वही मतवाले हाथीकी चालके सदृश यह चाल, वही अति दृढ़बल, वही लीला और वही घनघोर मेघकी ध्वनिके समान स्वर है, इस चतुर अभिनेत्री मनोरमाने तो वत्सराजका साक्षात् दर्शन ही करा दिया॥ ७॥

वासवदत्ता—सखो इन्दोवरिके, आर्यपुत्रने अपनी बन्धनावस्थामें ही मुझे वीणा सिखलाई थी, अतः इस नीलकमल मालासे इनके चरण बांधदे।

[माथे परसे उतारकर नीलोत्पलमाला अर्पित करती है]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(इन्दीवरिका तथा कृत्वा पुनस्तत्रैवोपविशति)

आरण्यका—काञ्चनमाले, कथय कथय। ननु सत्यमेव मन्त्रयते तातः ? 'यदि वीणां वादयन्नपहरति मां वत्सराजस्ततोऽवश्यं बन्धनान्मुञ्चामि' इति। (कञ्चणमाले, कधेहि कधेहि। णं सच्चं जेव्व मन्तेदि तादो ? 'जइ वीणं वादअन्तो अवहरेदि मं वच्छराओ तदो अवस्सं बन्धणादो मुञ्चेमि' त्ति)

काञ्चनमाला—भर्तृदारिके, सत्यम्। तथा कुरु, यथा वत्सराजस्यावश्यं बहुमता भवसि। (भट्टिदारिए सच्चं। तधा करेहि, जधा वच्छराअस्स अवस्सं बहुमदा होसि)

राजा—निष्पादितमेव काञ्चनमालया यत्तदास्माभिरभिलषितम्।

आरण्यका—यद्येवं तदादरेण वादयिष्यामि। (जइ एव्वं ता आदरेण वादइस्सं) (गायन्ती वादयति)

घनबन्धनसंरुद्धं गगनं दृष्ट्वा मानसमेतुम्।
अभिलषति राजहंसो दयितां गृहीत्वात्मनो वसतिम् ॥ ८॥
(घणबन्धणसंरुद्धं गअणं दट्ठूण माणसं एउं।
अहिलसइ राअहंसो दइअं घेऊण अप्पणो वसइं ॥ ८ ॥)

बहुमता-प्रिया।

एवम्-राज्ञो हृदयावर्जनस्यावश्यकत्वम्।

घनबन्धनेति० घनबन्धनसंरुद्धम् मेघानां शृङ्खलावदविच्छेदेन सत्तया व्याप्तम् गगनम् आकाशम् दृष्ट्वा राजहंसः पक्षिभेदः आत्मनः दयिताम् प्रियाम् गृहीत्वा सहकृत्वा मानसम् तदाख्यम् सरः एव वसतिम् आवासभूमिम् एतुम् गन्तुम् अभिलषति कामयते। वियति विततां मेघमालां दृष्ट्वा हंसः प्रियासहचरः सन् निज-

---

[इन्दीवरिका वैसा करके फिर अपनी जगह पर बैठती है]

आरण्यका—काञ्चनमाले, कहो कहो, क्या ठीक ही पिताजी विचार कर रहे हैं कि यदि वीणा वजाते समय ही वत्सराज वासवदत्ताका अपहरण करले तो मैं उन्हें अवश्य वन्धनमुक्त कर दूँगा'।

काञ्चनमाला—भर्तृदारिके, ऐसा उपाय करो, जिससे वत्सराज तुम्हें खूब प्यार करने लग जांय।

राजा—काञ्चनमालाने वह सब सम्पादित कर रखा है जो उस समय हमारा अभीष्ट था।

आरण्यका—यदि ऐसी बात है तो खूब मन लगाकर बजाऊंगी। (गाती और वजाती है) मेघावृत आकाशको देखकर राजहंस इच्छा करता है कि मैं अपनी प्यारीको लेकर अपने वासस्थान मानसरोवरको चला जाऊं॥ ८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(विदूषको निद्रां नाट्यति)

मनोरमा—(हस्तेन चालयन्ती) वसन्तक, पश्य पश्य। प्रियसखी मे नृत्यति। (वसन्तअ, पेक्ख पेक्ख पिअसही मे णच्चइ।

विदूषकः—(सरोषम्) दास्याः सुते, त्वमपि न ददासि स्वप्तुम्। यदाप्रभृति प्रियवयस्येनारण्यका दृष्टा तदाप्रभृति तेन सह मया रात्रिंदिवं निद्रा न दृष्टा। तदन्यतो निष्क्रम्य स्वप्स्यामि। (दासीए सुदे, तुमं वि ण देसि सुविदुं। जहप्पहुदि पिअवअस्सेण आरण्णआ दिट्ठा, तहप्पहुदि तेण सह मए रत्तिदिवं णिद्दा ण दिट्ठा। ता अण्णदो णिक्कमिअ सुविस्सं) (निष्क्रम्य शेते)

(आरण्यका पुनर्गायति)

अभिनवरागक्षिप्ता मधुकरिका वामकेन कामेन
उत्ताम्यति प्रार्थयमाना द्रष्टुं प्रियदर्शनं दयितम्॥ ९॥
(अहिणवराअक्खित्ता महुअरिआ वामएण कामेण।
उत्तम्मइ पत्थन्ती दट्ठुं पिअदंसणं दइअं॥ ९॥)

मावासं मानसाख्यं सरो गन्तुमिच्छतीति गाथार्थः। वर्षर्तौ हंसा मानसं यान्तीति प्रसिद्धिः। 'राजहंसास्तुते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः'। गगनसदृशं कारावासं घन· बन्धनसंरुद्धम् निविडश्रृङ्खलाबन्धयुतम् दृष्ट्वा दयितां वासवदत्तां गृहीत्वा मन एतुम् तदीयं मन आक्रष्टुं प्राप्तुं वा आत्मनो वसितम् अभिलषति। इति ध्वनिः। स चायं प्रकृताप्रकृतश्लेषः॥ ८॥

रात्रिं दिवम्-अहनि निशि च। 'अचतुर विचतुर' इति निपातनात्साधुः॥

अभिनवरागाक्षिप्तेति० वामकेन दुर्लभजनविषयेऽनुरागोत्पादनेन क्लेशप्रदेन कामेन अभिनवरागक्षिप्ता नवप्रेमणि पातिता मधुकारिका भृङ्गी प्रियदर्शनम्-सुभगम् प्रियं द्रष्टुम् प्रार्थयमाना कामयमाना उत्ताम्यति तदनवाप्त्या खिद्यते इति भावः।

[विदूषक सो जाता है]

मनोरमा—(हाथसे डुलाती हुई) वसन्तक, देखो देखो, हमारी प्रियसखी अपना पार्ट अदाकर रही है।

विदूषक—(रोषसे) अरी ओ दासी-सुते, तुम भी नहीं सोने देगी। जबसे हमारे प्रियवयस्यने आरण्यकाको देखा है तबसे उसके साथ मुझे भी नींद नहीं आई है। अतः मैं दूसरी जगह जाकर सोऊंगा। [आरण्यका फिर गाती है]

दुर्लभ वस्तुकी प्रार्थनामें प्रवृत्त करानेवाले कन्दर्पसे नवीन अनुराग में डाली गई भ्रमरी अपने प्रियदर्शन प्रियतमको देखनेकी अभिलाषा लिये व्याकुल हो रही है॥ ९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा—(तत्क्षणं श्रुत्वा सहसोपसृत्य) साधु राजपुत्रि साधु । अहो गीतमहो वादित्रम् । तथा हि—

व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धाधुना
विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधायं लयः ।
गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण यतयस्तिस्रोऽपि संपादिता-
स्तत्त्वौघानुगताश्च वाद्यविधयः सम्यक्त्रयो दर्शिताः ॥१०॥

आरण्यका—(वीणां परिष्वज्यासनादुत्थाय राजानं साभिलाषं पश्यन्ती)

अत्राप्रस्तुतभृङ्गीवृत्तान्तेन प्रस्तुतनायिकावृत्तान्तप्रतीतेरप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः ॥ ९ ॥

वादित्रम्—वाद्यम् ।

व्यक्तिरिति० अधुना अत्र अस्मिन्ननया गीते वृत्तभेदे दशविधेन दशप्रकारकेण अपि व्यञ्जनधातुना व्यञ्जनाख्यस्वरविशेषेण व्यक्तिः स्फुटीभावः लब्धा प्राप्ता । द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नः त्रिधा त्रिप्रकारकः अयम् लयः वक्ष्यमाणलक्षणकः विस्पष्टः स्फुटीभूतः । तिस्रः अपि गोपुच्छप्रमुखाः यतयः सम्पादिताः, तत्त्वौघानुगताः तन्नामानः त्रयो वाद्यविधयश्च सम्यक्दर्शिताः । अत्र गीतविद्यारहस्यं विस्तरेण निबद्धम् । व्यञ्जनधातवो दश यथा—'दशतु व्यञ्जने मताः । पुष्पं कलं तलं विन्दू रेफो निःस्वनितं ततः । निष्कोटितमथोन्मृष्टमवमृष्टनिवन्धने' ॥ व्यञ्जनधातुस्वरूपं तु—'ये प्रहारविशेषोत्थाः स्वरास्ते धातवोमताः । विस्तारकरणाविद्धव्यञ्जनाश्चेति धातवः' इति । लयो यथा—क्रियानन्तरविश्रान्तिर्लयः स त्रिविधो मतः । द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुतः शीघ्रतमो मतः । द्विगुणद्विगुणौ तस्माज्ज्ञेयौ मध्यविलम्बितौ' ॥ यतयो यथा—'लयप्रवृत्तिनियमो यतिरित्यभिधीयते, समास्रोतोगता चान्या गोपुच्छा त्रिविधेति सा' ॥ वाद्यविधयो यथा—'तत्त्वं भवेदनुगतमोघश्चेति निरूपितम् । गीतानुगं त्रिप्रकारं वाद्यम्' ॥ इतोऽधिकमाकरतोऽवसेयम् ॥ १० ॥

राजा—(सहसा सुनकर समीप जाकर) साधु राजपुत्रि, साधु, क्या उत्तम गाना है क्या ही उत्तम बाजा है—क्योंकि—

पुष्प, कल, तल, विन्दु, रेफ, निःस्वनित, निष्कोटित, उन्मृष्ट, अवमृष्ट, निवन्धन नामक दश प्रकारके प्रहार विशेष यहाँ स्पष्टताको प्राप्त कर रहे हैं, द्रुत, मध्य, तथा विलम्बित नामक तीनों प्रकारके लय प्रकट हो रहे हैं, समा, स्रोतोगता, तथा गोपुच्छ, नामक तीनों प्रकारकी यतियाँ क्रमशः बनी हैं, तत्त्व, ओघ, और अनुगत नामक तीनों वाद्यके प्रकार इसमें स्फुट दिखाये गये हैं ॥ १० ॥

आरण्यका—(वीणाको छातीसे लगाये आसनसे उठकर राजाको सस्पृह देखती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपाध्याय, प्रणमामि। (उवज्झाअ, पणमामि)

राजा—(सस्मितम्) यदहमिच्छामि तत्ते भूयात्।

काञ्चनमाला—(आरण्यकाया आसनं निर्दिश्य) इहैवोपविशतु उपाध्यायः। (इह एव्व उवविसदु उवज्झाओ)

राजा—(उपविश्य) राजपुत्री क्वेदानीमुपविशतु।

काञ्चनमाला—(सस्मितम्) इदानीमेव भर्तृदारिका विद्यामानेन परितोषिता युष्माभिः। तदर्हत्येवैषोपाध्यायपीठिकायाम्। (दाणि एव्व भट्टिदारिआ विज्जामाणेण परितोसिदा तुम्हेहिं। ता अरुहदि एव्व एसा उवज्झाअ-पीठिआए)

राजा—उपविशत्वर्हेयमर्धासनस्य। राजपुत्रि, स्थीयताम्।

[आरण्यका काञ्चनमालां पश्यति]

काञ्चनमाला—(सस्मितम्) भर्तृदारिके उपविश। कोऽत्र दोषः। शिष्यविशेषा खलु त्वम्। (भट्टिदारिए, उवविस। को एत्थ दोसो। सिस्सविसेसा क्खु तुमम्)

(आरण्यका सलज्जमुपविशति)

विद्यामानेन-विद्यागौरवेण। उपाध्यायपीठिकायाम्-उपाध्यायासने।

अर्हा-योग्या। अर्धासनस्य-आसनार्धे स्थानग्रहणस्य।

शिष्यविशेषा-श्रेष्ठा शिष्या। अतिशयितार्थे विशेषशब्दस्त्रिलिङ्गः, अतएव कालिदासोऽपि प्रायुङ्क्त, 'आसीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः'। इति।

हुई) उपाध्याय, नमस्कार करती हूँ।

राजा—(मुस्कुराहटके साथ) मैं जो चाहता हूँ वह तुमको प्राप्त हो।

काञ्चनमाला—(आरण्यकाके आसनकी इशारा करके) उपाध्याय यहीं बैठ जांय।

राजा—(बैठकर) अब राजकुमारी कहाँ बैठेगी?

काञ्चनमाला—(मुस्कुराहटके साथ) अभी आपने विद्याकी प्रशंसा करके राजपुत्रीका समादर किया है, इसलिये वह उपाध्यायके साथ ही आसन पर बैठ सकती है।

राजा—बैठ जाय, यह अर्धासनके योग्य है। राजपुत्रि, बैठो।

[आरण्यका काञ्चनमालाकी ओर देखती है]

काञ्चनमाला—(मुस्कुराहटके साथ) राजकुमारी, बैठो, इसमें दोष क्या है, तुम इनकी खास छात्रा हो।

[आरण्यका सलज्जभावसे बैठती है]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासवदत्ता—(सलज्जम्) भगवत्याधिकं कल्पितं काव्यम् । न खल्वहं तस्मिन्काले एकासने आर्यपुत्रेण सहोपस्थिता । (भअवदीए अहिअं कप्पिदं कव्वम् । ण हु अहं तस्सिं काले एक्कासणे अज्जउत्तेण सह उवट्ठिदा)

राजा—राजपुत्रि, पुनः श्रोतुमिच्छामि । वादय वीणाम् ।

आरण्यका—(सस्मितम्) काञ्चनमाले, चिरं खलु मम वादयन्त्याः परिश्रमो जातः । इदानीं निःसहान्यङ्गानि । तत् न शक्नोमि वादयितुम् । (कञ्चणमाले, चिरं खु मम वादअन्तीए परिस्समो जादो । दाणिं णिस्सहाइ अङ्गाइ । ता ण सक्कुणोमि वादइदुं)

काञ्चनमाला—उपाध्याय, सुष्ठु परिश्रान्ता भर्तृदारिका । कपोलतलबद्धस्वेदलवायाः पश्यास्या वेपते अग्रहस्तौ । तत्समाश्वस्ता भवतु मुहूर्तम् । (उवज्झाअ, सुट्ठु परिस्सन्ता भट्टिदारिआ । कवोलतलबद्धसेअलवाए पेक्ख से वेवन्ति अग्गहत्था । ता समस्सत्ता होदु मुहुत्तअं)

राजा—काञ्चनमाले, युक्तमभिहितम् । (हस्तेन ग्रहीतुमिच्छति । आरण्यका हस्तमपसारयति)

अधिकं कृतं काव्यम्–वस्तुतत्त्वमल्पमपि स्वकपोलकल्पनयाऽतिरञ्ज्य प्रकाशितमित्यर्थः ।

निःसहानि–श्रमशिथिलानि ।

कपोलतलबद्धस्वेदलवायाः–गण्डस्थले प्रसृतस्वेदबिन्दोः । अग्रहस्तौ–हस्तयोरग्रभागौ । 'हस्ताग्राग्रहस्तादयो गुणगुणिनोर्भेदाभेदात्' इति वामनः ॥ समाश्वस्ता–विश्रान्त्याप्तस्वाभाविकदशा । मुहूर्त्तम्–क्षणम् । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ।

वासवदत्ता—(लज्जापूर्वक) भगवतीने इसमें अधिक काव्य कल्पित किया है, मैं उस समय आर्यपुत्रके साथ एकासन पर नहीं बैठी थी ।

राजा—राजपुत्रि, फिर सुनना चाहता हूँ, वीणा बजाओ ।

आरण्यका—(मुस्कुराहटके साथ) काञ्चनमाले, बहुत देर तक वीणा बजाते रहनेके कारण मैं थक गई हूं, हमारे अङ्ग अशक्त हो रहे हैं, इसलिये मैं बीणा बजानेमें असमर्थ हूँ ।

काञ्चनमाला—उपाध्याय, राजकुमारी बहुत थक गई है, मैं देखती हूँ इसके कपोल तलपर पसीनेकी बूँदें चमक रही हैं, इसके हाथ काँप रहे हैं, अतः क्षणभर विश्राम कर ले ।

राजा—काञ्चनमाले, तुमने ठीक कहा है । (हाथसे पकड़ना चाहता है, आरण्यका हाथ खींच लेती है)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासवदत्ता—(सासूयम्) भगवति, अधिकमेतदपि त्वया कृतम् । न खल्वहं काञ्चनमालाकाव्येन वञ्चयितव्या । (भअवदि, अहिअं एदं वि तुए किदं । ण हु अहं कञ्चणमालाकव्वेण वञ्चइदव्वा)

सांकृत्यायनी—(विहस्य) आयुष्मति, ईदृशमेव काव्यं भविष्यति ।

आरण्यका—(सरोषमिव) अपेहि काञ्चनमाले अपेहि । न मे बहुमतासि । (अवेहि कञ्चणमाले अवेहि । ण मे बहुमदासि)

काञ्चनमाला—(सस्मितम्) यद्यहं तिष्ठन्ती न बहुमता तदेषा गच्छामि। (जइ अहं चिट्ठन्ती ण बहुमदा ता एसा गच्छम्मि)(इति निष्क्रान्ता)

आरण्यका—(ससंभ्रमम्) काञ्चनमाले, तिष्ठ तिष्ठ । अयमस्याग्रहस्तः समर्पितः । (कञ्चणमाले, चिट्ठ चिट्ठ । अअं से अग्गहत्थो समप्पिदो)

राजा—(आरण्यकाया हस्तं गृहीत्वा)

सद्योऽवश्यायबिन्दुव्यतिकरशिशिरः किं भवेत्पद्मकोशो
ह्लादित्वं नास्य मन्ये सदृशमिदमुषस्येव वीतातपस्य ।

काञ्चनमालाकाव्येन-काञ्चनमालाकृतेनातिरञ्जनेन ।

सद्योऽवश्यायेति० सद्यः तत्क्षणम् अवश्यायबिन्दुव्यतिकरशिशिरः हिमकणसम्पर्कशीतलः पद्मकोशः कमलमुकुलः भवेत स्यात् किम् ? एतस्याः करः स्वेदयुतः शीतलस्पर्शश्चेति किमयं हिमकणयुक्तः कमलकोश इति सम्भावनामुत्थाप्यापनुदति

वासवदत्ता—(असूयाके साथ) भगवति, यह भी तुमने अधिक जोड़ दिया है, काञ्चनमालाके काव्यों से मुझे मत धोखा देना ।

सांकृत्यायनी—(हंसकर) आयुष्मति, काव्य तो ऐसे ही होंगे ।

आरण्यका—(सक्रोधकी तरह) हटो काञ्चनमाला हटो, मैं तुझे नहीं चाहती ।

काञ्चनमाला—(मुस्कुराहटके साथ) मेरा यहाँ खड़ा रहना तुम्हे अच्छा नहीं लग रहा है तो मैं जाती हूँ । (जाती है)

आरण्यका—(घबड़ाकर) काञ्चनमाले, ठहरो ठहरो । यही मैं अपना हाथ इनके हाथोंमें सौंप रही हूँ ।

राजा—(आरण्यकाका हाथ पकड़कर)

क्या तत्क्षण हिमकणके समुदायसे शीतल यह कमलमुकुल है ? नहीं, अतिप्रातःकालमें जब कि सूर्य की किरणें नहीं हैं, इसका यह मनोहरत्व युक्त नहीं है । नखरूप पांचों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुञ्चन्त्येते हिमौघं नखरजनिकराः पद्म किं सोऽपि दाही
ज्ञातं स्वेदापदेशादविरतममृतं स्यन्दते व्यक्तमेतत् ॥ ११ ॥

अपि च ।

एतेन बालविद्रुमपल्लवशोभापहारदक्षेण ।
हृदये मम त्वयायं न्यस्तो रागः स्वहस्तेन ॥ १२ ॥

आरण्यका—(स्पर्शविशेषं नाटयन्ती, आत्मगतम्) हा धिक् हा धिक्। एतां मनोरमां स्पृशन्त्या अनर्थमेव मेऽङ्गानि कुर्वन्ति । (हद्धि हद्धि एदं मणोरमं परिसन्तीए अणत्थं एव्व मे अङ्गाइ करेन्ति)

ह्लादित्वमिति वीतातपस्य आतपशून्यस्य अस्य पद्मकोशस्य इदम् अनुभूयमानम् ह्लादित्वम् आनन्दप्रदत्वम् उषसि प्रभात एव, (अतोऽधुना) न सदृशम् अनुगुणं मन्ये । कमलमुषस्येव हिमकणयुक्तं सम्भवति न चायमुषः काल इति तादृशा सम्भावना व्यर्थेत्याशा पद्म एते नखा एव रजनिकरा इन्दवः हिमौघम् हिमसन्ततिम् मुञ्चन्ति वितरन्ति किम् ? (नेदमपि सम्भवति) स हिमौघोऽपि (पद्मविषये) दाही दहनशीलः, अतोऽस्य सस्वेदकरयुगलस्य नखचन्द्रच्यवमानामृतसान्द्रताकथनमयुक्तमित्यर्थः । एवं सम्भावनाद्वयमुपमृद्य सम्प्रति तत्त्वमाह—ज्ञातं निर्णीतम्, स्वेदापदेशात् स्वेदव्याजात् एतत् अमृतम् स्यन्दते प्रस्रवतीति व्यक्तम् स्फुटम् । सन्देहापह्नवसङ्कीर्णोत्प्रेक्षा ॥ ११ ॥

एतेनेति० त्वया एतेन मया स्पृश्यमानेन बालविद्रुमपल्लवशोभापहारदक्षेण प्रत्यग्रोत्पन्नप्रवालकिसलयकान्तिहरणसमर्थेन स्वहस्तेन निजपाणिना मम हृदयेऽयं प्रत्यक्षानुभूयमानः रागः रक्तिमा अनुरागश्च न्यस्त आहितः । रक्ताभेन करेण हृदये रागो जनित इति भावः ॥ १२ ॥

अनर्थम्—कमपि सकलेन्द्रियमोहनरूपमपकारम् ।

चन्द्रमा तुषार वर्षण कर रहे हैं क्या ? परन्तु पाला भी तो कमलके लिये दाहक ही होता है । (अव) मैंने समझा—पसीनेके छलसे यह प्रकट अमृत ही वह रहा है ॥ ११ ॥

और—

तुमने बाल विद्रुम और नवपल्लवकी शोभाके अपहरणमें समर्थ अपने इस हाथसे हमारे हृदयमें राग उत्पन्न कर दिया ॥ १२ ॥

आरण्यका—(स्पर्शविशेषका अभिनय करती हुई) (स्वगत) हाय हाय ! मनोरमाके अङ्गस्पर्श हमारे अङ्गों पर अनर्थ कर रहे हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) भगवति, पश्य त्वम्। अहं पुनरलीकं न पारयामि प्रेक्षितुम्। (भअवदि, पेक्ख तुमं। अहं उण अलिअं ण पारेमि पेक्खिदुं)

सांकृत्यायनी—राजपुत्रि, धर्मशास्त्रविहित एष गान्धर्वो विवाहः। किमत्र लज्जास्थानम्। प्रेक्षणीयकमिदम्। तन्न युक्तमस्थाने रसभङ्गं कृत्वा गन्तुम्।

(वासवदत्ता परिक्रामति)

इन्दीवरिका—(विलोक्य) भट्टिनि, वसन्तकश्चित्रशालाद्वारे प्रसुप्तस्तिष्ठति। (भट्टिणि, वसन्तओ चित्तसालादुवारे पसुत्तो चिट्ठइ)

वासवदत्ता—(निरूप्य) वसन्तक एवैषः। (विचिन्त्य) राज्ञाप्यत्र भवितव्यम्। तद्बोधयित्वा प्रक्ष्यामि तावदेनम्। (वसन्तओ एव्व एसो। रण्णा वि एत्थ होदव्वं। ता बोधाविअ पुच्छिस्सं दाव णं) (प्रबोधयति)

अलीकम्—मिथ्याभूतम्। मया तदानीमक्रियमाणमपि त्वं ग्रथितवत्यसि, तदहं द्रष्टुमपि न पारयामि, अतः स्वकृतत्वेन त्वमेव पश्यति कोपभावध्वनिः॥

गान्धर्वः-विवाहभेदविशेषः, तल्लक्षणं यथा—'इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च। गान्धर्वःसतु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः'॥

प्रेक्षणीयकम्-अभिनयः (अतोऽस्य वस्तुवृत्तभिन्नरूपत्वेऽपि सत्यभावेन कोपो नोचित इत्यर्थः)

अस्थाने-अनवसरे। रसभङ्गम्-रसव्यवच्छेदम्।

वासवदत्ता—(सहसा उठ खड़ी होकर) भगवति, आप देखें, लेकिन मैं मिथ्या दृश्य देखनेमें असमर्थ हूँ।

साङ्कृत्यायनी—राजपुत्रि, धर्मशास्त्रानुमोदित यह गान्धर्व विवाह है, उसमें लज्जा का कहाँ स्थान है? यह तो नाटक है, इसलिये यह उचित नहीं है कि आप बीच में ही रसभङ्ग करके चली जांय।

[वासवदत्ता जाती है]

इन्दीवरिका—(देखकर) महारानी, वसन्तक चित्रशालाके दरवाजे पर सोया है।

वासवदत्ता—(अच्छी तरह देखकर) यह तो वसन्तक ही है। (सोचकर) राजा भी यहीं होंगे। इसलिये इसे जगाकर पूछूँगी। (जगाती है)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विदूषकः—(निद्राजडमुत्थाय सहसा विलोक्य) मनोरमे, किं नर्तित्वागतः प्रियवयस्यः। अथवा नृत्यत्येव। (मणोरमे, किं णच्चिअ आअदो पिअवअस्सो। अह वा णच्चदि एव)

वासवदत्ता—(सविषादम्) कथमार्यपुत्रो नृत्यति। मनोरमेदानीं कुत्र। (कहं अज्जउत्तो णच्चदि। मणोरमा दाणिं कहिं)

विदूषकः—एषा चित्रशालायां तिष्ठति। (एसा चित्तसालाए चिट्ठइ)

मनोरमा—(सभयमात्मगतम्) कथमन्यथैव हृदये कृत्वा देव्या मन्त्रितम्। एतेनापि मूर्खवटुकेनान्यथैव बुद्ध्वा सर्वमाकुलीकृतम्। (कहं अण्णहा एव्व हिअए करिअ देवीए मन्तिदं। एदेण वि मुक्खवडुएण अण्णहा एव्व बुद्धिअ सव्वं आउलीकिदं।

वासवदत्ता—(सरोषं हसन्ती) साधु मनोरमे साधु। शोभनं त्वया नर्तितम्। (साहु मणोरमे साहु। सोहणं तुए णच्चिदं)

मनोरमा—(सभयं कम्पमाना पादयोर्निपत्य) भट्टिनि, न खल्वहमत्रापराध्यामि। एतेन खलु हताशेन बलादलङ्करणानि गृहीत्वा द्वारस्थितेनेह

आकुलीकृतम्-=कदर्थितम्। यन्न वक्तव्यं तदेवोक्त्वा दूषितमित्यर्थः।

हताशेन-हतभाग्येन। निरुद्धा-अभिनयार्थं गच्छन्ती वारिता। आक्रन्दन्त्याः-रुदत्याः।

विदूषक—(नींदसे जड़सा बना हुआ उठकर और सहसा देखकर) मनोरमे, क्या हमारे प्रियवयस्य अभिनय करके आगये अथवा अभी अभिनय ही कर रहे हैं ?

वासवदत्ता—(खेदके साथ) क्या आर्यपुत्र अभिनय कर रहे हैं ? इस समय मनोरमा कहाँ है ?

विदूषक—यहीं चित्रशालामें तो है।

मनोरमा—(भयसे स्वगत) क्यों, देवी कुछ दूसरा ही भाव हृदयमें रखकर पूछ रही हैं ! इस मूर्ख वडुकने कुछ दूसरी ही बात समझ कर सब चौपट कर दिया।

वासवदत्ता—(सक्रोध हंसती हुई) ठीक है मनोरमे, ठीक है, तुमने बड़ा अच्छा अभिनय किया।

मनोरमा—(भयसे कांपती हुई, चरणों पर गिरकर) महारानी, इसमें मेरा अपराध नहीं है, इस बदमाशने जबर्दस्ती हमारे गहने छीन लिये, और मुझे यहाँ दरवाजे पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरुद्धा। न पुनर्ममाक्रन्दन्त्याः शब्दो मूर्खनिर्घोषान्तरितः केनापि श्रुतः। (भट्टिणि, ण हु अहं एत्थ अवरज्झामि। एदेण खु हदासेण वलादो अलङ्करणाइ गेण्हिअ दुवारट्ठिदेण इह णिरुद्धा। ण उण मह अक्कन्दन्दीए सद्दो मुक्खणिग्घोसन्तरिदो केण वि सुदो)

वासवदत्ता—हञ्जे उत्तिष्ठ। ज्ञातं सर्वम्। वसन्तकः खल्वारण्यकावृत्तान्तनाटके सूत्रधारः। (हञ्जे उट्ठेहि। जाणिदं सव्वं। वसन्तओ क्खु आरण्णआवुत्तन्तणाडए सुत्तधारो)

विदूषकः—स्वयमेव चिन्तय, कुत्रारण्यका कुत्र वसन्तक इति। (सअं एव्व चिन्तेहि, कहिं आरण्णआ कहिं वसन्तओत्ति)

वासवदत्ता—मनोरमे, सुगृहीतं कृत्वैनमागच्छ। यावत्प्रेक्षणीयमस्य पश्यामि। (मणोरमे, सुगहीदं करिअ णं आअच्छ। जाव पेक्खणीअं से पेक्खह्मि)

मनोरमा—(स्वगतम्) इदानीं समाश्वस्तास्मि। (विदूषकं करे बध्नाति। प्रकाशम्) हताश, इदानीमनुभवात्मनो दुर्नयस्य फलम्। (दाणिं समस्सत्तह्मि। हदास, दाणिं अणुभव अत्तणो दुण्णअस्स फलं।

वासवदत्ता—(ससंभ्रममुपसृत्य) आर्यपुत्र, प्रतिहतमेतदमङ्गलम्। मर्षत्वार्यपुत्रो यन्मनोरमेति कृत्वा नीलोत्पलदामकेन बन्धितोऽसि।

मूर्खनिर्घोषान्तरितः-एतस्य वटोः शब्दे प्रच्छन्नः।
सुगृहीतम्-बलवद्गृहीतम् (येन न पलायेत)
अमङ्गलम्-बन्धनात्मकम् अशुभम्। नीलोत्पलदामकेन—नीलकमलमालया।

रोक रखा, मैं चिल्लाती रही, परन्तु मेरी चिल्लाहट इन मूर्खोंके शब्दमें लीन हो गई अतः किसीने नहीं सुनी।

वासवदत्ता—सखी, उठो, मैं सब समझ गई, वसन्तक ही इस आरण्यका-वृत्तान्त नाटक का सूत्रधार है।

विदूषक—यह खुद सोच लो, कहाँ आरण्यका और कहाँ वसन्तक?

वासवदत्ता—मनोरमे, इसे भलीभांति पकड़े आओ, तब तक इसके तमाशे देखती हूँ।

मनोरमा—(स्वगत) अब जानमें जान आई। (विदूषकके हाथ बांधती है) अभागा अब अपने अविनयका फल भोगो।

वासवदत्ता—(शीघ्रतासे समीप जाकर) आर्यपुत्र, यह अमङ्गल दूर फेंकिये। (ऐसा कहकर चरणोंसे नीलकमलकी मालाको खोलती हुई, उलाहनेके स्वरमें) आर्यपुत्र, मनो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(अज्जउत्त, पडिहदं एदं अमङ्गलं। मरिसदु अज्जउत्तो जं मणोरमेत्ति करिअ नीलुप्पलदामएण बन्धाविदोसि) (इति पादयोर्नीलोत्पलदामापनयन्ती सोत्प्रासम्)

(आरण्यका सभयमपसृत्य तिष्ठति)

राजा—(सहसोत्थाय विदूषकं मनोरमां च दृष्ट्वात्मगतम्) कथं विज्ञातोऽस्मि देव्या। (वैलक्ष्यं नाटयति)

सांकृत्यायनी—(सर्वानवलोक्य सस्मितम्) कथमन्यदेवेदं प्रेक्षणीयकं संवृत्तम्। अभूमिरियमस्मद्विधानाम्। (इति निष्क्रान्ता)

राजा—(स्वगतम्) अपूर्वोऽयं कोपप्रकारः। दुर्लभमत्रानुनयं पश्यामि। (विचिन्त्य) एवं तावत्करिष्ये। (प्रकाशम्) देवि, त्यज्यतां कोपः

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, कोऽत्र कुपितः। (अज्जउत्त, को एत्थ कुविदो)

राजा—कथं न कुपितासि।

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा तथापि द्युति-
र्माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम्।

अभूमिः-अनुपयुक्तं स्थानम्।

स्निग्धं यद्यपीति० यद्यपि नयनयोः नेत्रयोः वीक्षितम् दर्शनम् स्निग्धम् स्नेहप्लुतम्, तथापि (नयनयोः) द्युतिः प्रभा ताम्रा रक्ताभा। माधुर्ये मिष्टभावे

रमा जानकर आपको नीलकमलकी मालासे बांध दिया था, आप उसे क्षमा करें।

[आरण्यका सभय हटकर खड़ी होती है]

राजा—(सहसा उठकर विदूषक और मनोरमाको देखकर, स्वगत) क्यों, देवीने पहचान लिया क्या ? (लज्जाका अभिनय करता है)

साङ्कृत्यायनी—(सबको देखकर मुस्कुराहटके साथ) क्यों, यह एक दूसरा ही अभिनय हो गया, यह स्थान हमारे समान जनके रहने लायक नहीं रहा। (जाती है)

राजा—(स्वगत) यह कोप प्रकार तो अपूर्व है। इसमें अनुनय कठिन है (सोच कर) तब तक ऐसे करूंगा। (प्रकाश) देवि, कोप त्याग करो।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, यहाँ कुपित कौन है ?

राजा—कैसे नहीं कुपित हो ?

यद्यपि आंखोंसे स्नेहपूर्ण भावसे देख रही हो फिर भी उनकी कान्ति रक्ताभ हो रही है, वचनमें मिठास है, फिर भी तुम्हारी यह गद्गदवाणी रह रहकर रुक रुक जा रही है, इन साँसोंको तुमने नियन्त्रित कर लिया है फिर भी स्तनभारके उत्कम्पसे साँसों स्पष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः
कोपस्ते प्रकटप्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ॥ १३ ॥

(पादयोर्निपत्य) प्रिये, प्रसीद प्रसीद ।

वासवदत्ता—आरण्यके, त्वं कुपितेति संभावयन्नार्यपुत्रः 'प्रिये, प्रसीद' इति प्रसादयति। तदुपसर्प। (आरण्णए, तुमं कुविदत्ति सम्भावअन्तो अज्जउत्तो पिए पसीदत्ति पसादअदि। ता उवसप्प)

(इति हस्तेनाकर्षति)

आरण्यका—(सभयम्) भट्टिनी, न खल्वहं किमपि जानामि। (भट्टिणि ण हु अहं किंवि जाणामि)

वासवदत्ता—आरण्यके, त्वं कथं जानासि। इदानीं ते शिक्षयामि। इन्दीवरिके, गृहाणैनाम्। (आरण्णए, तुमं कहं जाणासि। दाणिं दे सिक्खावेमि। इण्दीवरिए, गेण्ह णं)

विदूषकः—भवति, अद्य कौमुदीमहोत्सवे तव चित्तमपहर्तुं वयस्येन

सत्यपि वर्त्तमानेऽपि ते इयम् वाक् गद्गदा अस्फुटध्वनियुक्ता अनुपदम् प्रत्येकपदोच्चारणे स्खलति सुष्ठुनोच्चार्यते। निःश्वासाः नियताः नियन्त्रितवहिर्भावाः सन्तोऽपि स्तनभरोत्कम्पेन स्तनभारचलनेन संलक्षिताः प्रकाशिताः, (तदेवम्) प्रकटप्रयत्नविधृतः स्फुटप्रयत्ननिगूढः अपि ते तव कोपः स्फुटं प्रकटं लक्ष्यते ज्ञायते। यद्यपि त्वं कोपं गोपयितुं प्रयत्नशतमाचरसि तथापि तैस्तैर्विकारैस्तवकोपः स्फुटं लक्ष्यत इत्याशयः ॥ १३ ॥

सम्भावयन्–उत्प्रेक्षमाणः आर्यपुत्र–राजा।

अपहर्त्तुम्–वशीकर्त्तुं–प्रसादयितुं वा। प्रेक्षणीयम् अनुष्ठितम्–अभिनयःकृतः।

लक्षित हो रही हैं, इस तरह स्फुट प्रयत्नोंसे छिपाये जाने पर भी तुम्हारा यह कोप साफ लक्षित हो रहा है ॥ १३ ॥

(चरणों पर गिरकर) प्रिये प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ।

वासवदत्ता—आरण्यके, तुमको कुपित समझकर आर्यपुत्र 'प्रिये प्रसीद' इन शब्दोंसे मना रहे हैं, अतः उनके पास जाओ। (हाथ पकड़ कर खींचती है)

आरण्यका—(सभय) महारानी, मैं कुछ भी नहीं जानती।

वासवदत्ता—आरण्यके, तुम कैसे जानोगी ? अभी तुमको सिखा रही हूं, इन्दीवरिके, पकड़ो इसे।

विदूषक—महारानी, आजके दिन कौमुदी मदोत्सवके अवसर तुम्हारे हृदयको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रेक्षणीयमनुष्ठितम् । (होदि, अज्ज कोमुदीमहूसवे तुह चित्तं अवहरिदुं वअस्सेण पेक्खणीअं अणुट्ठिदं)

वासवदत्ता—एतं युष्माकं दुर्नयं प्रेक्ष्य हासो मे जायते । (एदं तुह्माणं दुण्णअं पेक्खिअ हासो मे जाअदि)

राजा—देवि, अलमन्यथा विकल्पितेन । पश्य—

भ्रूभङ्गः क्रियते ललाटशशिनः कस्मात्कलङ्को मुधा
वाताकम्पितबन्धुजीवसमतां नीतोऽधरः किं स्फुरन् ।
मध्यश्चाधिककम्पितस्तनभरेणायं पुनः खिद्यते
कोपं मुञ्च तवैव चित्तहरणायैतन्मया क्रीडितम् ॥ १४ ॥

(राज्ञाऽऽरण्यकाऽऽकृष्टेन तत्सङ्गार्थं नायमुद्यमः कृतः किन्तु केवलं त्वत्प्रसन्नतासम्पादनार्थं निर्विकारेण हृदा केवलमभिनयः कृतस्तत्तस्य मम चापराधराहित्ये मा वृथा कोपं कृथा इति भावः)।

युष्माकम्–तव, राज्ञो, मनोरमायाश्च । दुर्नयम्–अविवेकम् । हासः–हसितम्, स च सद्यः कृतेऽप्यपराधे निजापराधगोपनाय वृथाप्रयासाचरणमूर्खतयाजनितो बोध्यः।

अन्यथा विकल्पितेन–अन्यप्रकारिकया कल्पनया । अनपराधेऽप्यपराधारोपणेनेत्याशयः।

भ्रूभङ्गैरिति० कस्मात् किं फलमुद्दिश्य ललाटशशिनः ललाटरूपस्य चन्द्रमसः भ्रूभङ्गैः भ्रुकुटिभिः मुधा वृथा कलङ्कः क्रियते समापाद्यते ? अकलङ्के स्वललाटचन्द्रे भ्रुकुटिरूपकलङ्कोत्पादने किं फलमुत्प्रेक्षसे इति प्रश्नाशयः, स्फुरन् कोपेन स्पन्दमानः अयम् तव अधरः किं किमर्थम् वाताकम्पितबन्धुजीवसमताम् पवनचलितबन्धूककुसुमसादृश्यम् नीतः गमितः ? अधिककम्पितस्तनभरेण समधिककम्पमानकुचकलशभारेण अयम् ते मध्यः पुनः खिद्यते, भारेण स्वरेण खिद्यमानस्य भारभूतवस्तु-

प्रसन्न करनेके लिये महाराजने यह अभिनय किया है ।

वासवदत्ता—तुम लोगोंके इन अविनयोंको देखकर मुझे हंसी आती है ।

राजा—देवी, दूसरे प्रकारके तर्क करनेकी आवश्यकता नहीं है, देखो—

भौवें टेंढ़ी कर ललाटरूप चन्द्रमामें क्यों व्यर्थ कलङ्क लगा रही हो ? इस चलते हुए अधरको हवासे कम्पमान बन्धुजीव पुष्पकी समता क्यों प्राप्त करा रही हो ? अधिक कम्पमान स्तनोंके भारसे अपने इस मध्यभागको क्यों खिन्न कर रही हो ? कोप त्याग करो, मैंने तुम्हारे मनोविनोदके लिये ही यह खेल किया है ॥ १४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवि, प्रसीद प्रसीद। (इति पादयोः पतति)

वासवदत्ता—हञ्जे, निर्वृत्तं प्रेक्षणकम्। तदेहि। अभ्यन्तरमेव प्रविशावः। (हञ्जे णिव्वुत्तं पेक्खणअं। ता एहि। अब्भन्तरं एव्व पविसह्म)

(इति निष्क्रान्ता)

राजा—(विलोक्य) कथमकृत्वैव प्रसादं गता देवी।

स्वेदाम्भःकणभिन्नभीषणतरभ्रूभङ्गमेकं रुषा
त्रासेनापरमुत्प्लुतोत्प्लुतमृगव्यालोलनेत्रोत्पलम्।
उत्पश्यन्नहमग्रतो मुखमिदं देव्याः प्रियायास्तथा

कम्पनेनायासो वर्धते इत्यभिसन्धिः। (तवललाटशशी भ्रूभङ्गेण वृथा कलङ्क्यते, कम्पमानश्चाधरो बन्धुजीवतुलामानीयते, स्तनभरेण पीडितोऽयं मध्यःपुनस्तत्कम्पेनायास्यते, तदियं कष्टपरम्परा तवाङ्गानामकारणोपनतेति तामपाकर्त्तुम्) कोपं मुञ्च क्रधं त्यज। नन्वस्तु कष्टपरम्परा, परं सकारणः कोपः कारणापरिहारे कथं त्यज्येतेत्यत्राह—तवैवेति० तव चित्तहरणाय मनोविनोदनाय एव मया एतत् क्रीडितम्। अन्याभिसन्धिशून्यमनसा मया कृतमिदं क्रीडनं त्वयाऽन्यथा सम्भाव्य वृथास्वान्यङ्गान्यायास्यन्त इति कोपत्यागः सर्वथैवोचित इत्यर्थः। छन्दः शार्दूलविक्रीडितम्॥१४॥

स्वेदाम्भ इति० एकं (देवीसम्बन्धिमुखम्) रुषा कोपेन स्वेदाम्भःकणैः कोपोत्थापितघर्माम्भोविन्दुभिः भीषणतरः अतिभयङ्करो भ्रूभङ्गो भ्रुकुटिर्यत्र तादृशम्। अपरम् अन्यत् (प्रियदर्शिकासम्बन्धिमुखम्) त्रासेन देवीकोपजनितेन भयेन उत्प्लुतोत्प्लुतः भयेनेतस्ततः सञ्चरन्यः मृगस्तस्येव व्यालोले नेत्रे यस्मिंस्तादृशम् भयत्रस्तहरिणलोचनोपमनयनशालि इत्यर्थः। देव्याः तथा प्रियायाश्च मुखम् अग्रतः स्वपुरतः पश्यन्नहम् भीतः (देवीमुखदर्शनेन) उत्सुकमानसः उत्कण्ठितचित्तश्च

देवि, प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ। (ऐसा कहता हुआ चरणों पर गिरता है)

वासवदत्ता—सखी, अभिनय समाप्त हो गया, अतः आओ, भीतर ही चलें।

(जाती है)

राजा—(देखकर) क्यों, विना प्रसाद किये ही देवी चली गई ?

एक ओर क्रोधसे उत्थित पसीनोंकी बूँदोंसे मिलित भयानक भ्रुकुटिशाली, और दूसरी ओर भयसे इधर उधर भागते हुए हरिणशावकके चञ्चल नेत्रके तुल्य नेत्र कमलयुक्त, इस देवी तथा प्रियतमाके मुखको अपने सामने देखकर मुझे भय तथा उत्सुकता इन दोनोंने बड़े भारी सङ्कटमें डाल रखा है। एक ओर यह महारानी होनेके कारण क्रोध कर रही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भीतश्चोत्सुकमानसश्च महति क्षिप्तोऽस्म्यहं संकटे ॥१५॥

तद्यावदिदानीं शयनीयं गत्वा देव्याः प्रसादनोपायं चिन्तयामि ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः

(प्रियदर्शिकामुखवीक्षणेन) महति विपुले सङ्कटे कष्टे पतितः अस्मि । देव्याः कोपकषायितं मुखं दृष्ट्वा भयमुत्पद्यते, प्रियदर्शिकायास्त्रस्तं च तदालोक्य दर्शनोत्कण्ठेति-द्वयोरभ्यन्तरे वर्त्तमानस्य मम महत्कष्टमुपस्थितमिति भावः ॥ १५ ॥

इति मैथिलपण्डित श्रीरामचन्द्रमिश्रप्रणीते प्रियदर्शिका 'प्रकाशे' तृतीयाङ्कप्रकाशः ।

है जिससे इसके चेहरपर पसीनोंकी बूँदे तथा भ्रूभङ्ग दीख रहे हैं, जिसे देखनेसे मेरे हृदयमें भयका सञ्चार होता है, और दूसरी ओर यह हमारी प्रियतमा है जिसे हमारी विरक्तिके कारण भय हो रहा है जिसका लक्षण उसकी आंखोंकी चञ्चलता है, उससे मेरे मनमें उत्सुकता-मिलनेच्छा होती है, इसप्रकार हमारे हृदयमें वर्त्तमान यह भय तथा उत्सुकता रूप दोनों भिन्नभावोंने मुझे भारी सङ्कटमें डाल रखा है ॥ १५ ॥

अतः तबतक शयनकक्षमें जाकर देवीकी प्रसन्नताके उपाय ही सोचता हूं ।

[सभी जाते हैं]

तृतीय अङ्क समाप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति मनोरमा)

मनोरमा—(सोद्वेगम्) अहो दीर्घरोषता देव्याः। कथमेतावन्तं कालं बद्धायाः प्रियसख्या आरण्यकाया उपर्यनुकम्पां न गृह्णाति। (सास्रम्) सा तपस्विन्यात्मनो बन्धनस्य क्लेशेन तथा न संतप्यते, यथा भर्तुर्दर्शन-निराशतया। 'इदृशं चास्या दुःखम्, येनाद्यैवात्मानं व्यापादयन्ती मया कथमपि निवारिता। एतं वृत्तान्तं भर्त्रे निवेदय' इति वसन्तकं भणित्वा-गतास्मि। (अहो दीहरोसदा देवीए। कहं एत्तिअं कालं बद्धाए पिअसहीए आरण्णआए उवरि अणुकम्पं ण गण्हइ। सा तवस्सिणी अत्तणो बन्धणस्स किले-सेण तह ण संतप्पदि, जह भट्टिणो दंसणणिरासदाए। 'ईरिसं च से दुक्खं, जेण अज्ज एव्व अत्ताणं वावादअन्ती मए कहं वि णिवारिदा। एदं उत्तन्तं भट्टिणो निवेदेहि' त्ति वसन्तअं भणिअ आअदह्मि)

दीर्घरोषता–अतिप्रवृद्धः कोपः। एतावन्तं कालम्–एतावद्दिनपर्यन्तम्। अनु-कम्पाम्–कृपाम्। तपस्विनी–निस्सहाया वराकी। दर्शननिराशतया–दर्शनाक्षमतया। व्यापादयन्ती–समापयन्ती।

[अनन्तर मनोरमाका प्रवेश होता है]

मनोरमा—सोद्वेग-भय या दुःखके साथ कहती है। उद्वेगेन सहितम्–'सोद्वेगम्' यह प्रतीयमान 'कथयति' क्रियाका विशेषण है। कुछ लोग उद्वेग शब्दसे विरहजन्य दुःख लेते हैं। **अहो०** देवी महारानीका कोप कितना दीर्घ चिरस्थायी है। रानीजी कितनी देर तक रंज रह सकती हैं। **कथम्०** क्यों इतने समय तक बन्धनमें डाली गई प्रिय-सखी आरण्यकाके ऊपर कृपा नहीं कर रही हैं। 'एतावन्तं कालं बद्धायाः' इस वाक्यमें अत्यन्त संयोगमें द्वितीया हुई है। वह तपस्विनी निर्दोष या शान्तस्वभावा आरण्यका अपने बन्धनके कष्टोंसे उतनी पीड़ाका अनुभव नहीं कर रही है जितनी पीड़ा उसे इस बन्धनावस्थामें महाराजके दर्शनके विषयमें निराशासे हो रही है! उसे इससे उतनी तकलीफ नहीं है कि वह बन्धनमें डाल दी गई है, उसे तो इस बातसे बड़ी तक-लीफ हो रही है कि वह अब महाराजका दर्शन नहीं पा सकेगी। 'निराशतया' आशाया निर्गता निराशा, तया निराशतया। उसका दुःख ऐसा है कि वह आज ही आत्महत्या करने जा रही थी किसी तरह मैंने उसे रोका। (आत्महत्या करनेसे रोका)। (आरण्यका आत्महत्या करने पर तत्पर है) इस समाचारको महाराजसे कहनेके लिये वसन्तकको कह दिया था, तब मैं गई थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति काञ्चनमाला)

काञ्चनमाला—कथमन्विष्यन्त्यापि मया भगवती साङ्कृत्यायनी न दृष्टा। (विलोक्य) तदेतामपि तावन्मनोरमां प्रक्ष्यामि। (उपसृत्य) मनोरमे, अपि जानासि कुत्र भगवती सांकृत्यायनीति। (कहं अण्णेसन्तीए वि मए भअवई सङ्किच्चाअणी ण दिट्ठा। तां एदं वि दाव मणोरमं पुच्छिस्सं मणोरमे, अवि जाणासि कहिं भअवई सङ्किच्चाअणित्ति)

मनोरमा—(विलोक्याश्रूणि प्रमृज्य) हला काञ्चनमाले, दृष्टा। किं पुनस्तया प्रयोजनम्। (हला कञ्चणमाले, दिट्ठा किं उण ताए पओअणं)

काञ्चनमाला—मनोरमे, अद्य देव्याङ्गारवत्या लेखः प्रेषितः। तस्मिन्वाचिते बाष्पपूर्णनयना दृढं सन्तप्तुमारब्धा देवी। तद्विनोदननिमित्तं तस्या भगवतीमन्विष्यामि। (मणोरमे, अज्ज देवीए अङ्गारवदीए लेहो पेसिदो। तस्सिं वाचिदे वप्फपुण्णणअणा दिढं सन्तप्पिदुं आरद्धा देवी। ता विणोदणणिमित्तं ताए भअवदिं अण्णेसामि)

मनोरमा—हला, किं पुनस्तस्मिंल्लेख आलिखितम्। (हला, किं उण तस्सिं लेहे आलिहिदं)

अङ्गारवत्या–वासवदत्ताजनन्या। वाचिते–पठिते। वाष्पपूर्णनयना–साश्रुनेत्रा। आरब्धा–प्रारब्धवती। विनोदननिमित्तम्–विनोदाय। भगवतीम्–देवीं साङ्कृत्यायनीम्। लेखे–पत्रे।

(काञ्चनमालाका प्रवेश होता है)

काञ्चनमाला—क्यों बहुत खोज कर भी मैं भगवती साङ्कृत्यायनीको नहीं देख रही हूँ। इसलिये इस मनोरमासे भी सांकृत्यायनीके बारेमें पूछूँगी। मनोरमे, क्या तुम जानती हो कि भगवती साङ्कृत्यायनी इस समय कहाँ हैं ?

मनोरमा—(देखकर और रोकर तथा आँसू पोंछ कर) सखि, काञ्चनमाले, मैंने साङ्कृत्यायनीको देखा तो है। तुमको उनसे क्या काम है ?

काञ्चनमाला—अरी मनोरमे, आज देवी अङ्गारवतीने एक लेख-पत्र-भेजा है। उसके पढ़े जाने पर महारानीने अधिक खेद प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया है। अतः उनके दिलको बहलानेके लिये भगवती पूजनीया साङ्कृत्यायनीकी खोज कर रही हूँ। साङ्कृत्यायनीके मिल जाने पर वह नानाविध कथाओं से उनके दिलको खुशकर सकेंगी, इसी लिये मैं उनकी खोजकर रही हूँ।

मनोरमा—सखी, उस पत्र में क्या लिखा है ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काञ्चनमाला—या मम भगिनी सा तव जनन्येव तस्या भर्ता दृढवर्मा तातस्ते। तत्तव किमेतदाख्यातव्यम्। तस्य समधिकः संवत्सरः कलिङ्गहतकेन बद्धस्य। तन्न युक्तमेतं वृत्तान्तमनिष्टं श्रुत्वा समीपस्थितस्य समर्थस्य भर्तुस्ते एवमुदासीनत्वमवलम्बितुम्' इति। ('जा मम भइणिआ सा तव जणणी एव्व। ताए भत्ता दिढवम्मा तादो दे। ता तुह किं एदं आअक्खिदव्वं। तस्स समहिओ संवच्छरो कलिङ्गहदएण बद्धस्स। ता ण जुत्तं एदं उत्तन्तं अणिट्ठं सुणिअ समीवट्ठिदस्स समत्थस्स भत्तुणो दे एव्वं उदासीणत्तणं ओलम्बिदुं' त्ति)

मनोरमा—हला काञ्चनमाले, यदा तावदयं वृत्तान्तो भट्टिन्यै न केनापि वाचयितव्य इति भर्त्राज्ञप्तम्, तत्केन पुनरिदानीं स लेखः श्रावितः। (हला कञ्चणमाले, जदा दाव अअं उत्तन्तो भट्टिणीए ण केण वि वाइदव्वोत्ति भट्टिणा आणत्तं, ता केण उण दाणिं सो लेहो सुणाविदो)

संवत्सरः समधिकः—वत्सराधिकः कालः। समर्थस्य—तन्मोचनक्षमस्य। उदासीनत्वम्—तटस्थत्वम्।

काञ्चनमाला—हमारी जो बहन है वह तो तुम्हारी माता ही हुई। हमारी बहन तुम्हारे लिये मांके समान है। और उसके स्वामी दृढ़वर्मा तुम्हारे पिता गुरुजन हैं। यह क्या तुमसे कहनेकी बात है? तुम खुद समझदार होनेके कारण इस पूज्यता सम्बन्धको जानती हो इस सम्बन्धमें तुमको अधिक उपदेश देनेकी आवश्यकता नहीं है। उस दृढ़वर्माको अभागे कलिङ्गने जेलमें डाल रखा है इस घटनाको बहुत वर्ष हो गये, अर्थात् नीच कलिङ्गाधिपने दृढ़वर्मा को कारागारमें रख छोड़ा है इस बातको कई वर्ष गुजर गये। यह उचित नहीं है कि इस अनिष्ट वृत्तान्त को सुन करके भी समीपस्थ तथा समर्थ होकर भी तुम्हारे स्वामी इस तरह चुप्पी लगाये बैठे रहें। यह उचित नहीं है कि अपने इतने निकट सम्बन्धीके कारावन्धनकी बात सुनकर भी तुम्हारे स्वामी जो समीपवर्त्ती तथा सर्वथा समर्थ हैं—इस प्रकार उदासीन बनकर बैठे रहें। (उनको इस सम्बन्धमें उचित प्रतीकार करना चाहिये)

मनोरमा—सखी काञ्चनमाले, जब कि महाराजने आदेश दे रखा था कि यह खबर महारानीको न दी जाय, पत्र महारानीको पढ़कर नहीं सुनाया जाय, तो फिर वह पत्र किसने महारानीको सुना दिया?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काञ्चनमाला—अनुवाच्य तूष्णींभूताया मम हस्ताद्गृहीत्वा स्वयमेव भट्टिन्या वाचितः। (अणुवाइअ तुण्हींभूदाए मह हत्थादो गेण्हिअ सअं एव्व भट्टिणीए वाइदो)

मनोरमा—तेन गच्छ त्वम्। एषा खलु देवी तयैव सह दन्तवलभ्यां तिष्ठति। (तेण गच्छ तुमं। एसा क्खु देवी ताए एव्व सह दन्तवलहीए चिट्ठइ)

काञ्चनमाला—तेन हि भट्टिनीसकाशं गमिष्यामि। (तेण हि भट्टिणी-सआसं गमिस्सं)

[इति निष्क्रान्ता]

मनोरमा—चिरं खलु मे आरण्यकासकाशादागतायाः। दृढं च निर्विण्णा सा तपस्विन्यात्मनो जीवितेन। कदाचिदत्याहितं भवेत्। तत्तत्रैव गच्छामि। (चिरं खु मे आरण्णआसआसादो आअदाए। दिढं च णिव्विण्णा सा तवस्सिणी अत्तणो जीविदेण। कदाइ अच्चाहिदं भवे। ता तहिं एव्व गच्छम्हि)

[इति निष्क्रान्ता]

इति प्रवेशकः।

अनुवाच्य–पठित्वा। तूष्णींभूतायाः–मौनं श्रितायाः। भट्टिन्या–देव्या।
दन्तवलभीनामकः प्रासादविशेषः।
निर्विण्णा–खिन्ना। अत्याहितम्–महाभीतिः, आत्मवधादिरूपोऽनर्थः।

काञ्चनमाला—पढ़कर मैं गुम हो रही थी, कि मेरे हाथसे खुद ही महारानीने लेकर वह पत्र पढ़ लिया।

मनोरमा—तब तुम जाओ। महारानी तो साङ्कृत्यायनीके साथ दन्तवलभी नामक प्रासादमें हैं। तुम जिसे ढूंढ़ रही हो वह स्वयं वहाँ हाजिर है, अब तुम्हें हैरान होनेकी जरूरत नहीं है।

काञ्चनमाला—तब मुझे महारानीके समीप जाना है। अर्थात् मैं अब महारानीके समीप जा रही हूँ।

(चली जाती है)

मनोरमा—मुझे आरण्यकाके समीपसे आये बड़ी देर हुई। वह साध्वी बड़े दुःखमें पड़ी हुई है, उस साध्वीके हृदयमें निर्वेदका साम्राज्य हो रहा है, कहीं कुछ अनर्थ न हो जाय, कहीं वह आत्मघात आदि कुछ अनर्थ न कर बैठे, अतः मैं वहीं जा रही हूँ।

[प्रस्थान]

[प्रवेशक की समाप्ति]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति सोद्वेगासनस्था वासवदत्ता, सांकृत्यायनी, विभवतश्च परिवारः)

सांकृत्यायनी—राजपुत्रि, अलमुद्वेगेन । नेदृशो वत्सराजः । कथमित्थंगतमपि भवत्या मातृष्वसृपतिं विज्ञाय वत्सराजो निश्चिन्तं स्थास्यति ।

वासवदत्ता—(सास्रम्) भगवति, अतिऋजुकेदानीं त्वम् । यस्य मया न कार्यम् , तस्य मदीयेन किं कार्यम् । मातुर्युक्तं ममैतदालिखितुम् । सा पुनर्न जानात्यद्य तादृशी न वासवदत्तेति । तव पुनरेष आरण्यकावृत्तान्तः प्रत्यक्षः । तत्कथमेतद्भणसि । (भअवदि, आदिउज्जुआ दाणिं तुमं । जस्स मए ण कज्जं, तस्स ममकेरएग किं कज्जं । अज्जुआए जुत्तं मम एदं आलिहिदुं । सा उण ण आणादि अज्ज तारिसी ण वासवदत्तेत्ति । तुह उण एसो आरण्णआए उत्तन्तो पच्चक्खो । ता कहं एदं भणसि)

उद्वेगेन-दुःखेन । इत्थं गतम्-एतादृशीं दशां प्रपन्नम् ।

अतिऋजुका-अतिसरला । यस्य मया न कार्यम्-यो मां नेच्छति । यो राजाऽन्यवनितापरायणतया मामुपेक्षते स मन्मातृष्वसृपतिं शत्रुणा वध्यमानं मोचयितुं चिन्तयेदिति कथं सम्भवतीति तदाशयः। एतत्-हासयितुमिति तव कथनम् । पक्षपातेन-

---

[अनन्तर उद्विग्न अवस्थामें वासवदत्ता, साङ्कृत्यायनी, और विभवानुकूल-परिजनका प्रवेश होता है]

साङ्कृत्यायनी—राजकुमारि, खेद करने की आवश्यकता नहीं है । वत्सराज इतने गये गुजरे नहीं हैं । वह किस प्रकार आपके मौसेको इस तरहकी विपत्तिमें पड़ा जानकर निश्चिन्त रहेंगे । यह कभी नहीं हो सकता है कि वत्सराजको यह ज्ञात हो जाय कि आपकी मौसीके स्वामी कारावद्ध हैं फिर भी वत्सराज निश्चिन्त बैठे रह जाँय। अतः आप उदास न हों, वह अवश्य दृढ़वर्माको छुड़ानेके लिये समुचित प्रयत्न शीघ्र करेंगे ।

वासवदत्ता—भगवति, आप इस समय अतिशय भोली बन रही हैं । [आपका यह कथन आपकी सरलताकी सूचना दे रहा है] जिसको मुझसे कोई प्रयोजन नहीं है उसे मेरे सम्बन्धियोंसे क्या प्रयोजन हो सकता है । जो मेरी ही खोज खबर नहीं रखता है वह हमारी मौसीके स्वामीको बन्धनसे छुड़ानेका प्रयास करेगा इसकी क्या आशा की जाय ? मांने जो लिखा है सो तो उचित है । उसे यह मालूम नहीं है कि इनदिनों उसकी वासवदत्ता पहलेकी वासवदत्ता नहीं रही । आपको (साङ्कृत्यायनीको) तो यह आरण्यकावृत्तान्त मालूम है, फिर भी आप क्यों इस तरह कह रही हैं ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सांकृत्यायनी—यत एव मे प्रत्यक्षः, तत एव ब्रवीमि। तेन ननु कौमुदीमहोत्सवे त्वां हासयितुं तथा क्रीडितम्।

वासवदत्ता—भगवति, एतदत्र सत्यम्। तथा हासितास्मि, येन भगवत्याः पुरतो लज्जया कथमपि तिष्ठामि। तत्कि तदीयया कथया। नन्वेतेनैव पक्षपातेनैतावतीं भूमिं नीतास्मि। (भअवदि, एदं एत्थ सच्चं। तह हासिदह्मि, जेण भअवदीए पुरदो लज्जाए कहं वि चिट्ठामि। ता किं तक्केरे काए कहाए। णं एदेण एव्व पक्खवादेण एत्तिअं भूमिं णीदह्मि) (इति रोदिति)

साङ्कृत्यायनी—अलं राजपुत्रि रुदितेन। नेदृशो वत्सराजः। (विलोक्य) अथवा प्राप्त एवायम्, यस्ते अश्रुप्रमार्जनं करोति।

वासवदत्ता—मनोरथा इदानीमेते भगवत्याः। (मणोरहा दाणिं एदे भअवदीए)

राजनि तवात्यादरेण। राजा यथेच्छमाचरति, त्वं पुनस्तत्पक्षपातात्सर्वं समर्थयमाना तत्कृत्यानि भिन्नार्थतयोत्प्रेक्षसे, अत एव च निर्भयः सन्स मामीदृशीं स्थितिमानीतवानित्याशयः।

अश्रुप्रमार्जनम्–नयनवारिमार्जनम्, प्रसादनम् इत्यर्थः।

मनोरथाः–आशामात्राणि, राज्ञोऽत्रागमनस्याशक्यतया तथाकल्पनं तवाशामात्रं न तु सत्यमित्यर्थः।

साङ्कृत्यायनी—इसीलिये तो इस प्रकार कर रही हूँ कि मुझें आरण्यकावृत्तान्त का ज्ञान है। महाराजने कौमुदीमहोत्सवके अवसर पर तुम्हें हंसानेके लिये उसतरह की क्रीड़ा रची थी। (वह आरण्यकाविषयक व्यवहार महाराजका विनोद प्रियतामात्र था, वास्तविकता उसमें नहीं थी, इसीलिये मेरा मत है कि वह तुम्हारे साथ उसी प्रकारका प्रेम रखते हैं जैसा पहले रखते थे, फिर तुम्हारे सम्बन्धीके कष्टकी उपेक्षा वह कैसे करेंगे?)

वासवदत्ता—भगवति, इतना तो सत्य है ही। मुझे इसप्रकार हंसाया गया है कि मैं तुम्हारे सामने किसी प्रकार लज्जासे ठहर पाती हूं। जाने दो उसकी बात। अपनें ऊपर महाराजके इसी स्नेहके कारण तो मैं इस स्थितिको पहुँच गई हूँ।

साङ्कृत्यायनी—राजकुमारि, रोओ मत। वत्सराज इतने कपटी नहीं हैं। (देखकर) अथवा—यही तो महाराज आरहे हैं जो तुम्हारे आंसू पोछेंगे।

वासवदत्ता—इस समय यह आपके मनोरथमात्र हैं [महाराज हमारे आंसू पोछने आयेंगे यह बात आपकी कामनाभर है, वस्तुस्थिति इसके ठीक उलटी है]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—वयस्य, क इदानीमभ्युपायः प्रियां मोचयितुम्।

विदूषकः—भो वयस्य, मुञ्च विषादम्। अहं ते उपायं कथयिष्यामि। (भो वअस्स, मुञ्च विसादं। अहं दे उवाअं कहइस्सं)

राजा—(सहर्षम्) वयस्य, त्वरिततरमभिधीयताम्।

विदूषकः—भोः, त्वं तावदनेकसमरसङ्घट्टप्रभावबाहुशाली, पुनरप्यनेकगजतुरगपदातिदुर्विषहबलसमुदितः। तत्सर्वबलसन्दोहेनान्तःपुरं सुपीडितं कृत्वेदानीमेवारण्यकां मोचय। (भो, तुमं दाव अणेअसमरसङ्घट्टप्पहाववाहुसाली, पुणो वि अणेअगअतुरअपआइदुव्विसहवलसमुद्दिदो। ता सव्ववलसंदोहेण अन्तेउरं सुपीडिअं करिअ दाणिं एव्व आरण्णअं मोचावेहि)

राजा—वयस्य, अशक्यमुपदिष्टम्।

विदूषकः—किमत्राशक्यम्। यतस्तावत्कुब्जवामनवृद्धकञ्चुकिवर्जितो

त्वरिततरम्-अतिशीघ्रम्।

अनेकसमरसङ्घट्टप्रभाववाहुशाली–बहुतरयुद्धविजयक्षमभुजयुतः। अनेकगजतुरगपदातिदुर्विषहबलसमुदितः–नानाहस्त्यश्वपादचारिभिरनन्तपराक्रमसहितः। सर्वबलसन्दोहेन–सर्वैः सैन्यैः। सुपीडितम्–मर्दितम्। मोचय–मुक्तबन्धनां कुरु।

[अनन्तर राजा और विदूषकका प्रवेश]

राजा—वयस्य, इस समय प्रियाको बन्धनमुक्त करनेका क्या उपाय है।

विदूषक—अजीमित्र, विषाद छोड़ दो, मैं तुम्हें प्रियाको मुक्त करनेका उपाय बताऊँगा।

राजा—(सहर्ष) वयस्य, शीघ्रसे शीघ्र बताओ।

विदूषक—अजी, तुम तो अनेक युद्धमें प्रभाव प्रकट करनेवाले बाहुसे युक्त, और अनेक हाथी, घोड़े, पैदल सेना, आदिसे विक्रान्त सैन्यशाली हो, अतः समस्त सैन्यके साथ अन्तःपुरको आक्रान्त करके इसी समय आरण्यकाको मुक्त करा दो। (तुम्हारे बाहुमें पराक्रम है जिसका प्रत्यक्ष अनेकशः युद्धोंमें हो चुका है, तुम्हारे पास सर्वाङ्गपूर्ण सैन्य भी है फिर क्यों नहीं आज ही अन्तःपुर पर आक्रमण करके प्रियाको मुक्त करा दे रहे हो)

राजा—वयस्य, तुमने जो उपाय बताया वह अशक्य अव्यावहारिक है। (अन्तःपुर पर आक्रमण कर प्रियाको मुक्त करवाना असंभव है)

विदूषक—इसमें अशक्य क्या है? कुबड़े बौने और वृद्ध कञ्चुकियोंके अतिरिक्त और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनुष्योऽपरो नास्ति तत्र। (किं एत्थ असक्कं जदो दाव कुज्जवामणवुड्ढकञ्चुइवज्जिदो मणुस्सो अवरो णत्थि तहिं)

राजा—(सावज्ञम्) मूर्ख, किमसम्बद्धं प्रलपसि। देव्याः प्रसादं मुक्त्वा नान्यस्तस्या मोक्षणाभ्युपायः। तत्कथय कथं देवीं प्रसादयामि)

विदूषकः—भोः, मासोपवासं कृत्वा जीवितं धारय। एवं देवी चण्डी प्रसत्स्यति। (भो मासोववासं करिअ जीविदं धारेहि। एव्वं देवी चण्डी पसीदिस्सदि)

राजा—(विहस्य) अलं परिहासेन। कथय कथं देवीं प्रसादयामि।

धृष्टः किं पुरतोऽवरुध्य विहसन्गृह्णामि कण्ठे प्रियां
किं वा चाटुशतप्रपञ्चरचनाप्रीतां करिष्यामि ताम्।

असम्बद्धम्–अव्यावहारिकम्। प्रसादम्–प्रसन्नताम्। मोक्षणाभ्युपायः–मुक्तिप्रकारः।

मासोपवासम्–त्रिंशद्दिवसव्यापकं निराहारव्रतम्। प्रसत्स्यति–प्रसन्ना भविष्यति।

धृष्ट इति० किं धृष्टः निर्लज्जः प्रगल्भो वा (सन् अहम्) पुरतः अग्रतः अवरुध्य गमनान्निवार्य विहसन् प्रियाम् वासवदत्ताम् कण्ठे तद्गले गृह्णामि। निर्लज्जाभावे नाहं तां धृत्वा हसामीति किम् युक्तमत्रस्थितौ स्यादित्यर्थः। किं वा ताम् चाटुशतस्य प्रियवाक्यानाम् शतस्य प्रपञ्चो विस्तारस्तस्य रचनया विधानेन ताम् वासवदत्ताम् प्रीताम् प्रसन्नाम् करिष्यामि ? नानाविधानि चाटूनि व्याहृत्य तस्याः प्रसादं जनयामि वा किमिति द्वितीयकोटिगतोऽभिप्रायः। देव्याः वासवदत्तायाः पादयोः

मनुष्य तो वहाँ होते नहीं हैं।

राजा—(तिरस्कारपूर्वक) मूर्ख, क्या बेसिर पैरकी बात कर रहा है ? महारानीकी प्रसन्नताके अतिरिक्त आरण्यकाकी मुक्तिका कोई उपाय नहीं है। अतः यह बताओ कि किस प्रकार महारानीको प्रसन्न किया जाय ?

विदूषक—अजी, मास पर्यन्त उपवास करके जीवन धारण करो, इस प्रकार कोपयुक्त देवी प्रसन्न होंगी।

राजा—(हंसकर) दिल्लगी बेकार है। यह बताओ कि किस प्रकार देवी प्रसन्न होंगी। क्या निर्लज्ज बनकर देवीको आगेसे घेरकर हंसता हुआ मैं उनके गलेसे लिपट जाऊं ? या क्या अनेक प्रकारकी रोचक बातोंसे उन्हें प्रसन्न करूंगा ? या हाथ जोड़

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किं तिष्ठामि कृताञ्जलिर्निपतितो देव्याः पुरः पादयोः
सत्यं सत्यमहो न वेद्म्यनुनयो देव्याः कथं स्यादिति ॥ १ ॥

तदेहि । देवीसकाशमेव गच्छावः ।

विदूषकः—भोः गच्छ त्वम् । अहं पुनरिदानीमेव बन्धनात्कथमपि परिभ्रश्यागतोऽस्मि । तन्न गमिष्यामि । (भो गच्छ तुमं । अहं उण दाणिं एव्व बन्धणादो कहं वि परिब्भंसिअ आअदोह्मि । ता ण गमिस्सं)

राजा—(विहस्य, कण्ठे गृहीत्वा बलान्निवर्तयति) मूर्ख, आगम्यतामागम्यताम् । (परिक्रम्यावलोक्य च) इयं देवी दन्तवलभीमध्यमध्यास्ते । यावदुपसर्पामि । (सलज्जमुपसर्पति)

(वासवदत्ता सखेदमासनादुत्तिष्ठति)

राजा—

किं मुक्तमासनमलं मयि संभ्रमेण
नोत्थातुमित्थमुचितं मम तान्तमध्ये ।

निपतितः नम्रः सन् पुरः अग्रे कृताञ्जलिः बद्धकरयुगलः तिष्ठामि किम् ? (एतत्) सत्यं सत्यम् परमार्थसत्यम् , (यत्) देव्याः अनुनयः प्रसादनम् कथं केन प्रकारेण स्यादिति न वेद्मि, एतत्प्रकारविषये ममाज्ञानं नितान्तसत्यमित्याशयः ॥ १ ॥

परिभ्रश्य–मुक्तिमासाद्य ।

दन्तवलभीमध्यास्ते—दन्तवलभीनामके प्रासादे वर्त्तत इत्यर्थः ।

किं मुक्तमिति० आसनम् किं किमर्थम् मुक्तम् त्यक्तम् ? मयि मद्विषये सम्भ्रमेण

कर देवीके चरणोके आगे गिरा-पड़ा-रहू, वस्तुतः मे यह नहीं समझ रहा हू कि किस प्रकारसे देवीको अनुनीत कर सकूँगा । उसका क्रोध कैसे दूर होगा यह बात वास्तवमें मेरी समझमें नहीं आरही है ॥ १ ॥

इसलिये चलो, देवीके पास ही चलें ।

विदूषक—अजी, तुम जाओ, मैं अभी अभी किसी प्रकार बन्धनसे छुटकारा पाकरके आरहा हूँ, इसलिये नहीं जाऊंगा ।

राजा—(मुसकुराकर, गलेसे पकड़कर बलपूर्वक लौटाता है) अरे मूर्ख, चलो चलो । (चलकर और देखकर) यहीं तो देवी दन्तवलभी पर बैठी हैं । जब तक समीप जाता हूं ।

(लज्जापूर्वक समीप जाता है)

[वासवदत्ता खिन्नमनसे आसन छोड़ खड़ी हो जाती है]

राजा—हमारे आनेपर उपचारके लिये हड़बड़ाकर आसन क्यों छोड़ दिया ? ओ कृशोदरि, इस तरह उठना उचित नहीं है । मैं तो तुम्हारी प्रसन्नदृष्टिमात्र पर आसक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्टिप्रसादविधिमात्रहृतो जनोऽय-
मत्यादरेण किमिति क्रियते विलक्षः ॥ २ ॥

वासवदत्ता—(मुखं निरूप्य) आर्यपुत्र, विलक्ष इदानीं त्वं भवसि। (अज्जउत्त; विलक्खो दाणिं तुमं होसि)

राजा—प्रिये सत्यमहं विलक्षः। यत्प्रत्यक्षदृष्टापराधोऽपि भवतीं प्रसादयितुं व्यवसितोऽस्मि।

साङ्कृत्यायनी—(आसनं निर्दिश्य) महाराज, क्रियतामासनपरिग्रहः

राजा—(आसनं निर्दिश्य) इतो देव्युपविशतु।

(वासवदत्ता भूमावुपविशति)

राजा—आः कथं भूमावुपविष्टा देवी। अहमप्यत्रैवोपविशामि। (इति

उपचारचिन्तार्थं व्यग्रभावेन अलम्, तस्य प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः। अयि तान्तमध्ये कृशतया खिन्नकटे मम (कृते इति शेषः) इत्थम् अनेन प्रकारेण उत्थातुन्नोचितम् उत्थानं नावश्यकम्। दृष्टिप्रसादविधिमात्रहृतः प्रसन्नदृक्पातमात्रेण वशगः अयम् मल्लक्षणः जनः अत्यादरेण ससम्भ्रमोत्थानासनत्यागादिना किमिति किमर्थं विलक्षः लज्जितः क्रियते विधीयते ? यः प्रसादमाकाङ्क्षति स चेदाद्रियते, तस्य चित्ते भावान्तरसंभावनया लज्जेव जायते, अतः किमिति प्रसादने मामननुगृह्यादरेण संभावयन्ती लज्जितं मां विधत्स इत्याशयः ॥ २ ॥

विलक्षः-लज्जितः। प्रत्यक्षदृष्टापराधः-साक्षात्कृतस्खलनः। व्यवसितः-कृतोद्योगः।

रहनेवाला आदमी हूं फिर मेरे लिये इतना आदर प्रकट कर मुझे लज्जित क्यों कर रही हो ? मैं जब तुम्हारी प्रसन्न दृष्टिपातमात्रसे कृतार्थ हो जाने वाला आदमी हूं तो फिर तुम क्यों हमारे स्वागतके लिये इतना आयास करके आसन त्याग कर रही हो, तुम्हारी कमर कृश होनेके कारण इस व्यापारके उपयुक्त नहीं है ॥ २ ॥

वासवदत्ता—(मुंह देखकर) आर्यपुत्र, आप इस समय लज्जितसे मालूम पड़ रहे हैं।

राजा—प्रिये, वस्तुतः मैं इस समय लज्जित हो रहा हूँ क्योंकि अपने अपराधके प्रत्यक्ष दृष्ट हो जाने पर भी तुमको प्रसन्न करनेका उद्योग कर रहा हूँ।

साङ्कृत्यायनी—(आसनकी ओर सङ्केत करके) महाराज, आप आसन ग्रहण करें।

राजा—(आसनकी ओर संकेत कर इधर देवी वैठें।

(वासवदत्ता जमीनपर वैठती है)

राजा—आः, आप जमीन पर क्यों बैठ गईं ? मैं भी जमीन पर ही वैठूंगा। (भूमि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूमावुपविश्य, कृताञ्जलिः) प्रिये, प्रसीद प्रसीद। किमेवं प्रणतेऽपि मयि गम्भीरतरं कोपमुद्वहसि।

भ्रूभङ्गं न करोषि रोदिषि मुहुर्मुग्धेक्षणे केवलं
नातिप्रस्फुरिताधरानवरतं निःश्वासमेवोज्झसि।
वाचं नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रध्याननम्रानना
कोपस्ते स्तिमितो निपीडयति मां गूढप्रहारोपमः॥ ३॥

प्रिये, प्रसीद प्रसीद। (इति पादयोः पतति)

गम्भीरतरम्-अतिमहान्तम्।

भ्रूभङ्गमिति० अयि मुग्धेक्षणे भ्रूभङ्गम् भ्रुवोः कुलिताम् न करोषि, केवलम् मुहुः भूयोभूयः रोदिषि, नातिप्रस्फुरिताधरा ईषत्कम्पितोष्ठा अनवरतम् सततम् निःश्वासम् एव उज्झसि विसृजसि, वाचम् अपि न ददासि व्याहरसि, परं केवलम् प्रध्यानन-म्रानना चिन्तानतमुखी सती तिष्ठसि, (तदेवम्) गूढप्रहारोपमः अप्रकटाघात-तुल्यः स्तिमितः प्रच्छन्नः चिह्नविशेषाननुमेयस्ते तव कोपः माम् निपीडयति व्यथ-यति। यस्याः कोपो भ्रूभङ्गाधरस्फुरणबहुभाषणादिपूर्णो भवति सा सुखमनुनीयते, भवती पुनरेतच्चिह्नरहितकोपशालिनी गूढप्रहारोपमकोपभृता कथमनुमेयेति ज्ञाना-भावान्मां व्यथासागरे पातयतीत्यर्थः॥ ३॥

पर बैठकर, हाथ जोड़कर) प्रिये, प्रसन्नता धारण करो, प्रसन्नता धारण करो। क्यों इस तरह मेरे प्रणत होने पर भी गम्भीर कोप धारण कर रही हो?

अरी ओ भोली आँखों वाली, भौंवें टेढ़ी नहीं करती हो, बार-बार केवल रोती हो। तुम्हारे ओष्ठ जोरोंसे नहीं फड़कते, तुम केवल अनवरत सांसे भर रही हो। तुम कुछ बोलती नहीं हो, केवल ध्यानमें शिर झुकाए बैठी हो, इस तरहका तुम्हारा यह अन्तर्मुख कोप मुझे भीतरी मारकी तरह तकलीफ दे रहा है। जैसे कोई गूढ़ प्रहार-जिसके प्रकट चिह्न नहीं हों, किन्तु खूब प्रहार हुए हों—ऐसी मार भीतर ही भीतर बड़ी तकलीफ देती है उसी प्रकार तुम्हारा यह अन्तर्नियमित कोप मुझे बड़ी तकलीफ दे रहा है। तुम्हारा कोप अन्तर्नियमित है इसका प्रमाण यही है कि तुम कोप प्रकाशक भ्रूभङ्ग नहीं कर रही हो, न तो तुम्हारे ओष्ठ ही फड़क रहे हैं और न तुम कुछ बोल रही हो, केवल रोने निश्वास छोड़ने तथा शिर झुकाकर बैठे रहनेसे तुम्हारे अन्तर्मुख कोपका आभास भर होता है॥ ३॥

प्रिये, प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ। (यह कहकर चरणों पर गिरता है)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासवदत्ता—अतिसुखितो नन्वसि। किमिदानीं दुःखितं जनं विकारयसि। उत्तिष्ठ। कोऽत्र कुपितः। (अदिसुहिदो णं सि। किं दाणिं दुक्खिदं जणं विआरेसि। उट्ठेहि। को एत्थ कुविदो)

साङ्कृत्यायनी—उत्तिष्ठ। महाराज, किमनेन। अन्यदेव तावदुद्वेगकारणमस्याः।

राजा—(ससंभ्रमम्) भगवति, किमन्यत्।

(साङ्कृत्यायनी कर्णे कथयति)

राजा—(विहस्य) यद्येवमलमुद्वेगेन। मयापि ज्ञातम्, सिद्ध एवास्मिन्प्रयोजने देवीं दिष्ट्या वर्धयिष्यामीति नोक्तम्। अन्यथा कथमहं दृढवर्मवृत्तान्ते विस्रब्धस्तिष्ठामि। तत्कतिपयान्यहानि तद्वार्ताया आगतायाः। इदं च तत्र वर्तते।

अस्मद्बलैर्विजयसेनपुरःसरैस्तै-
राक्रान्तबाह्यविषयो विहतप्रतापः।

विकारयसि–विडम्बयसि।

अन्यदेव–त्वदूहितकोपभिन्नमेव। उद्वेगकारणम्–खेदहेतुः।

सिद्धे–निष्पन्ने। अस्मिन्प्रयोजने–दृढवर्मनिग्रहरूपे कार्ये। विस्रब्धः–आश्वस्तः, निष्क्रिय इति यावत्।

अस्मद्बलैरिति० विजयसेनपुरस्सरैः विजयसेनप्रमुखैः तैः अस्मद्बलैः अस्मत्सैन्यैः

वासवदत्ता—आप इस समय सुखमें हैं। क्यों इस समय इस दुखियाको चिढ़ा रहे हैं? उठिये, यहाँ रुष्ट कौन है?

साङ्कृत्यायनी—महाराज उठिये। इस चरण निपातकी क्या जरूरत है? इसके दुःखका कारण कुछ और ही है।

राजा—(उत्सुकतासे) भगवति और क्या?

(साङ्कृत्यायनी महाराजके कानोमें कुछ धीरे कहती है)

राजा—(हंसकर) यदि ऐसी ही बात है तो खेद करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। मैंने समझ रखा था कि इस लक्ष्यके सिद्ध हो जाने पर ही देवीको मुबारकबादी दूँगा, इसीलिये अब तक कुछ कहा नहीं था। अन्यथा दृढ़वर्माके विषयमें किस प्रकार चुप्पी साधकर बैठ सकता था। कुछ ही दिन हुए वहाँकी खबर आगई। वहाँकी यहीं हालत है—

विजयसेनकी प्रधानतामें गई हुई हमारी सेनाने बाह्य प्रदेशों पर अधिकार करके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुर्गं कलिङ्गहतकः सहसा प्रविश्य
प्राकारमात्रशरणोऽशरणः कृतोऽसौ ॥ ४ ॥

तदवस्थं च तं

निर्दिष्टाक्रान्तमन्दं प्रतिदिनविरमद्वीरदासेरवृत्तं
सध्वंसं शीर्यमाणद्विपतुरगनरक्षीणनिःशेषसैन्यम् ।
अद्य श्वो वा विभग्ने झटिति मम बलैः सर्वतस्तत्र दुर्गे
बद्धं युद्धे हतं वा भगवति नचिराच्छ्रोष्यसि त्वं कलिङ्गम् ॥

आक्रान्तबाह्यविषयः अधिकृतनगरबहिर्गतभूभागः (अतएव) विहतप्रतापः नष्टकोशदण्डजतेजस्कः दुर्गम् प्रविश्य प्राकारमात्रशरणः सैन्यक्षयेण प्राकारमात्रं रक्षकं मन्यमानः असौ कलिङ्गहतकः अशरणः शरणरहितः कृतः । स्पष्टोऽर्थः ॥ ४ ॥

निर्दिष्टाक्रन्देति० निर्दिष्टाक्रान्तमन्दम् पूर्वोक्ताक्रमणहततेजसम् , प्रतिदिनविरमद्वीरदासेरवृत्तम् अनुदिनापचीयमानयोधभृत्यव्यापारम् , सध्वंसम् नाशेनसहितम् शीर्यमाणः विच्छिद्यमानैः द्विपैः हस्तिभिः, तुरगैः अश्वैः, नरैश्च क्षीणम् समाप्तम् निःशेषं सैन्यं यस्य तादृशम् , तम् कलिङ्गम् अद्य श्वो वा अतिशीघ्रम् सर्वतः सर्वासु दिक्षु तत्र तदधिष्ठिते दुर्गे झटिति न चिरेण मम बलैः सैन्यैः विभग्ने सति त्रोटिते सति न चिरात् युद्धे बद्धम् नियन्त्रितम् हतं मृतं वा श्रोष्यसि, अयमाशयः—पूर्वोक्तप्रकारेण तस्य तेजः क्षीणम् , प्रतिदिनं भृत्या विरक्त्या वेतनालाभेन भीत्या वा पलायन्ते,

अभागे कलिङ्गके प्रतापको अपने प्रतापसे शून्यकर दिया । अनन्तर कलिङ्गकोही शरण नहीं मिलनेके कारण सहसा दुर्गमें प्रवेश करके दुर्गके घेरेकी दीवारोंकी शरणमें आना पड़ा । वाहरसे घिरकर जब कलिङ्ग निरुपाय हो गया तब उसे किलेमें छिपना पड़ गया ॥ ४ ॥

इस तरह किलेमें उसके घिर जाने पर—निर्दिष्ट अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारके आक्रमणसे कलिङ्ग मन्द पड़ गया है, उसके दासेर—भृत्योंकी युद्धचर्या दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है, वह ध्वंसके मुंह पर पहुँच गया है, उसकी गज, घोड़ा, पैदलसेना क्षीण हो गई है, इसतरह उसकी सैन्यशक्ति निःशेष होती जा रही है । आज या कल शीघ्र ही हमारी सेना उस किलेको भग्न कर देगी, फिर आप शीघ्र ही सुनेगी कि कलिङ्ग युद्धमें मारा गया है या बँध गया है । हमारी सेनाके द्वारा दुर्ग भङ्ग किये जाने पर या तो वह युद्धमें मारा जायगा या वन्दी वनाया जायगा, [यह समाचार अब आपको शीघ्र ही सुननेको मिलेगा क्योंकि इस आक्रमणसे उसकी हिम्मत टूट गई है उसके भृत्यगण पस्त होकर प्रतिदिन युद्धचर्चासे हट रहे हैं, उसकी सेना क्षीण हो रही है, इसतरह वह नाशके द्वारपर पहुँच गया है ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साङ्कृत्यायनी—राजपुत्रि, प्रथमतरमेव भवत्याः कथितं मया कथमप्रतिविधाय वत्सराजः स्थास्यतीति ।

वासवदत्ता—यद्येवं प्रियं मे । (जइ एव्वं पिअं मे)

(प्रविश्य प्रतीहारी)

प्रतीहारी—जयतु जयतु भर्ता । एष खलु विजयसेनो दृढवर्मकञ्चुकिसहितो हर्षसमुत्फुल्ललोचनः प्रियं निवेदयितुकामो द्वारे तिष्ठति । (जेदु जेदु भट्ठा । एसो क्खु विअअसेणो दिढवम्मकञ्चुइसहिदो हरिसमुप्फुल्ललोअणो पिअं णिवेदिदुकामो दुवारे चिट्ठइ)

वासवदत्ता—(सस्मितम्) भगवति, तर्कयामि यथा परितोषितास्म्यार्यपुत्रेणेति । (भअवदि, तक्केमि जह परिदोसिदह्मि अज्जउत्तेणेत्ति)

साङ्कृत्यायनी—वत्सराजपक्षपातिनी खल्वहं न किंचिदपि ब्रवीमि ।

राजा—शीघ्रं प्रवेशय तौ ।

हस्तिगजपदातयः क्रमशो निहताः, दुर्गमपि भग्नप्रायं तदचिरेणैव तस्य बन्धं वधं वा भवती श्रोष्यतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

अप्रतिविधाय-प्रतिकारमकृत्वा ।
हर्षसमुत्फुल्ललोचनः-आनन्दविकसिताक्षः । प्रियम्-श्रोतुमिष्टम् ।
परितोषिता-प्रसादेनानुगृहीता ।

साङ्कृत्यायनी—राजपुत्रि, मैंने पहले ही तुमसे कह दिया था कि वत्सराज विना प्रतीकार किये किस प्रकार रह सकते हैं ।

वासवदत्ता—यदि ऐसी बात है तो मुझे खुशी है ।

(प्रतीहारीका प्रवेश)

प्रतीहारी—जय हो जय हो महाराजकी । दृढ़बर्माके कन्चुकीके साथ हर्षसे विकसित नयनशाली विजयसेन कुछ शुभ समाचार निवेदन करनेकी इच्छासे दरवाजे पर खड़े हैं ।

वासवदत्ता—(हंसकर) भगवति, अन्दाज करती हूँ, महाराजने मुझे परितोषित कर दिया है ।

साङ्कृत्यायनी—मैं तो वत्सराजकी पक्षपातिनी हूँ, मैं इस विषयमें कुछ नहीं बोल सकती हूँ ।

राजा—उन्हें शीघ्र बुला लाओ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीहारी—तथा। (तह) (इति निष्क्रान्ता।)

(ततः प्रविशति विजयसेनः कञ्चुकी च)

विजयसेनः—भोः कञ्चुकिन्, अद्य स्वामिपादा द्रष्टव्या इति यत्सत्यमनुपमं कमपि सुखातिशयमनुभवामि।

कञ्चुकी—विजयसेन, अवितथमेतत्। पश्य।

सुखनिर्भरोऽन्यथापि स्वामिनमवलोक्य भवति भृत्यजनः।
किं पुनररिबलविघटननिर्व्यूढप्रभुनियोगभरः॥ ६॥

उभौ—(उपसृत्य) जयतु जयतु स्वामी।

(राजा उभावपि परिष्वजते)

कञ्चुकी—देव, दिष्ट्या वर्धसे।

स्वामिपादाः—राजानः। यत्सत्यम्—निश्चयेन। सुखातिशयम्—आनन्दप्रकर्षम्। अवितथम्—सत्यम्।

सुखनिर्भर इति० भृत्यजनः अन्यथापि स्वाम्यादेशादिकं विनाऽपि स्वामिनम् अवलोक्य सुखनिर्भरः आनन्दपूर्णः भवति। अरिबलस्य शत्रुसैन्यस्य विघटनेन विनाशनेन निर्व्यूढः पालितः प्रभुनियोगभरः स्वाम्यादेशसमुदयो येन स तथोक्तः (भृत्यजनः) किं पुनः सुखनिर्भरः स्यादिति किं वक्तव्यमित्यर्थः। एवमपि प्रभुदर्शनं सुखं मन्यन्ते भृत्याः, प्रभु निदेशपालनात्परतस्तु तद्विलोकनं सत्यमेव प्रमोदातिशयमावहेदिति कथनं विनापि प्रमितमित्याशयः॥ ६॥

प्रतीहारी—जो आज्ञा (जाती है)

[विजयसेन तथा कञ्चुकीका प्रवेश]

विजयसेन—अजी कञ्चुकी, आज स्वामिपादके दर्शन होंगे, इसलिये मुझे वस्तुतः अपूर्व सुखातिशयका अनुभव हो रहा है।

कञ्चुकी—विजयसेन, आपका कथन सत्य है। देखिये—

बैठे हुए सानन्द रहनेवाले भृत्य भी स्वामीको देखकर आनन्द विभोर हो जाते हैं, फिर उन भृत्योंके आनन्दके लिये क्या कहना है जो शत्रुसैन्यके विनाश द्वारा अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करके लौटे हों॥ ६॥

दोनों—(समीप आकर) जय हो जय हो महाराजकी।

[राजा दोनोंका आलिङ्गन करता है]

कञ्चुकी—महाराज, यह भाग्यकी महत्ता है, आपका अभ्युदय हो रहा है। अभागे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हत्वा कलिङ्गहतकं ह्यस्मत्स्वामी निवेशितो राज्ये ।
देवस्य समादेशाद्रिपुजयिना विजयसेनेन ॥ ७॥

वासवदत्ता—अयि भगवति, अभिजानास्येतं कञ्चुकिनम् ? (अइ भअवइ, अहिजाणासि एदं कञ्चुइणं ?)

साङ्कृत्यायनी—कथं नाभिजानामि । ननु स एषः, यस्य हस्ते मातृष्वसा ते पत्रिकामनुप्रेषितवती ।

राजा—साधु । विजयसेनेन महाव्यापारोऽनुष्ठितः ।

(विजयसेनः पादयोः पतति)

राजा—देवि, दिष्ट्या वर्धसे । प्रतिष्ठितो राज्ये दृढवर्मा ।

वासवदत्ता—(सहर्षम्) अनुगृहीतास्मि । (अणुग्गहिदह्मि)

विदूषकः—ईदृशेऽभ्युदयेऽस्मिन्राजकुल एतत्करणीयम् । (राजानं निर्दिश्य वीणावादनं नाटयन्) गुरुपूजा । (आत्मनो यज्ञोपवीतं दर्शयन्) ब्राह्मणस्य सत्कारः । (आरण्यकां सूचयन्) सर्वबन्धनमोक्ष इति । (ईरिसे अब्भुदए अस्सिं राअउले एदं करणिज्जं । गुरुपूआ । ब्रह्मणस्स सक्कारो । सव्वबन्धणमोक्खोत्ति)

हत्वाकलिङ्गेति० देवस्य भवतः समादेशात् नियोगात् रिपुजयिना शत्रुञ्जयेन विजयसेनेन कलिङ्गहतकं हत्वा अस्मत्स्वामी दृढवर्मा राज्ये निवेशितः प्रतिष्ठापितः खलु ॥

अभिजानासि-परिचिनोषि ।

मातृष्वसा-मातुर्भगिनी ।

कलिङ्गको मारकर हमारे स्वामी दृढ़वर्मा राज्यासन पर बैठा दिये गये, शत्रुविजयी विजयसेनने आपकी आज्ञासे यह कार्यकर लिया है ॥ ७ ॥

वासवदत्ता—भगवति, आप इस कञ्चुकीको पहचान रही हैं ?

साङ्कृत्यायनी—क्यों न पहचानूंगी । वही तो यह है जिसके हाथों तुम्हारी मौसीने चिट्ठी भेजी थी ।

राजा—ठीक है, विजयसेनने बड़ा भारी कार्य कर दिखाया ।

(विजयसेन चरणों पर झुकता है)

राजा—देवि, सौभाग्यकी बात है, दृढ़वर्मा पुनः राज्यासनासीन हो गये ।

वासवदत्ता—(सहर्ष) यह आपकी कृपा है ।

विदूषक—ऐसे अभ्युदय के समयमें राजकुलमें यह सब होना चाहिये—गुरुपूजा, ब्राह्मणोंके सत्कार, सभीको बन्धनसे मुक्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा—(अपवार्य छोटिकां ददत्) साधु वयस्य साधु ।

विदूषकः—भवति, कथं त्वं न किमप्यत्र समादिशसि । (होदि, कदं तुमं ण किं वि एत्थ समादिससि)

वासवदत्ता—(साङ्कृत्यायनीमवलोक्य सस्मितम्) मोचिता खलु हताशेनारण्यका । (मोइदा क्खु हदासेण आरण्णआ)

साङ्कृत्यायनी—किं वा तपस्विन्यानया बद्धया ।

वासवदत्ता—यथा भगवत्यै रोचते । (जह भअवदीए रोअदि)

साङ्कृत्यायनी—यद्येवम् , अहमेव गत्वा तां मोचयिष्यामि ।

(इति निष्क्रान्ता)

कञ्चुकी—इदमपरं संदिष्टं महाराजेन दृढवर्मणा—'त्वत्प्रसादात्सर्वमेव यथाभिलषितं संपन्नम् । तदेते प्राणास्त्वदीयाः । यथेष्टमिमान्विनियोक्तुं त्वमेव प्रमाणम् ।' (राजा सलज्जमधोमुखस्तिष्ठति)

विजयसेनः—देव, न शक्यमेव देवं प्रति प्रीतिविशेषं दृढवर्मणः कथयितुम् ।

हताशेन-अभाग्येन । दुष्टेनेत्याशयः ।

तपस्विन्या-निरपराधया वराक्या ।

राजा—(छिपाकर चिकोटी काटकर) ठीक है, मित्र, ठीक है ।

विदूषक—महारानी, क्यों आप इस प्रसङ्ग में कुछ नहीं बोल रही हैं ?

वासवदत्ता—(साङ्कृत्यायनीकी ओर देखकर, मुस्कुराती हुई) इस मुएने आरण्यका को मुक्त करा दिया ।

साङ्कृत्यायनी—उस तपस्विनीको बन्धनमें रखकर क्या फायदा उठाना है ।

वासवदत्ता—जैसी आपकी इच्छा ।

साङ्कृत्यायनी—यदि ऐसी बात है तो मैं ही जाकर उसे बन्धनमुक्त करूंगी ।

[जाती है]

कन्चुकी—महाराज दृढ़वर्माने इतना और सन्देश कहा है—आपकी कृपासे सब मनोरथ पूर्ण हो गये । अब यह हमारे प्राण आपके हैं, आप इन प्राणोंका यथेच्छ विनियोग करनेमें स्वतन्त्र हैं । [राजा लज्जासे शिर झुकाता है]

विजयसेन—महाराज, आपके प्रति दृढवर्माकी कितनी प्रीति है यह कहा नहीं जा सकता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कञ्चुकी—'यद्यपि तुभ्यं प्रतिपादितायाः प्रियदर्शिकाया अस्मद्दुहितुः परिभ्रंशान्न मे संबन्धो जात इति दुःखमासीत्, तथापि वासवदत्तायाः परिणेत्रापि त्वया तदपनीतमेव।'

वासवदत्ता—(सास्रम्) आर्य कञ्चुकिन्, कथं मे भगिनी परिभ्रष्टा। (अज्ज कञ्चुई, कहं मे भइणी परिब्भट्टा)

कञ्चुकी—राजपुत्रि, तस्मिन्कलिङ्गहतकावस्कन्दे विद्रुतेष्वितस्ततोऽन्तःपुरजनेषु दिष्ट्या पृष्टाम् 'इदानीं न युक्तमत्र स्थातुम्' इति तामहं गृहीत्वा वत्सराजान्तिकं प्रस्थितः। ततः संचिन्त्य तां विन्ध्यकेतोर्हस्ते निक्षिप्य निर्गतोऽस्मि। यावत्प्रतीपमागच्छामि तावत्कैरपि तत्स्थानं सह विन्ध्यकेतुना स्मर्तव्यतां नीतम्।

प्रीतिविशेषम्–प्रेमातिशयम्।

प्रतिपादितायाः–दत्तायाः। अस्मदुहितुः–अस्मत्कन्यायाः। परिभ्रंशात्–नाशात्। सम्बन्धः–यौनसम्बन्धः।

परिणेत्रा–वोढ्रा। तत्–दुःखम्। अपनीतम्–दूरीकृतम्।

परिभ्रष्टा–नष्टा।

कलिङ्गहतकावस्कन्दे–नीचकलिङ्गकृताक्रमणे। विद्रुतेषु–पलायितेषु। अन्तःपुरजनेषु–अन्तःपुरवर्त्तिवनितालोकेषु। दिष्टया–भाग्येन। ताम्–दृढवर्मसुताम् प्रियदर्शिकाम्। वत्सराजान्तिकम्–वत्सराजसमीपम्। निर्गतः–चलितः। प्रतीपमागाच्छामि–प्रतिनिवृत्तोऽस्मि। स्मर्त्तव्यतां नीतम्–समापितम् कथाशेषीकृतम्।

कञ्चुकी—यद्यपि हमारी पुत्री प्रियदर्शिका आपको समर्पित की जा चुकी थी, परन्तु उसके खो जानेके कारण वह सम्बन्ध हो नहीं सका, इसका दुःख था, फिर भी वासवदत्ताके पति होनेके कारण आपने उसे भी दूर कर दिया है।

वासवदत्ता—(रोती हुई) आर्य कञ्चुकी, मेरी बहन कैसे खो गई ?

कञ्चुकी—राजपुत्रि, अभागे कलिङ्गने जब आक्रमण किया तब अन्तःपुरके लोग इधर उधर भाग चले, भाग्यवश आरण्यकाको हमने देखा—'उस समय यहाँ रहना ठीक नहीं है' ऐसा कहकर उसे साथ लेकर मैं वत्सराजके पास चला। अनन्तर सोच विचार कर उसे विन्ध्यकेतुके पास रख दिया और मैं लौट गया। पीछे जब फिर वहाँ वापस आया, तब तक किसीने उस स्थानको भी विन्ध्यकेतुके साथ समाप्त कर दिया था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजा—(सस्मितम्) विजयसेन, किं कथयसि ?

कञ्चुकी—तत्र चान्विष्यता मया न प्राप्ता। तदाप्रभृति नाद्यापि विज्ञायते क्व वर्तत इति।

(प्रविश्य मनोरमा)

मनोरमा—भट्टिनि, प्राणसंशये वर्तते सा तपस्विनी। (भट्टिणि, पाणसंसए वट्टइ सा तवस्सिणी।

वासवदत्ता—(सास्रम्) किं पुनस्त्वं प्रियदर्शनावृत्तान्तं जानासि ? (किं उण तुमं पिअदंसणाउत्तन्तं जाणासि)

मनोरमा—न खल्वहं प्रियदर्शनावृत्तान्तं जानामि। एषा खल्वारण्यका कल्पाव्यपदेशेनानीतं विषं पीत्वा प्राणसंशये वर्तत इत्येवं मया निवेदितम्। तत्परित्रायतां भट्टिनी। (ण हु अहं पिअदंसणाउत्तन्तं जाणामि। एसा क्खु आरण्णआ कल्लव्ववदेसेण आणीदं विसं पाइअ पाणसंसए वट्ठदित्ति एव्वं मए णिवेदिदं। ता परित्ताअदु भट्टिणी) (रुदती पादयोः पतति)

वासवदत्ता—(स्वगतम्) हा धिक् हा धिक्। प्रियदर्शनादुःखमपि

अन्विष्यता-गवेषयता। न प्राप्ता-नासादिता, अस्य प्रियदर्शिकेति शेषः।
प्राणसंशये-जीवितमरणयोरन्तराले।
कल्पव्यपदेशेन-मदिराव्याजेन। आनीतम्-उपहृतम्। परित्रायताम्-रक्षतु, प्रियदर्शिकामिति कर्मयोजनीयम्।

राजा—(हंसकर) विजयसेन, क्या कहते हो ?

कञ्चुकी—वहाँ बहुत खोज करने पर भी वह नहीं मिली। उस समय से अब तक पता नहीं चला है कि वह कहाँ पर है।

[मनोरमाका प्रवेश]

मनोरमा—महारानी, आरण्यका बेचारी मरने मरने पर है।

वासवदत्ता—(रोकर) क्या तुम प्रियदर्शनाकी खबर रखती है ?

मनोरमा—मैं प्रियदर्शनाकी कोई खबर नहीं रखती हूं। यह बेचारी आरण्यका मदिराके व्याजसे दिये गये विषको पीकर मरने मरने पर है इतना ही मैंने निवेदन किया है, महारानी उसकी रक्षा करें।

वासवदत्ता—(स्वगत) हाय, धिक्कार है, हाय, धिक्कार है। आरण्यकाके इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेऽन्तरितमारण्यकावृत्तान्तेन। अतिदुर्जनः खलु लोकः। कदाचिन्मामन्यथा संभावयिष्यति। तदेतदत्र युक्तम्। (प्रकाशं ससंभ्रमम्) मनोरमे, लघ्विहैवानय ताम्। नागलोकाद्गृहीतविषविद्य आर्यपुत्रोऽत्र कुशलः। (हद्धि हद्धि! पिअदंसणादुक्खं वि मे अन्तरिदं आरण्णआउत्तन्तेण। अदिदुज्जणो क्खु लोओ। कदाइ मं अण्णहा सम्भावइस्सदि। ता एदं एत्थ जुत्तं। मणोरमे, लहु इह एव्व आणेहि तं। णाअलोआदो गहिदविसविज्जो अज्जउत्तो एत्थ कुसलो)

[निष्क्रान्ता मनोरमा]

(ततः प्रविशति मनोरमया धृता सविषवेगमात्मानं नाटयन्त्यारण्यका)

आरण्यका—हला मनोरमे, कस्मादिदानीं मामन्धकारं प्रवेशयसि। (हला मणोरमे, कीस दाणिं मं अन्धआरं पवेसेसि)

मनोरमा—(सविषादम्) हा धिक् हा धिक्। दृष्टिरप्यस्याः संक्रान्ता विषेणैव। (वासवदत्तां दृष्ट्वा) भट्टिनि, लघु परित्रायस्व लघु परित्रायस्व।

अन्तरितम्–आवृतम्। आरण्यकावृत्तान्तमाकर्ण्य स्वभगिन्याः परिभ्रंश कथामपि न स्मरामीति तात्पर्यम्। अतिदुर्जनः–अतिदुष्टः। अन्यथा सम्भावयिष्यति–देव्यैव मदिराव्याजेन विषं पाययित्वा प्रियदर्शिका व्यापादितेति कलङ्कमुत्प्रेक्षिष्यत इत्याशयः। लघु–शीघ्रम्। नागलोकात्–पातालात्। गृहीतविषविद्यः–विषवैद्यकमभ्यस्य। अत्र–विषचिकित्सायाम्। कुशलः–निपुणः।

माम् अन्धकारं प्रवेशयसि–मामन्धे तमसि नयसि। विषवेगे मूर्च्छति सति समस्तमेव जगदन्धकाराच्छन्नं प्रतीयतेऽत इयमुक्तिः।

लघुपरित्रायस्व–शीघ्रं रक्षांकुरु। गुरूभूतम्–व्याप्तम्।

वृत्तान्तने हमारी प्रियदर्शनाके वृत्तान्तको छिपा दिया। लोक बड़ा दुर्जन होता है, कदाचित् मेरे विषयमें ही कुछ तर्क न करने लगे। इसलिये यहाँ यही ठीक होगा। (प्रकाश कर घबड़ाकर) मनोरमे, उसे जल्दीसे यहाँ ले आ। महाराज नागलोकसे विषचिकित्सा सीख आये हैं, वह इस विद्यामें निपुण हैं।

(मनोरमा जाती है)

[मनोरमा द्वारा लाई गई तथा विषवेगका अभिनय करती हुई आरण्यकाका प्रवेश]

आरण्यका—सखि मनोरमे, इस समय तुम मुझे अन्धेरेमें क्यों ले जा रही है?

मनोरमा—(खेदके साथ) हाय हाय, इसकी आँखें भी विषसे ही व्याप्त हो रही हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरूभूतमस्या विषम्। (हद्धि हद्धि। दिट्ठि वि से संकन्ता विसेसेण्व। भट्ठिणि, लहु परित्ताएहि। लहु परित्ताएहि। गुरूईभूदं से विसं)

वासवदत्ता—(ससंभ्रमं राजानं हस्ते गृहीत्वा) आर्यपुत्र, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। लघु विपद्यते खल्वेषा तपस्विनी। (अज्जउत्त, उट्ठेहि उट्ठेहि। लहु विवज्जइ क्खु एसा तवस्सिणी)

[सर्वे पश्यन्ति]

कञ्चुकी—(विलोक्य) सुसदृशी खल्वियं मम राजपुत्र्याः प्रियदर्शनायाः। (वासवदत्तां निर्दिश्य) राजपुत्रि, कुत इयं कन्यका।

वासवदत्ता—आर्य, विन्ध्यकेतोर्दुहिता। तं व्यापाद्य विजयसेनेनानीता। (अज्ज, विञ्झकेउणो दुहिदा। तं वावादिअ विअअसेणेण आणीदा)

कञ्चुकी—कुतस्तस्य दुहिता। सैवेयं मम राजपुत्री। हा हतोऽस्मि, मन्दभाग्यः। राजपुत्रि, इयं सा प्रियदर्शिका भगिनी ते। (इति निपत्य भूमावुत्थाय)

लघुविपद्यते-शीघ्रमेव म्रियते। तपस्विनी-वराकी।
सुसदृशी-अतिसमाना। कुत इयं कन्यका-इयं बालिका क्व लब्धा?
तम्-विन्ध्यकेतुम्। व्यापाद्य-हत्वा।
कुतस्तस्य दुहिता-विन्ध्यकेतोः कापि कन्या नास्तीत्याशयः।

(वासवदत्ताको देखकर) महारानी, रक्षा करें, शीघ्र रक्षा करें, इसका विष बहुत चढ़ गया है।

वासवदत्ता—(घबड़ाहटके साथ, राजाका हाथ पकड़कर) महाराज, उठिये। यह बेचारी बहुत शीघ्र मरने जा रही है।

(सभी देखते हैं)

कञ्चुकी—(देख कर) यह तो हमारी राजकुमारी प्रियदर्शनासे बहुत मिलती जुलती है। (वासवदत्ताकी ओर संकेत करके) राजपुत्रि, यह कन्या कहाँ से मिली है?

वासवदत्ता—आर्य, यह विन्ध्यकेतुकी पुत्री है, इसे विजयसेनने विन्ध्यकेतुको मारकर लाया था।

कञ्चुकी—विन्ध्यकेतुकी लड़की कहाँ से आई। यह वही हमारी राजपुत्री प्रियदर्शना है। हाय, मैं अभागा मारा गया। राजपुत्रि, यह वही तुम्हारी बहन प्रियदर्शिका है।

(पृथ्वी पर गिरकर—फिर उठकर)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, परित्रायस्व परित्रायस्व । मम भगिनी विपद्यते । (अज्जउत्त, परित्ताएहि परित्ताएहि । मम भइणी विवज्जइ)

राजा—समाश्वसिहि समाश्वसिहि । पश्यामस्तावत् । (स्वगतम्) कष्टं भोः कष्टम् ।

सञ्जातसान्द्रमकरन्दरसां क्रमेण
पातुं गतश्च कलिकां कमलस्य भृङ्गः ।
दग्धा निपत्य सहसैव हिमेन चैषा
वामे विधौ न हि फलन्त्यभिवाञ्छितानि ॥ ८ ॥

(प्रकाशम्) मनोरमे, पृच्छ्यतां तावत्किं ते बोध इति ।

मनोरमा— सखि, किं ते बोधः । (सास्रं पुनश्चालयन्ती) सखि, ननु भणामि किं ते बोध इति । सहि, किं दे बोधो सहि णं भणामि किं दे बोधोत्ति)

प्रियदर्शिका—(अविस्पष्टम्) नन्वेतयापि न मया महाराजो दृष्टः ।

सञ्जातेति० भृङ्गः भ्रमरः सञ्जातसान्द्रमकरन्दरसाम् प्रकटीभूतघनमकरन्दाम् कमलस्य कलिकाम् मुकुलम् पातुम् आस्वादयितुम् गतः उपसन्नः च । (अस्यामेव स्थितौ) सहसा हठात् एव हिमेन प्रालेयपातेन निपत्य समुपस्थाय एषा कमलकलिका दग्धा । प्रालेयपातेन कमलदाहः प्रसिद्धः । अत्रार्थेऽर्थान्तरन्यासमाह—विधौ भागधेये वामे वक्रे अभिवाञ्छितानि मनोरथा नहि फलन्ति नैव पूर्यन्ते । एतां प्राप्तयौवनामवाप्य मनोभिलाषान् पूरयितुं चेष्टमान एव मयि विषपानेनेयं विपन्नेति राज्ञो मनोगताभिप्रायध्वनिः ॥ ८ ॥

बोधः-इन्द्रियजन्यं ज्ञानम् ।

एतया-इमां दशां गतया, एवं विपद्यमानया, राजानुरागतरोरीदृशं कटुफल-

---

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, बचाइये, बचाइये यह हमारी बहन मरी जा रही है ।

राजा—धीरज धरो, धीरज धरो । देखता हूँ तब तक । (स्वगत) कष्ट है कष्ट । क्रमशः सान्द्र-घनमकरन्द रससे युक्त कमलकलिकाके रसके पानकी इच्छासे भृङ्ग कमलकलीके पास पहुँचा, सहसा पालेसे कमलकलिका दग्ध हो गई, ठीक ही है, भाग्य विपरीत रहने पर मनोरथ सिद्ध नहीं हो पाते हैं ॥ ८ ॥

(प्रकाश) मनोरमे, पूछो तो इसे होश हो रहा है ?

मनोरमा—सखि, क्या तुमको होश है ? (फिर रोकर और हिला डुलाकर) सखि, पूछ रही हूँ कि तुमको होश है ?

प्रियदर्शिका—(अस्पष्ट रूपमें) हाय, इस स्थितिमें भी मुझे महाराजके दर्शन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(णं एदाए वि ण मए महाराओ दिट्ठो) (इत्यर्धोक्ते भूमौ पतति)

राजा—(सास्रं स्वगतम्)

एषा मीलयतीदमीक्षणयुगं जाता ममान्धा दिशः
कण्ठोऽस्याः प्रतिरुध्यते मम गिरो निर्यान्ति कृच्छ्रादिमाः।
एतस्याः श्वसितं हृतं मम तनुर्निश्चेष्टतामागता
मन्येऽस्या विषवेग एव हि परं सर्वं तु दुःखं मम ॥ ९॥

वासवदत्ता—(सास्रम्) प्रियदर्शने, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। पश्यैष महाराजस्तिष्ठति। कथं वेदनाप्यस्या नष्टा। किमिदानीं मयापराद्धमजानत्या, येन कुपिता नालपसि। तत्प्रसीद प्रसीद। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। न खलु पुन-

---

मनुभवन्त्या अपीति भावः।

एषेति० एषा प्रियदर्शिका इदम् ईक्षणयुगम् मीलयति पिदधाति, मम दिशः अन्धाः तमोव्याप्ताः जाताः। (विषवेगेन) अस्याः प्रियदर्शिकायाः कण्ठः गलदेशः प्रतिरुध्यते आव्रियते मम इमाः गिरः कृच्छ्रात् कष्टात् निर्यान्ति बहिर्भवन्ति। एतस्याः श्वसितम् प्राणचिह्नभूतो नासावायुः हृतम् विषप्रभावेण नीतम् मम तनुः देहः निश्चेष्टताम् अव्यापारभावम् आगता प्राप्ता, तत् मन्ये, अस्याः (केवलम्) विषवेग एव, दुःखं तु सर्वं मम। लोके यस्य नेत्रमीलनं तस्यैव दिशोऽन्धाः परमत्र विपरीतम्, एवमेव लोके यस्य कण्ठरोधस्तस्यैव वाङ्निर्गमे कष्टमत्र तदन्यथा, इत्थमेव च यस्य श्वासनिरोधस्तत्तनोरेवाचेष्टता, परमत्र तच्छ्वासापहारे मम तनोरक्रियतेति सर्वं दुःखं तु ममैव, प्रियदर्शिका तु केवलं विषेण विह्वलीभावमासाद्य स्थितेति तात्पर्यम्। कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतारूपासङ्गतिरलङ्कारः। स्पष्टमन्यत् ॥९॥

वेदना–चैतन्यशक्तिः। अपराद्धम्–अपराधः कृतः। आलपसि–वाचं वितरसि।

नहीं हुए।

राजा—(रोकर, स्वगत) यह आँखें मूँद रही है और मेरी दिशाएँ अन्धकार पूर्ण हो रही हैं, इसका गला रुध रहा है और मेरी आवाज कष्टसे निकल रही है। इसका श्वास बन्द हो रहा है और मेरी देह निश्चेष्ट होती जा रही है, मालूम होता है—इसको तो केवल विषका वेग है शेष सभी दुःख तो मुझको ही है ॥ ९ ॥

वासवदत्ता—(रोकर) प्रियदर्शने, उठो उठो। देखो, यह महाराज खड़े हैं। इसकी तो संज्ञा भी नष्ट हो चुकी है। अनजानमें भी मैंने क्या अपराध किया है कि तुम क्रोधसे बोल नहीं रही है। प्रसन्नता प्रकट करो, मान जाओ। और उठो, उठो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रपरात्स्यामि। (ऊर्ध्वमवलोक्य) हा दैवहतक, किमिदानीं मयापकृतम्, येनैतदवस्थां गता मे भगिन्यादर्शिता। (प्रियदर्शिकाया उपरि पतति) (पिअदंसणे, उट्ठेहि उट्ठेहि। पेक्ख एसो महाराओ चिट्ठइ। कहं वेअणा वि से णट्ठा। किं दाणिं मए अवरज्झं अआणन्तीए, जेण कुविदा णालवसि। ता पसीद पसीद। उट्ठेहि उट्ठेहि। ण हु पुणो अवरज्झिस्सं। हा देव्वहदअ, किं दाणिं मए अवकिदं, जेण एदावत्थं गदा मे भइणी आदंसिदा)

विदूषकः—भो वयस्य, कथं त्वं मूढ इव तिष्ठसि। नैष विषादस्य कालः। विषमा खलु गतिर्विषस्य। तद्दर्शयात्मनो विद्याप्रभावम्। (भो वअस्स, कहं तुमं मूढो विअ चिट्ठसि। ण एसो विसादस्स कालो। विसमा क्खु गई विसस्स। ता दंसेहि अप्पणो विज्जापहावं)

राजा—सत्यमेवैतत्। मूढ एवाहमेतावतीं वेलाम्। तदहमेनां जीवयामि। (प्रियदर्शिकामालोक्य) सलिलं सलिलम्।

विदूषकः—(निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) भोः, एतत्सलिलम्। (भो, एदं सलिलम्)

[राजोपसृत्य प्रियदर्शनाया उपरि हस्तं निधाय मन्त्रस्मरणं नाटयति]

[प्रियदर्शिका शनैरुत्तिष्ठति]

विषमा-भयङ्करी। विद्याप्रभावम्-विषविद्यासामर्थ्यम्।

एतावतीं वेलाम्-इयन्तं कालं यावत्।

फिर कभी मैं अपराध नहीं करूंगी। (ऊपर देखकर) हा दुर्भाग्य मैंने तेरा क्या अपकार किया था कि तुमने इस अवस्थामें पड़ी बहनके दर्शन कराये।

विदूषक—अजी वयस्य, तुम क्यों मूढ़की तरह खड़े हो? यह विषाद करनेका समय नहीं है। विषकी गति अतिभयानक हुआ करती है। तुम अपनी विद्याका प्रभाव दिखलाओ।

राजा—यह तो ठीक ही कह रहे हो। मैं अब तक मूढ ही बना रहा। अब मैं इसे जिला रहा हूँ! (प्रियदर्शिकाको देखकर, सानन्द) पानी, पानी।

विदूषक—(बाहर जाकर, फिर लौटकर) अजी, यह पानी लो?

[राजा समीप जाकर प्रियदर्शनाके ऊपर हाथ रखकर मन्त्र याद करनेका अभिनय करता है]

[प्रियदर्शिका धीरे धीरे उठती है]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, दिष्ट्या प्रत्युज्जीविता मे भगिनी। (अज्जउत्त, दिट्ठिआ पच्चुज्जीविदा मे भइणी)

विजयसेन—अहो देवस्य विद्याप्रभावः।

कञ्चुकी—अहो सर्वत्राप्रतिहता नरेन्द्रता देवस्य।

प्रियदर्शिका—(शनैरुत्थायोपविश्य च जृम्भिकां नाटयन्ती सविषादमविस्पष्टम्) मनोरमे, चिरं खलु सुप्तास्मि। (मणोरमे, चिरं खु सुत्तह्मि)

विदूषकः—भो वयस्य, निर्व्यूढं ते वैद्यत्वम्। (भो वअस्स, णिव्वूढं दे वेज्जत्तणं)

[प्रियदर्शिका साभिलाषं राजानं निरूप्य सलज्जं किञ्चिदधोमुखी तिष्ठति]

वासवदत्ता—(सहर्षम्) आर्यपुत्र, किमिदानीमप्येषान्यथैव करोति। (अज्जउत्त, किं दाणिं वि एसा अण्णहेव्व करेदि)

राजा—(सस्मितम्)

स्वभावस्था दृष्टिर्न भवति गिरो नातिविशदा-
स्तनुः सीदत्येषा प्रकटपुलकस्वेदकणिका।

प्रत्युज्जीविता-पुनर्जीवितमायाता।

अप्रतिहता-अबाधप्रसरा। नरेन्द्रता-राजभावः, विषवैद्यता च। 'नरेन्द्रो वार्तिके राज्ञि विषवैद्ये च कथ्यते'॥

निर्व्यूढम्-फलवत्।

अन्यथैव करोति-स्वाभाविकीं स्थितिं नोपयातीति भावः।

स्वभावस्थेति० यथा यतः दृष्टिः वीक्षणप्रकारः स्वभावस्था प्रकृतिं गता न भवति,

---

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, यह सौभाग्यकी वात है कि हमारी वहन पुनर्जीवित हो उठी।

विजयसेन—महाराजकी मन्त्रविद्या का प्रभाव अद्भुत है।

कञ्चुकी—महाराजकी नरेन्द्रता सर्वत्र अद्भुत तथा अप्रतिहत है।

प्रियदर्शिका—(धीरे धीरे उठ वैठती है, जंमाई लेती है और विषादयुक्त अस्पष्ट स्वरमें वोलती है) मनोरमे, मैं वड़ी देर तक सोती रही हूँ।

विदूषक—अजी वयस्य, तुम्हारा वैद्यत्व कारगर हो गया।

[प्रियदर्शिका सस्नेह राजाकी ओर देखकर लज्जासे शिर नीचा कर लेती है]

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, यह क्यों अभी भी दूसरी ही तरह कर रही है ?

राजा—(मुस्कुराकर) इसकी आंखें स्वाभाविक रूप नहीं ग्रहण कर सकी हैं, वाणी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा चायं कम्पः स्तनभरपरिक्लेशजनन-
स्तथा नाद्याप्यस्या नियतमखिलं शाम्यति विषम् ॥१०॥

कञ्चुकी—(प्रियदर्शिकां निर्दिश्य) राजपुत्रि, एष ते पितुराज्ञाकरः।

(इति पादयोः पतति)

प्रियदर्शिका—(विलोक्य) कथं कञ्चुक्यार्यविनयवसुः। (सास्रम्) हा तात, हा मातः। (कहं कञ्चुई अज्जविणअवसू। हा ताद, हा अज्जूए)

कञ्चुकी—राजपुत्रि, अलं रुदितेन। कुशलिनौ ते पितरौ। वत्सराजप्रभावात्पुनस्तदवस्थमेव राज्यम्।

गिरः वाचः अतिविशदाः सुस्पष्टान्, प्रकटपुलकस्वेदकणिका स्फुटरोमाञ्चस्वेदकणशालिनी एषा तनुः देहयष्टिः सीदति श्रान्तिमिवानुभवति, स्तनभरपरिक्लेशजननः कुचभारकम्पकरः अयं कम्पः वेपथुः, तथा ततः (अनुमीयते) अद्यापि सम्प्रत्यपि नियतम् अवश्यम् अस्याः अखिलम् सम्पूर्णभावेन न शाम्यति समाप्तिं गच्छति। यद्यपि अस्या विषवेगोंऽशतो ह्रासं गतस्तथापि दृष्टिः स्वाभाविकीं दशां नोपयातः, स्फुटावाचो न निर्गच्छन्ति, शरीरं रोमाञ्चति, स्वेदकणिकाः प्रकटीभवन्ति, स्तनभरः कम्पते, तदेभिर्लिङ्गैरनुमीयते यदस्या विषं न सर्वांशतः समाप्तिं गत इत्याशयः। सात्त्विकभावोदयकृता एवामी विकारा राज्ञा विषविकृतिशेषतयोत्प्रेक्षिता इति बोध्यम् ॥ १० ॥

आज्ञाकरः—दासजनः।

तदवस्थम्—प्राचीनां स्थितिं प्राप्तम्।

खूब स्पष्ट नहीं निकल रही है, स्फुट रोमाञ्च तथा (सात्त्विकभावोत्थया विषकृत) स्वेदसे युक्त शरीर थकीसी है, और स्तनभारको कष्ट पहुँचानेवाला कम्प भी जारी है, इन बातोंसे पता चलता है कि निश्चय रूपसे इसका विषवेग अभी सम्पूर्ण रूपमें शान्त नहीं हो पाया है॥

कञ्चुकी—(प्रियदर्शिका की ओर उद्देश्य करके) राजपुत्रि, यह मैं तुम्हारे पिताका दास हूँ (चरणों पर गिरता है)

प्रियदर्शिका—(देखकर) क्या आप पूज्य कञ्चुकी विनयवसु है ? (रोकर) हा पिताजी, हा अम्माजी !

कञ्चुकि—राजपुत्रि, रोनेकी जरूरत नहीं है, तुम्हारे माता पिता सकुशल हैं, वत्सराजके प्रभावसे राज्य भी फिर साविक जैसा हो गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वासवदत्ता—(सास्रम्) एह्यलीकशीले। इदानीमपि ते भगिनीस्नेहं दर्शय। (कण्ठे गृहीत्वा) इदानीं समाश्वस्तास्मि। (एहि अलिअसीले। दाणिं वि दे भइणिआसिणेहं दंसेहि। दाणिं समस्सत्तम्हि)

विदूषकः—भवति, त्वं भगिनीं गृहीत्वा कण्ठ एवं परितुष्टासि। वैद्यस्य पारतोषिकं विस्मृतम्। (होदि, तुमं भइणिं गेह्णिअ कण्ठे एव्वं परितुट्ठासि। वैदिअस्स पारिदोसिअं विसुमरिदं)

वासवदत्ता—वसन्तक, न विस्मृतम्। (वसन्तअ, ण विसुमरिदं)

विदूषकः—(राजानं निर्दिश्य सस्मितम्) वैद्य, प्रसारय हस्तम्। भगिन्या अग्रहस्तं ते पारितोषिकं दापयिष्यामि। (वैदिअ, पसारेहि हत्थं। भइणीए अग्गहत्थं दे पारिदोसिअं दाविस्सं)

[राजा हस्तं प्रसारयति। वासवदत्ता प्रियदर्शिकाहस्तमर्पयति]

राजा—(हस्तमुपसंहृत्य) किमनया। संप्रत्येव कथमपि प्रसादितासि।

वासवदत्ता—कस्त्वमग्रहीतुम्। प्रथममेव तातेनेयं दत्ता। (को तुमं

अलीकशीले–मिथ्यास्वभावे, सर्वमेव मिथ्यात्वेन सम्भावयन्ति, निखिलमेव व्यवहारं मिथ्यात्वेनैव प्रवर्त्तयति।

भगिनीं कण्ठे गृहीत्वा–भगिनीमालिङ्ग्य।

अग्रहस्तम्–हस्ताग्रम्।

प्रसादिताऽसि–प्रसन्नतां गमितासि।

अग्रहीतुम्–ग्रहणात् पराङ्मुखो भवितुम्।

वासवदत्ता—(रोकर) अरी ओ छद्मवेशिनी, अब भी तो बहनसा प्रेम दिखलाओ, अब मैं आश्वस्त हुई।

विदूषक—महारानी, आप तो बहनको गले लगाकर इस तरह प्रसन्न हो रही हैं कि वैद्यकी फीस भी भूल रही हैं।

वासवदत्ता—भूली नहीं हूँ वसन्तक।

विदूषक—(राजाको उद्देश्यकरके, हंसता हुआ) वैद्य, हाथ फैलाओ, बहनका हाथ ही तुमको फीसमें दिलवाऊंगा।

[राजा हाथ फैलाता है, वासवदत्ता प्रियदर्शिकाका हाथ अर्पित करती हैं]

राजा—(हाथ छिपकर) यह क्या होगी? अभी तो तुम्हें किसी तरह प्रसन्न कर सका हूँ।

वासवदत्ता—नहीं ग्रहण करनेवाले तुम कौन होते हो? पहले ही इसके पिताजी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अगेण्हिदुं । पुढमं एव्व तादेण इयं दिण्णा)

विदूषकः—भोः, माननीया खलु देवी । मास्याः प्रतिकूलं कुरु । (भो, माणणीआ क्खु देवी । मा से पडिऊलं करेहि)

[वासवदत्ता राज्ञो हस्तं बलादाकृष्य प्रियदर्शिकामर्पयति]

राजा—(सस्मितम्) देवी प्रभवति । कुतोऽस्माकमन्यथा कर्तुं विभवः ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, अतोऽपि परं किं ते प्रियं क्रियताम् । (अज्ज-उत्त, अदो वि परं किं दे पिअं करीअदु)

राजा—किमतः परं प्रियम् । पश्य ।

निःशेषं दृढवर्मणा पुनरपि स्वं राज्यमध्यासितं
त्वं कोपेन सुदूरमप्यपहृता सद्यः प्रसन्ना मम ।
जीवन्ती प्रियदर्शना च भगिनी भूयस्त्वया संगता
किं तत्स्यादपरं प्रियं प्रियतमे यत्साम्प्रतं प्रार्थ्यते ॥११॥

तथापीदमस्तु ।

प्रभवति–सर्वविधमधिकारं श्रयति ।

निःशेषमिति० दृढवर्मणा पुनरपि निःशेषम् समग्रम् स्वम् आत्मनीनम् राज्यम् अध्यासितम् अधिष्ठितम् , कोपेन सुदूरम् अपहृतात्वम् कोपेन मया वियोजितेत्यर्थः सद्यः तत्क्षणम् मम ममोपरि प्रसन्ना प्रसादं गता । जीवन्ती निरपाया प्रियदर्शना तदाख्या च भगिनी तव स्वसा भूयः त्वया सङ्गता मिलिता, तत् तदा अपरम् एत-त्समुदितभिन्नम् किं प्रियं स्यात् यत् साम्प्रतम् अस्मिन्समये मया प्रार्थ्यते याच्यते । सर्वविधस्यापि प्रियस्योपनतपूर्वतया याचितव्यशेषं नावयामीति भावः ॥ ११ ॥

इसे तुमको प्रदान कर चुके हैं ।

विदूषक—अजी, देवीका आदर करना चाहिये, इसकी मर्जीके खिलाफ न चलो ।

[वासवदत्ता बलपूर्वक राजाका हाथ खींचकर प्रियदर्शिकाको अर्पित कर देती हैं]

राजा—(हंसकर) देवी सर्वथा समर्थ हैं, हमारी क्या शक्ति है की ननु नच करें ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र, इससे भी वढकर आपका क्या प्रिय किया जाय ?

राजा—इससे वड़ा प्रिय क्या होगा ? देखो—

दृढ़वर्माको फिरसे पूराका पूरा राज्य मिल गया, क्रोधसे तुम मुझसे दूर चली गई थीं, वह फिर प्रसन्न हो गई । जीती हुई तुम्हारी वहन प्रियदर्शना तुम्हें फिर मिल गई, प्रियतमे, इससे वढ़कर प्रिय हो ही क्या सकता है जिसकी अब प्रार्थनाकी जाय ? ॥११॥

फिर भी यह हो ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[भरतवाक्यम्]

उर्वीमुद्दामसस्यां जनयतु विसृजन्वासवो वृष्टिमिष्टा-
मिष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्याः ।
आकल्पान्तं च भूयात्स्थिरसमुपचिता संगतिः सज्जनानां
निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुःसहा वज्रलेपाः ॥

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

उर्वीमिति० वासवः इन्द्रः इष्टाम् अभिलषिताम् वृष्टिम् वर्षणम् विसृजन् वितरन् उर्वीम् महीम् उद्दामसस्याम् समधिकसस्यशालिनीम् जनयतु करोतु । यथेष्टवृष्ट्या वासवः पृथ्वीं सस्यसमृद्धां सम्पादयत्वित्यर्थः । विप्रमुख्याः ब्राह्मणपुङ्गवा इष्टैः यज्ञैः त्रैविष्टपानाम् देवानाम् विधिवत् सविधितपर्णं विदधतु कुर्वन्तु । ब्राह्मणमुख्या यथावद्यज्ञैर्देवानर्चन्त्वित्यर्थः । स्थिरसमुपचिता दृढावर्धमाना च सज्जनानाम् सङ्गतिः मैत्री आकल्पानाम् प्रलयकालपर्यन्तम् भूयात् जायताम् । वज्रस्य लेपः प्रसक्तिरिव लेपः प्रसक्तिर्यासां ताहश्यः, दुःसहाः सोढुमशक्याः पिशुनजनगिरः दुष्टजनवाचः निश्शेषम् सर्वथा शान्तिम् यान्तु ॥ १२ ॥

यो जातो धरणीसुरान्वयसरोहंसात्प्रसर्पद्यशो-
ज्योत्स्नाद्योतितदिङ्मुखान्मधुरिपुध्यानैकबद्धाशयात् ।
मिश्राख्यान्मधुसूदनाज्जयमणौ सीमन्तिनीनां मणौ-
तस्य श्रीयुतरामचन्द्रसुधियो व्याख्या प्रसिध्यादियम् ॥ १ ॥

इति मुजफ्फरपुरमण्डलान्तःपाति 'पकडी' ग्रामवासिना रांचीस्थराजकीयसंस्कृत-महाविद्यालये साहित्याध्यापकेन व्याकरणवेदान्तसाहित्याचार्याद्युपाधिप्रसाधिना मैथिलपण्डितश्रीरामचन्द्रमिश्रशर्मणा विरचितायां 'प्रियदर्शिका' नाटिकायाः प्रकाशाभिधायां व्याख्यायां चतुर्थाङ्कप्रकाशः ॥

(भारत वाक्य)

यथेष्ट वृष्टि करके इन्द्र पृथिवीको सस्यसम्पन्न बनावें, श्रेष्ठ ब्राह्मणगण यज्ञोंद्वारा देवगण का विधिवत् सन्तोष उत्पन्न करें, प्रलयकाल तक सज्जनोंकी सङ्गति स्थिर तथा समृद्ध होती रहे, असह्य तथा वज्रलेप समान दुष्टोंकी उक्तियाँ निःशेषरूपमें शान्त हो । [सबका प्रस्थान]

पं० श्रीरामचन्द्र मिश्र विरचित भाषानुवाद समाप्त ।

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नोट्स

(विशेष विवरण)

१ प्रियदर्शिका नाम नाटिका (पृ. १)

प्रियदर्शिका दृढ़वर्माकी कन्या तथा वासवदत्ताकी मौसेरी वहन थी, वही इस उपरूपककी नायिका है, उसीके नामके आधारपर इसका नाम प्रियदर्शिका पड़ा है। लिखा है—

नाटिका सट्टकादीनां नायिकाभिर्विशेषणम्'

अतएव 'रत्नावली' 'कर्पूरमञ्जरी' इत्यादि नाम पाये जाते हैं।

कुछ लोग इस नामका इस प्रकार उपपादन करते हैं—प्रियदर्शिका नामक नायिकाको अधिकृत करके किया गया ग्रन्थ प्रियदर्शिका नामक ग्रन्थ कहा जाता है। प्रियदर्शिका शब्दसे 'तदधिकृत्यकृते ग्रन्थे' इस सूत्रसे अण्प्रत्यय होकर उसका 'लुवाख्यायिकाभ्यो वहुलम्' इस वार्त्तिकसे लुप् हो जाता है। लुव् विधायकवार्त्तिकमें आख्यायिकापद सामान्यतः काव्यपरक माना जाता है। इसीलिये नाटिकामें भी उसकी प्रवृत्ति होती है। 'न लुमताङ्गस्य' इस सूत्रसे प्रत्ययलक्षणका निषेध हो गया अतः वृद्ध्यादि आङ्गकार्य नही हुए। नाटिकारूप विशेष्यके साथ अभेदान्वय होनेसे स्त्रीत्व उपपन्न हुआ। नाटिका उपरूपकभेद है-उसका लक्षण निम्न है:—

'नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका। प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः॥
स्यादन्तःपुरसम्बद्धा सङ्गीतव्यापृताऽथवा। नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा॥
सम्प्रवर्त्तेत नेताऽस्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः। देवीपुनर्भवेत् ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा॥
पदे पदे मानवती तद्वशः सङ्गमो द्वयोः। वृत्तिः स्यात् कौशिकी स्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः॥

२ 'इन्दुकिरणैराह्लादिताक्षी' (पृ. २)

आह्लादिते अक्षिणी यस्याः सा आह्लादिताक्षी।

३ गङ्गां दधाने (पृ. २)

अपने पूर्वजोंके उद्धारार्थ गङ्गाको भगीरथने पृथ्वीपर आनेके लिये अनुकूल किया, परन्तु स्वर्ग से उतरती हुई गङ्गाका भार कौन संभालेगा? यह प्रश्न वड़ा जटिल था। केवल शिवजी ही इस कार्यको कर सकते थे, भगीरथने तपस्या द्वारा शिवजीको भी मनाया। स्वर्गसे गङ्गा उनके मस्तकपर उतरी, उनके जटाजूटसे धारा वही, इसी घटनापर कवियोंने शिवको गङ्गाका प्रेमी और गङ्गाको उनकी प्रेमिकाका रूपक दिया। जिसके आधारपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सापत्नकी वात वर्णित होने लगी। इस कथाका वर्णन वा० रामायण वालकाण्ड के ४३ वें सर्गमें है।

४ कैलासाद्रावुदस्ते (पृ. २)

**'तमिमं शैलमुन्मूलं करोमि तव गोपते। केन प्रभावेण भवो नित्यं क्रीडति राजवत्॥
विज्ञातव्यं न जानीते भयस्थानमुपस्थितम्। एवमुक्त्वा ततो राम भुजान् विक्षिप्य पर्वते॥
तोलयामास तं शैलं सशैलः समकम्पत। चालनात् पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः॥
चचाल पार्वतीचापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम्। ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः॥
पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया। पीडितास्तु ततस्तस्य शैलस्याधोगता भुजाः॥
विस्मिताश्चाभवंस्तत्र सचिवास्तस्य रक्षसः।**

(वा० रामा० उत्तरका० १६ वां सर्ग)

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि रावणने कैलास पर्वतको उठाया था, उसी के आधारपर यह साहित्यिक कल्पना की गई है।

५ कुमारे (पृ. ३)

पौराणिक कथानकके अनुसार कुमार शिवके पुत्र हैं परन्तु उनका जन्म माताके गर्भसे नहीं हुआ किन्तु शिवका वीर्य अग्निमें पड़ा, अग्निने उसे गङ्गामें फेंक दिया, जन्मोपरान्तका कृत्य कृत्तिकाओंने किया इसीलिये उन्हें कार्त्तिकेय भी कहते हैं। कृत्तिकाओंने छः स्तनोंसे दूध पिलाया, अतः उन्हें षड़ानन भी कहते हैं।

६ नान्द्यन्ते (पृ. ३)

भारतीय नाट्याचार्योंके मतानुसार प्रत्येक नाटकमें नाटक आरम्भ करनेके पहले कुछ प्रारम्भिक कार्य करने पड़ते हैं। जैसे पूर्वरङ्ग, सभापूजा आदि। पूर्वरङ्गके प्रत्याहारादि वाईस अङ्ग होते हैं, उन्हींमें नान्दी भी एक अङ्ग है, जो नाटकोंके आदिमें किये जानेवाले मङ्गलाचरणका पर्याय है। इसमें देव, द्विज आदिकी स्तुतिके साथ नाटकीय घटनाओंकी ओर सङ्केत भी किया जाता है। नान्दी आठ या वारह पदोंकी होती है। पद शब्दसे क्या लिया जाता है इस विषयमें यहां मतभेद है। कुछ लोग सुबन्त, तिङन्तको पद कहते हैं, अन्य लोग श्लोकपादको पद मानते हैं, तीसरा मत यह है कि पद्यके अवान्तर वाक्य पद कहे जाते हैं। इस ग्रन्थमें अष्टपदा नान्दी है।

नान्दीपाठके विषयमें नाटकोंमें दो प्रकार देखे जाते हैं, कुछ नाटकोंमें **'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः'** लिखकर मङ्गल श्लोक दिया हुआ मिलता है और कुछ में मङ्गलपद्योंके वाद **'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः'** लिखा पाया जाता है। भासकविके नाटकोंमें प्रथम प्रकारका अनुसरण किया गया है। और अधिकतर अन्य नाटककारोंने दूसरे प्रकारको प्रश्रय दिया है। प्रकृत ग्रन्थमें द्वितीय प्रकार ही समादृत हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नान्दीपाठ कौन करे ? इस विषयमें नाटकोंमें कोई सूचना नहीं दी हुई रहती। भरत-मुनिके मतानुसार सूत्रधारको नान्दीपाठ करना चाहिये । उनका वचन है:—

'सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः'

संस्कृत नाटकोंमें नान्दीपद्यके बाद मिलनेवाले 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' इस लेखका यही अभिप्राय है कि जिस सूत्रधारने नान्दीपाठ किया वही सूत्रधार नान्दीपढ़ लेनेके बाद आस्थापक कर्त्तव्य कथावतार भाषण करता है। यदि उपर्युक्त लेखका यह अर्थ होता कि नान्दीपाठ करनेवाले पात्रके चले जानेपर सूत्रधार प्रवेश करता है तो 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' यही लिखने की प्रथा होती। पूर्वरङ्ग अथवा तदङ्गभूत नान्दीपाठ करके सूत्रधार चला जाय और उसके बाद आस्थापक नामका पात्र प्रवेश करके आगेका कार्य करे यह प्रथा अब लुप्तसी हो गई है। इसी बातको दृष्टिमें रखकर साहित्यदर्पणमें लिखा है:—

'इदानीं पूर्वरङ्गस्य सम्यक् प्रयोगाभावादेक एव सूत्रधारः सर्वं प्रयोजयतीति व्यवहारः'।

रङ्गशालाके व्यवस्थापकको सूत्रधार कहते हैं:—

'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते। सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते'।

७ सूत्रधार (पृ. ३)

सूत्रधार का लक्षण ऊपर आ चुका है, परन्तु वह लक्षण ही है, उसीके गुणोंका वर्णन निम्न है:—

'चतुरातोद्यनिष्णातोऽनेकभाषासमावृतः। नानाभाषणतत्त्वज्ञो नीतिशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥
नानागतिप्रचारज्ञो रसभावविशारदः। नाट्यप्रयोगनिपुणो नानाशिल्पकलान्वितः॥
छन्दोविधानतत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविचक्षणः। तत्तद्गीतानुगलयकलातालावधारणः॥
अवधानप्रयोक्ता च योक्तृणामुपदेशकः। एवं गुणगणोपेतः सूत्रधारोऽभिधीयते'॥

(मातृगुप्ताचार्य)

८ वसन्तोत्सवे (पृ. ३)

यह उत्सव पुराने जमानेमें चैत्रपूर्णिमामें मनाया जाता था, इनदिनों यह फाल्गुन पूर्णिमामें ही मनाया जाने लगा है। यही होली शब्दसे कहा जाता है। जब कि यह उत्सव चैत्रमें मनाया जाता था उस समय इसे मदनमहोत्सव भी कहते थे।

९ बहुमानात् (पृ. ४)

बहुमान शब्दसे आदरातिशय विवक्षित है। इसी तरहका प्रयोग कालिदासने विक्रमोर्वशीयमें किया है—**'प्रणयिषु वा दाक्षिण्यादथवा सद्वस्तुपुरुषबहुमानात्'।**

१० नेपथ्य (पृ. ५)

नेपथ्य शब्दका अर्थ होता है वेशपरिग्रह। नेपथ्यरचनां कृत्वा—**वेशपरिग्रहं कृत्वा।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परन्तु इस शब्दका वेशरचनास्थान-पर्देके पीछेकी जगह-यह भी अर्थ होता है—**'नेपथ्ये कोलाहलः'** इत्यादि । अतएव परिभाषा बन गई है—**'कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते'** ॥

११ प्रस्तावना (पृ. ५.)

प्रस्तावनाका लक्षण आगे परिशिष्टमें देखें। प्रस्तावनाके वहुतसे भेद हैं, उनमें प्रियदर्शिकामें प्रयोगातिशयनामक प्रस्तावना है । उसका लक्षण है:—

'एषोऽयमित्युपक्षेपात् सूत्रधारप्रयोगतः । पात्रप्रवेशो यत्रैष प्रयोगातिशयो मतः' ॥

१२ अप्रतिहतशक्तित्रयस्य (पृ. ६)

शक्तित्रयसे १ प्रभुशक्ति, २ मन्त्रशक्ति, ३ उत्साहशक्ति, ये ही तीन वस्तुएं ली जाती हैं। प्रभुशक्ति-कोशदण्डजतेज, मन्त्रशक्ति-मन्त्रणा, उत्साहशक्ति-शारीरिक सामर्थ्य ।

१३ राजा (पृ. ९)

यहां राजा शब्दसे वत्सराज उदयन लिया जाता है । वह समस्त राज्यभारको मन्त्रियों पर रखकर स्वयं निश्चिन्त होकर बाजे बजाने तथा सङ्गीत एवं अन्यान्य कलाओंमें लगा रहता था । वह धीर ललित नायक माना जाता है । उसका लक्षण है :—

'निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्' ।

१४ दास्याः पुत्रम् (पृ. १०)

दास्याः पुत्रम्-निन्दनीयम् । यहां 'षष्ठ्याः आक्रोशे' इस सूत्रसे षष्ठीका अलुक् होता है, उसीसे निन्दा व्यङ्ग्य होती है । 'दासीपुत्र' कहनेसे निन्दा नहीं, व्यङ्ग्य होती ।

१५ वैतालिकः (पृ. १७)

विविधेन विगतेन वा तालेन गायतीति वैतालिकः । विभिन्न तालोंसे या विना तालके गानेवाला यह इस शब्दका योगार्थ है । परन्तु यह शब्द राजालोगोंके यहां कर्त्तव्य काल बतानेके लिये नियुक्त गायकोंमें रूढ़ हो गया है । राजागण सो रहे हैं, वैतालिक लोग उनकी कीर्त्ति आदिको विषय बनाकर कुछ ऐसा गायेंगे जिससे उन्हें शय्याका त्याग करनेकी प्रेरणा मिले । किरातार्जुनीयमें **'विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः'** इसी प्रतीक पर लिखा गया है । राजा कार्य में व्यस्त हैं, स्नान या भोजनका समय बीता जा रहा है, वैतालिकने कुछ ऐसा गा दिया कि चेतना की लहरसी उठी, सभी सावधान हो गये और राजा भी स्नानादिके लिये उठगये ।

१६ स्वस्तिवायन (पृ. २०)

'वायन' का अर्थ उपहार है, आज भी मिथिलामें इस शब्दका व्यवहार इसी अर्थमें है । स्वस्तिवायन शब्दका अर्थ हुआ मङ्गलार्थ उपहार । महाराष्ट्रमें 'वाण' शब्दसे वायन अर्थ लिया जाता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१७ शब्दापयेत् (पृ. २०)

आपनं प्रापणम् आपः, शब्दस्यापः शब्दापः, शब्दापं करोतीति शब्दापयति ततो विधिलिङि रूपम् । 'शब्दाययेत्' ऐसा भी पाठ है, इस पाठमें उतना द्रविडप्राणायाम नहीं करना पड़ता है, शब्दं करोति शब्दायते, 'शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे' इससे क्यङ् प्रत्यय, उससे णिच्, शेष पूर्ववत् ।

१८ धारागृह (पृ. २०)

धनिकोंके भवनमें सुखस्नानसम्पादनार्थ यन्त्र द्वारा पानीको ऊपर चढ़ाकर सूक्ष्म छिद्रों द्वारा नीचे गिराया जाता है, फव्वारे की तरह गिराया जाता है, उसके लिये जो घर होता है उसे ही 'धारागृह' कहते हैं । कालिदासने भी प्रयोग किया है:—**'नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्'** ।

१९ अनेकेन्द्रियसुखातिशयम् (पृ. २७)

सुखज्ञानकी सामग्री जिन अवयवोंको प्राप्त है वही है इन्द्रियाधिष्ठान। जैसे—नाक, कान, आंख, त्वचा, रसना। इनमें कानको वापीगत पुष्पलुब्ध भ्रमरझंकार सुननेसे, नाकको कमलगन्धाघ्राणसे, त्वचाको शीतल पवनस्पर्शसे और आंखोंको मनोहर छवि दर्शनसे सुखातिशयका अनुभव होता है ।

२० पद्मः (पृ. ३३)

यहां पदगत अप्रयुक्तता दोष है, क्योंकि पद्म शब्द यद्यपि पुंल्लिङ्ग भी है तथापि उसका कवियोंने पुंल्लिङ्गमें प्रयोग नहीं किया है । साहित्यदर्पणमें लिखा है :—**'अप्रयुक्तत्वं तथा प्रसिद्धावपि कविभिरनादृतत्वम्'** । **यथा 'भाति पद्मः' पुंल्लिङ्गः पद्मशब्दोऽप्रयुक्ततादोषमावहतीति भावः,"वा पुंसि पद्मम्' इत्यमरकोशादौ पक्षे पुंल्लिङ्गस्य प्रसिद्धत्वेऽपि कविभिरप्रयुक्तत्वेनानादृतत्वात् तत्प्रयोगस्य प्रयोजनानुसन्धानव्यग्रतया सभ्यानां रसस्य विलम्बेन प्रतीतेः'** इति तट्टीका च ।

२१ 'अतिशिशिरतया सलिलस्योरुस्तम्भ इव' (पृ. ३७)

यह आरण्यकाकी बहानेबाजी है, उसकी आंखें राजाकी आंखोंसे लड़ चुकी हैं, पूर्वानुराग उत्पन्न हो गया है, वह चाहती है कि किसी तरह राजाको कुछ देर तक और देखती रहे, इसीलिये उसने वैसी बात कही है । इस तरह की उक्ति शाकुन्तलमें भी है:—

'दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।
आसीद्विवृत्तवचना च विमोचयन्ती शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्' ॥

२२ साङ्कृत्यायन्या (पृ. ४१)

'साङ्कृत्य' नामक एक गोत्र है, उस वंशमें उत्पन्न एक साधु स्त्री । साङ्कृत्यगोत्रका विशद वर्णन 'राहुलसाङ्कृत्यायन' लिखित 'मेरी जीवनयात्रा'में देखें ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२३ प्रवेशकः (पृ. ४१)

प्रवेशकका लक्षण दशरूपकमें यह है :—

'तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः। प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः'॥

साहित्यदर्पणकारने इसका लक्षण यह कहा है :—

'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः। अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा'॥

इस लक्षणमें विशेषता यह है कि विष्कम्भकसे भेद भी स्वरूपकथनगर्भ वता दिया गया है।

२४ सह्यवेदनम् (पृ. ४३)

सह्या वेदना कष्टं यस्य तत्तथा, सहनेके योग्य। लोगोंसे कह देने पर उनकी सहानुभूतिसे वेदनाकी असह्यता कम हो जाती है, इसी तात्पर्यसे ऐसा कहा है। इसी तरह की-उक्ति कालिदास की भी है :—

'स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति' किसी और कविने भी कहा है :—

'कस्याख्यायव्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयम्'

२५ देवीगुणनिगलनिबद्धे (पृ. ४५)

राजा देवीके गुणरूप श्रृङ्खला-वेडीमें वँधा है यह कव सम्भव है कि वह हमारी चिन्ता करे। इसीके समान लेख मालविकाग्निमित्रमें मिलता है :—

'हला, देवीं चिन्तयित्वा न मे हृदयं विश्वसिति'

२६ कमलिनीबद्धानुरागः (पृ. ४५)

कमलिनीसे स्नेह रखनेवाला भ्रमर भी मालतीको देखकर नवरसकी लालसासे उसे पाये विना क्या धीरज धरता है? इसी स्थितिमें कालिदासने मालविकाग्निमित्रमें इस प्रकार कहवाया है:—

'मुग्धे, भ्रमरसम्बाध इति वसन्तावतारसर्वस्वभूतः किं न चूतप्रसवोऽवतंसनीयः'।

२७ लज्जालुका (पृ. ५०)

लज्जां लाति आदत्ते इति लज्जालुः, सैव लज्जालुका, कृपाल्वादिष्विव मितद्र्वादित्वात् डुः प्रत्ययः। ततः अनुकम्पायां कः, ततः स्त्रियां टापि सम्बुद्धौ रूपमिदम्॥

२८ विजिताप्सरोभिः (पृ. ५३)

जिन्होंने अप्सराओं को अपने रूपसे मातकर दिया है। अप्सरायें स्वर्गकी वेश्या कही जाती हैं, उन्हें इन्द्रकी अधीनतामें रहना होता है और इन्द्र जब किसी तपस्विविशेषके तपसे शङ्कित होते हैं तब उसे तपश्च्युत करनेमें इनका उपयोग करते हैं, पानीसे पैदा होनेके कारण इनको अप्सरस् कहते हैं। वाल्मीकिने समुद्रमन्थनसे इनकी उत्पत्ति मानी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२९ गर्भनाटक

नाटकके अभ्यन्तर जो तन्नाटकीय पात्रों द्वारा अभिनय कराया जाता है उसे गर्भनाटक कहते हैं, इसे अंग्रेजीमें 'A play within the play' कहते हैं, साहित्यदर्पणकारने इसका यह लक्षण कहा है :—

'अङ्कोदरप्रविष्टो यो रङ्गद्वारामुखादिमान्। अङ्कोऽपरः स गर्भाङ्कः सबीजः फलवानपि'

यद्यपि इसमें गर्भाङ्क शब्दसे व्यवहार हुआ है लेकिन वस्तुमें अन्तर नहीं है। गर्भनाटकके प्रयोगसे कथानकमें चमत्कार उत्पन्न किया जाता है, जैसे इसी नाटकमें प्रियदर्शिकाको राजासे मिलने तथा सस्नेह वार्त्तालाप करने का अवसर प्रदान करके किया गया है। यह गर्भाङ्क निवेश प्रणाली ग्रीक तथा रोम नाटक कर्त्ताओंको नहीं ज्ञात थी। 'भवभूति'ने 'उत्तर रामचरित' में और 'राजशेखर'ने 'बालरामायण'में इसका प्रयोग किया है।

३० दण्डनीत्या (पृ० ५५)

दण्डनीति वह विद्या है जिससे राज्यका व्यवस्थित शासन चलाया जाता है। आजकलका संविधान (Constitution) अर्थशास्त्र और विकसित कानूनी प्रपञ्च सब इसीके अन्तर्गत हो जाते हैं। इसे सदासे बहुत आदर मिलता आया है। इसके आधारपर ही लोककी सत्ता मानी जाती है। लिखा है :—

'आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता, दण्डनीतिश्च शाश्वती।
विद्यास्त्वेताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः॥'

३१ सदृशा रज्यन्ते (पृ० ५७)

सभी अपने जनपर अनुराग रखते हैं, इसीलिये कहा है—**'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्'**। कालीदासने भी शाकुन्तलमें कहा है:—**'सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति'**॥

३२ ग्रथितं बध्नाति (पृ० ६१)

गांठ बांधता है। किसी चीजको याद रखनेके लिये आदमी चादर आदिमें गांठ डाल लेता है, यह उसको याद दिलानेमें सहायता करती है, गांठ देखकर वह सोचता है कि यह गांठ क्यों डाली गई ? फिर उसको मनोव्यापार की सहायतासे याद पड़ जाती है। यह व्यवहार आपामर प्रसिद्ध है। **'ग्रथितं बध्नाति'** की जगह **'ग्रन्थिं बध्नाति'** लिखना अधिक उपयुक्त होता।

३३ व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना (पृ० ६६)

व्यञ्जन जिनसे भाव व्यक्त हों ऐसे आरोहारोह दश प्रकारके माने जाते हैं, यथा:—

'दश तु व्यञ्जने मताः।
पुष्पं कलं तलं विन्दू रेफो निस्वनितं ततः। निष्कोटितमथोन्मृष्टमवमृष्टनिबन्धने॥'

व्यञ्जनधातु :—

ये प्रहारविशेषोत्थाः स्वरास्ते धातवो मताः। विस्तारकरणाविद्धव्यञ्जनाश्चेति धातवः'॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धातुशब्दो रागपर इति केचित्।

लयः—क्रियानन्तरविश्रान्तिर्लयः स त्रिविधो मतः।
द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुतः शीघ्रतमो मतः।
द्विगुणद्विगुणौ ज्ञेयौ तस्मान्मध्यविलम्बितौ'॥

यह लय दश प्रकारके तालप्राणोंमें से एक है, रङ्गनाथने लिखा है:—

'लयो दशतालप्राणान्यतमस्तालान्तरालवर्त्ती लयनात्मकः कालविशेषः। तदुक्तम्—
कालो जातिः क्रियाङ्गानि मार्गग्रहकला लयः। यतिः प्रसारकश्चेति तालप्राणा दश स्मृताः॥

यतय:—'लयप्रवृत्तिनियमो यतिरित्यभिधीयते'।
समा स्रोतोगता चान्या गोपुच्छा त्रिविधेति सा॥

वाद्यविधयः—वाद्यध्वनिविशेषरीतयः, यह तीन प्रकारके होते हैं:—
'तत्त्वं भवेदनुगतमोघश्चेति निरूपितम्। गीतानुगं त्रिप्रकारं वाद्यं तज्ज्ञैम कथ्यते'॥

अमरस्तु:—

'विलम्बितं द्रुतं मध्यं तत्त्वमोघो घनं क्रमात्'॥ इति॥

३४ शिष्यविशेषा (पृ० ६७)

शिष्येषु विशेषा श्रेष्ठा अतिशयिता इत्यर्थः, अतिशयितार्थको विशेषशब्दस्त्रिलिङ्गः, तथा च रघुवंशे—'आसीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः'॥

३५ अग्रहस्तौ (पृ० ६८)

हाथके अगले भाग। अग्रहस्त और हस्ताग्र दोनों रूप होते हैं—'हस्ताग्राग्रहस्तादयो गुणगुणिनोर्भेदाभेदात्' इति वामनः। यदि अवयव और अवयवीमें भेद मानेंगे तब तो हस्ताग्र होगा और यदि अभेद मानेंगे तब अग्रहस्त होगा। कालिदासने भी शाकुन्तलमें अग्रहस्त शब्दका प्रयोग किया है:—

'आवेगस्खलितायाः प्रभ्रष्टं मेऽग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्' इति।

३६ गान्धर्वो विवाहः (पृ० ७१)

'इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च। गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः'॥

यही इसका स्वरूप है। दुष्यन्त और शकुन्तलाका विवाह भी इसी प्रकारका हुआ था।

३७ वैलक्ष्यम् (पृ० ७४)

यह लज्जाका पर्याय है, नैषधमें आया है:—'वैलक्ष्यहेतोर्गतिमेतदीयामग्रेऽनुकृत्योपहसन्निवोच्चैः'। लज्जित अर्थमें इसीका प्रकृतिभूत विलक्षशब्द प्रयुक्त होता है। उसकी परिभाषा निम्न है:—

आत्मनः स्खलिते सम्यग् जातेऽन्यैर्यस्य जायते।
अपत्रपाऽतिमहती स विलक्ष इति स्मृतः॥'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विलक्षस्य भावो वैलक्ष्यम्—लज्जितत्वम् लज्जापर्यवासि ।

३८ अङ्गारवती (पृ० ८०)

यह वासवदत्ता की मांका नाम था, इसकी बहन जिसका नाम इस नाटिकामें नहीं आया है, दृढ़वर्मा की स्त्री थी, उसने अङ्गारवतीको अपनी स्थितिका परिचय प्रदान किया होगा, तदनुसार उसने दृढवर्माको कलिङ्गराजके बन्धनसे मुक्त करानेके लिये वासवदत्ताको लिखा ।

३६ नरेन्द्रता (पृ. १०३)

नरेन्द्र शब्दके दो अर्थ हैं, राजा और विषचिकित्सक, यहां दोनों ही अर्थ विवक्षित हैं, राजाने अपना नरेन्द्र राजा होना सिद्ध कर दिया और विषवैद्य होनेका परिचय दिया । एक अर्थसे राजाका स्वोचित प्रभाव और दूसरे अर्थसे विषवैद्यकर्मे यशस्विता प्रतीत हुई ।

४० स्वभावस्था (पृ. १०३)

इस श्लोकमें राजाने विषके सङ्क्रान्त होनेपर जो स्थिति होती है उसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है । आंखें झिपने लग जाती हैं, गद्गद वाणी निकलती है, रोमाञ्च तथा स्वेद का उदय होता है, शरीरमें कम्प होता है । इस वर्णनमें खूबी यह है कि सभी बातें सात्त्विकभावके रूपमें ही होती हैं, इसी वस्तुको व्यङ्ग्य करनेके लिये—इस श्लोकसे पहले 'सस्मितम्' लिखा है ।

अलङ्कारादिसारिणी

प्रथम अङ्क

श्लोक १—इस श्लोकमें भावसन्धि व्यङ्ग्य है, औत्सुक्य, लज्जा, ईर्ष्या आदिकी सन्धि है । 'पादनखेन्दुदर्पण' इस अंशमें रूपक अलङ्कार । शार्दूलविक्रीडित छन्द, लक्षण—'सूर्याश्वैर्मसजास्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' । तुलना कीजिये—बाणभट्टके पार्वतीपरिणयसे—

'क्षादौ प्रेमकषायिता हरमुखव्यापारलोलाशनै-
र्व्रीडाभारविघूर्णिता मुकुलिता धूमोद्गमव्याजतः ।
पत्युः सम्मिलिता दृशा सरभसव्यावर्त्तनव्याकुला
पार्वत्याः परिणीतिमङ्गलविधौ दृष्टिः शिवायास्तुवः' ॥

श्लोक २—भी इसी वृत्तका है ।

श्लोक ३—इसमें भी पूर्वोक्त ही वृत्त है । यह प्ररोचना नामक प्रस्तावनाङ्ग है ।

श्लोक ४—उपजातिछन्द है । लक्षण :—

'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोक ५—इस श्लोकमें श्लेष और उपमा अलङ्कार है, घन, कन्या, तुला, धाम आदिमें श्लेष है। आर्या छन्द है, लक्षण:—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या॥

श्लोक ६—इसमें विभावनाऽलङ्कार है क्योंकि सुखके कारणके विना ही सुखका निरूपण किया गया है। शार्दूलविक्रीडित वृत्त है। लक्षण पूर्वोक्त।

श्लोक ७—में भी यही छन्द है।

श्लोक ८—आर्या छन्द, लक्षण पूर्वोक्त, तुलनाके लिये देखिये:—

'अहो दुरासदो राजमहिमा,

'न च न परिचितो न चाप्यगम्यश्चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमस्य'।

(मालविकाग्निमित्रम्)

श्लोक ९—उपमा अलङ्कार। अतिशयोक्ति तथा रूपक चरम चरणमें। स्रग्धरा छन्द, लक्षण:—**'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्'॥**

श्लोक १०—वसन्ततिलक वृत्त है, लक्षण:—**'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः'।** काव्यलिङ्ग अलङ्कार।

श्लोक ११—शार्दूलविक्रीडित छन्द, लक्षण पूर्वोक्त। उत्प्रेक्षालङ्कार है, स्तनोंमें स्वर्णकलशत्वकी सम्भावना की गई है।

श्लोक १२—स्रग्धरा वृत्त, लक्षण पूर्वोक्त। उपमा अङ्गभूत और विश्रान्तिधाम है स्वभावोक्ति अलङ्कार।

द्वितीय अङ्क

श्लोक १—उपमाऽलङ्कार। अवस्थाभेदकृतभेदसे सादृश्य का उपपादन करना होगा। शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

श्लोक २—उत्प्रेक्षाऽलङ्कार प्रथमपादमें। द्वितीयमें उपमा। स्रग्धरा छन्द। लक्षण पूर्वोक्त है।

श्लोक ३—आद्य पादमें उपमा। अन्तमें उत्प्रेक्षा। शार्दूलविक्रीडित वृत्त। शाद्वल हरे होते हैं, उनको शिरीषपुष्पसे उपमा दी गई है। हरे पदार्थोंको शिरीषसे उपमा प्रसिद्ध है। यथा भारवि:—**'शुष्कावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला'॥**

श्लोक ४—स्रग्धरा छन्द। तुलनाके लिये देखिये—कादम्बरी, अच्छोदसरोवरका-वर्णन—**'इदमपि खल्वमृतमिव सर्वेन्द्रियाह्लादनसमर्थम्, अतिविमलतया चक्षुषः प्रीतिमुपजनयति, शिशिरतया स्पर्शसुखमुपहरति, कमलसुगन्धितया घ्राणमाप्याययति, हंसमुखरतया श्रुतिमानन्दयति, स्वादुतया रसनामाह्लादयति'।**

श्लोक ५—आर्याच्छन्द लक्षण बताया जा चुका है। उत्प्रेक्षाऽलङ्कार।

श्लोक ६—शार्दूलविक्रीडित छन्द, निश्चयगर्भ ससन्देह अलङ्कार।

श्लोक ७—उपमा अनेकधा। शार्दूलविक्रीडित वृत्त। अन्तमें विशेषोक्ति अलङ्कार भी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोक ८—इस श्लोकमें भ्रान्तिमान् अलङ्कार है, भ्रमरोंके भ्रमका चमत्कारका ही वर्णन उपनिवद्ध है। छन्द मालिनी है। लक्षण—**'ननममययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।'**

श्लोक ९—आर्या छन्द, लक्षण पूर्वोक्त। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

श्लोक १०—शार्दूलविक्रीडित छन्द। जिसका लक्षण वताया जा चुका है। अलङ्कार उपमा, जो इसके प्रत्येक चरणमें अत्युत्तम है।

तृतीय अङ्क

श्लोक १—आर्या छन्द तथा सामान्येन विशेषसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। तुलनाके लिये देखिये, क्षेमेन्द्रः—

'गुणवज्जनसंपर्काद्याति स्वल्पोपि गौरवम्। पुष्पमालानुषङ्गेण तृणं शिरसि धार्यते'॥

श्लोक २—वसन्ततिलका छन्द, लक्षण—**'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः।'** उदात्तालङ्कार तथा अन्तमें उपमा।

श्लोक ३—श्लेष और उपमा अलङ्कार। उपजाति छन्द, लक्षण लिखा जा चुका है।

श्लोक ४—शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इस पद्यमें 'स्वस्तिक' शब्द आया है। एक टीकाकारने उसके अर्थके विषयमें लिखा है कि **'स्वस्तिको मङ्गलद्रव्यम्' तत्तु तण्डुल-चूर्णनिर्मितत्रिकोणाकाराधिवासद्रव्यम्'** इति कल्पद्रुमः। **स्वस्तिकः शिरसा धार्यमाणो भूषणविशेष इति केचित्।** मैं भी अन्तिम अर्थको ही प्रसङ्गोचित मानता हूं।

श्लोक ५—छन्द शार्दूलविक्रीडित। तुलनाके लिये देखिये, मालतीमाधव—**'आशंसापरिकल्पितास्वपि भवत्यानन्दसान्द्रो लयः'**। विक्रमोर्वशीय—**'पादास्त एव शशिनः सुखयन्ति गात्रं बाणास्त एव मदनस्य ममानुकूलाः। संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि यद्यदासीत्त्वत्संगमेन तत्तदिवानुनीतम्'।**

श्लोक ६—इस श्लोकके आदिमें दो चरण तो आर्याके हैं, शेष दो चरणोंमें लक्षण नहीं सङ्गत होता।

श्लोक ७—छन्द शार्दूलविक्रीडित। अलङ्कार–भेदेऽप्यभेदरूप अतिशयोक्ति।

श्लोक ८—यह गीति छन्द है, लक्षण:—

'आर्यापूर्वार्द्धसमं द्वितीयमपि भवति यत्र हंसगते।
छन्दोविदस्तदानीं गीतिं तामम्रृतवाणि भाषन्ते॥'

अलङ्कार श्लेष, प्रकृत और अपकृत अर्थके लिये श्लेषका आश्रय लिया गया है।

श्लोक ९—छन्द आर्या, लक्षण पूर्वमें वताया जा चुका है। अलङ्कार अप्रस्तुतप्रशंसा, क्योंकि अप्रस्तुत भृङ्गीवृत्तान्तसे प्रस्तुत नायिकाका वृत्तान्त प्रतीत होता है।

श्लोक १०—छन्द शार्दूलविक्रीडित। इस श्लोकमें सङ्गीतशास्त्रके जो विषय आये हैं उनका स्पष्टीकरण विशेषविवरण नामक परिशिष्टमें किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोक ११—वृत्त—स्रग्धरा । लक्षण पूर्वोक्त । इसमें अलङ्कार निश्चयगर्भससन्देह और अपह्नुति है ।

श्लोक १२—वृत्त आर्या । अलङ्कार उपमा और परिकर । रागका न्यास करनेमें रक्त अङ्गुलियोंको कारण वनाया गया है, अतः परिकर, उपमा स्पष्ट ही है ।

श्लोक १३—शार्दूलविक्रीडित छन्द, अलङ्कार अनुमान । इसमें छिपाये गये कोपका नयनताम्रत्व आदि हेतुओंसे अनुमान किया गया है । तुलनाके लिये देखिये :—

'भ्रूभङ्गे सहसोद्गतेऽपि वदनं नीतं परां नम्रता-
मीषन्मां प्रति भेदकारि हसितं नोक्तं वचो निष्ठुरम् ।
अन्तर्बाष्पजडीकृतं प्रभुतया चक्षुर्न विस्फारितं
कोपश्च प्रकटीकृतो दयितया मुक्तश्च न प्रश्रयः' ॥

श्लोक १४—इसमें भी शार्दूलविक्रीडित वृत्त है ।

श्लोक १५—शार्दूलविक्रीडित वृत्त । इसमें भावशवलता व्यङ्ग्य है ।

चतुर्थ अङ्क

श्लोक १—इस श्लोकमें शार्दूलविक्रीडित वृत्त है, लक्षण पहले वताया जा चुका है ।

श्लोक २—वसन्ततिलक वृत्त है, लक्षण कहा जा चुका है । तुलनाके लिये देखिये—विक्रमोर्वशीयः—

'प्रसादमाकाङ्क्षति यस्तवोत्सुकः । स किं त्वया दासजनः प्रसाद्यते' ॥

श्लोक ३—शार्दूलविक्रीडित छन्द । 'गूढ़प्रहारोपम' इस अंशमें आर्थी उपमा अलङ्कार है ।

श्लोक ४—वसन्ततिलक वृत्त है ।

श्लोक ५—स्रग्धरा छन्द है, लक्षण वताया जा चुका है ।

श्लोक ६-७—आर्या छन्द है, लक्षण पूर्वोक्त ।

श्लोक ८—वसन्ततिलक वृत्त । अलङ्कार विषादन, अप्रस्तुतप्रशंसा और अर्थान्तर-न्यास । तुलनाके लिये देखिये :—

'रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे हा हन्त ! हन्त !! नलिनीं गज उज्जहार ॥'

श्लोक ९—शार्दूलविक्रीडित छन्द है । इस श्लोकमें असङ्गति अलङ्कार है क्योंकि कार्यकारणकी भिन्नदेशता उपनिवद्ध है ।

श्लोक १०—यह शिखरिणी छन्द है, लक्षण :—

'रसैरीशैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' । अनुमान अलङ्कार ।

श्लोक ११-१२—इन दोनोंमें शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नायकादि निरूपण

इस नाटिकामें प्रधानतया शृङ्गार रस है, शृङ्गाररसका प्रभेद सम्भोग ही इसका सार है। सम्भोग शृङ्गारका लक्षण है:—

'दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ। यत्रानुरक्तावन्योन्यं सम्भोगोऽयमुदाहृतः'॥

यद्यपि इसमें पूर्वरागका भी पूरा वर्णन हुआ है, जो विप्रलम्भकी कोटिमें पड़ता है, किन्तु वह पोषक ही है। विश्रान्तिधाम सम्भोग शृङ्गार ही है। वत्सराज उदयन धीरललित नायक हैं, जिसका लक्षण है:—

'निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्'॥

नायिका है प्रियदर्शिका, वह मुग्धा कन्या है:—

प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा॥

मुग्धा नायिकाकी चेष्टाएँ इस प्रकार होती हैं:—

'दृष्टा दर्शयति व्रीडां सन्मुखं नैव पश्यति। प्रच्छन्नं वा भ्रमन्तं वा तिर्यक्तं पश्यति प्रियम्॥
बहुधा पृच्छ्यमानापि मन्दमन्दमधोमुखी। सगद्गदस्वरं किञ्चित् प्रियं प्रायेण भाषते॥
अन्यैः प्रवर्त्तितां शश्वत् सावधाना च तां कथाम्।
शृणोत्यन्यत्र दत्ताक्षी प्रिये बालानुरागिणी'॥

शृङ्गार रसकी पुष्टिके लिये ग्रीष्म ऋतु, धारागृहोद्यान, तड़ाग, आदिका बड़ा रोचक वर्णन किया गया है। रूपक सामान्यके लिये कहा गयाहै कि **'अङ्गमन्ये रसाः सर्वे'**। तदनुसार इस नाटिकामें विदूषककी उक्तियोंमें हास्य और संग्रामवर्णनमें वीरका अच्छा समावेश हुआ है।

देव श्रीहर्षकी कृतियोंमें सर्वत्र वैदर्भी रीतिका अवलम्बन किया गया है, जिसका लक्षण यह है:—

'माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैं रचना ललितात्मिका। अल्पवृत्तिरवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते'॥

इस रीतिकी साहित्यकारोंने बड़ी प्रशंसा की है, बिल्हणने कहा है:—

'अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य सरस्वती विभ्रमजन्मभूमिः।
वैदर्भरीतिः कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभप्रतिभूः पदानाम्'॥

इस नाटिकामें माधुर्य गुण है, जिसका लक्षण है:—

'चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते'॥

माधुर्यव्यञ्जक वर्ण यह है:—

'मूर्ध्नि वर्गान्त्यवर्णेन युक्ताष्टठडढान् विना। रणौ लघू च तद् व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गताः॥
अल्पवृत्तिरवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा'॥

इस नाटिकाके पद्योंमें असमस्तपदोंका प्रयोग अधिक है। गद्य तो अति सरल तथा स्पष्ट हैं, जिससे अर्थव्यक्तिमें कठिनता नहीं आ पाई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुभाषित-सञ्चय

'तत्क्षणमपि निष्क्रान्ताः कृतदोषा इव विनापि दोषेण ।
प्रविशन्ति शङ्कमाना राजकुलं प्रायशो भृत्याः' ॥

'गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति' ॥

'वेदसङ्ख्यथयैवावेदितं ब्राह्मण्यम्' ।

'नास्ति खलु दुष्करं दैवस्य' ।

'न खल्वविघ्नमभिलषितमधन्यैः प्राप्यते' ।

'कमलिनीबद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पटः कुतस्तामनासाद्य स्थितिं करोति' ॥

'प्रायो यत्किञ्चिदपि प्राप्नोत्युत्कर्षमाश्रयान्महतः ।
मत्तेभकुम्भतटगतमेति हि शृङ्गारतां भस्म' ॥

'सदृशाः सदृशे रज्यन्ते' ।

'न युक्तमस्थाने रसभङ्गं कृत्वा गन्तुम्' ।

'अतिदुर्जनः खलु लोकः' ॥

'सञ्जातसान्द्रमकरन्दरसां क्रमेण ।
पातुं गतश्च कलिकां कमलस्य भृङ्गः ।
दग्धा हिमेन सहसैव निपत्य चैषा ।
वामे विधौ न हि फलन्त्यभिवाञ्छितानि' ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाटकीया विषयाः

स्वगतम्—(आत्मगतम्) 'अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्' ।

प्रकाशम्—'सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्'

अपवार्य—'''तद्भवेदपवारितम्' ।

रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते । त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तराकथाम्' ॥

जनान्तिकम्—'अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्' ॥

नेपथ्यम्—'नटानां वेषपरिग्रहस्थानम्'

नाटिका—'नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात्'.....' इत्यादि (पृष्ठ १०९ देखें)

अङ्कः—'प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः । भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः'

नानेकदिननिर्वर्त्य कथया संप्रयोजितः ।

आवश्यकानां कार्याणामविरोधाद्विनिर्मितः ।

प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तो भावरसोद्भवैः । अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्त्तितः' ॥

नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्तास्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीतिसंज्ञिता ॥

मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी । पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत' ॥

सूत्रधारः—'नाट्योपकरणादीनि'.....' इत्यादि (पृष्ठ १११ देखें)

प्रस्तावना—

'नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा । सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥

चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।

आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा' ॥

विष्कम्भकः—'वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।

संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः' ॥

प्रवेशकः—'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।

अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा' ॥

नायकः—'त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।

दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता' ॥

विदूषकः—'कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।

हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥'

भारतीवृत्तिः—'भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नराश्रयः' ॥

भारत्यङ्गानि—'तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे ।

अङ्गान्यत्रोन्मुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना' ॥

अत्र प्ररोचना—श्रीहर्षो निपुणकविरित्यादौ ।

प्रस्तावनाभेदाः—

'उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा । प्रवर्त्तकावलगिते पञ्चप्रस्तावनाभिदाः' ॥

अत्र प्रयोगातिशयाख्या ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्दार्थपरिचयः

धूमव्याकुलदृष्टि—धूमेन व्याकुले दृष्टी यस्याः सा तथा, धुएं से व्याकुल आंखों वाली
इन्दुकिरणैः—चन्द्रमाकी किरणोंसे
आह्लादिताक्षी—आह्लादिते अक्षिणी यस्याः सा तथा, जिसकी आंखें तरकर दी गई हैं।
पश्यन्ती—देखती हुई
वरम्—वरको, भावी पतिको
उत्सुका—उत्कण्ठित
भूयः—पुनः
ह्रिया—लज्जासे
सेर्ष्या—ईर्ष्यासे युक्त, चिढ़ी हुई
पादनखेन्दुदर्पणगते—पादयोर्नखान्येवेन्दवः त एव दर्पणाः तत्र गते, चरणनखरूप-चन्द्रमा नामक दर्पणोंमें प्रतिविम्बभूत
उत्पुलका—उद्गताः पुलका यस्याः सा तथा जिसके रोंगटे खड़े हो गये हों, रोमाञ्चित
शिवाय—कल्याणके लिये
उदस्त—उठाया गया, फेंका गया
गण—महादेवके गण, भूतप्रेत आदि
क्रोड—गोद
विषमुच्—सर्प
प्रेक्षमाण—देखता हुआ
पादावष्टम्भसीदद्वपुषि—पादस्य अवष्टम्भेन सीदत् वपुर्यस्य तस्मिन्, चरण रोपदेनेसे जिसकी देह अवसन्न हो रही है ऐसा
श्लिष्टमूर्त्ति—आलिङ्गित देह
भयघन—भीत होकर, अतिभयपूर्वक
सबहुमान—आदरपूर्वक
आहूय—बुलाकर
श्रोत्रपरम्परा—कर्णाकर्णिकया, लोगोंके मुखों से, Hearsay.
प्रयोगतः—अभिनय द्वारा
सर्वजनहृदयाह्लादिनः—सर्वजनप्रिय
नेपथ्यरचना—वेशपरिग्रह
आवर्जित—आकृष्ट, प्रस्तुत
सामाजिक—द्रष्टा गण
परिषत्—दर्शकमण्डली
हारि—मनोहर
मद्भाग्योपचयात्—हमारे भाग्यसे
भूमिका—वेश
देशच्युति—देशनिकाला
चिरजीविता—बहुत दिनों तक जीते रहना
शक्तित्रय—तीन प्रकारकी शक्तियां १ प्रभु-शक्ति, २ मन्त्रशक्ति, ३ उत्साहशक्ति
बद्धानुशय—रंग, चिढ़ा हुआ
लब्धरन्ध्रेण—मौका पाकर, छिद्र देखकर
एकान्तनिष्ठुर—अतिक्रूर
अवस्कन्दसंभ्रम—आक्रमणकी हड़बड़ी
अपवाह्य—बचाकर
आटविक—वनवासी
निपत्य—अकस्मात् आकर
विचित—ढूंढ़ा, खोजकी
दस्यु—लुटेरा
परिभ्रष्ट—मुक्त
जीवितशेष—जीवनके बचे हुए दिन
शरदातप—शरत् ऋतुकी धूप
घनबन्धन—कठोरबन्धन, मेघरूप कारागार
कन्याग्रहण—कन्या-वासवदत्ता या कन्या-राशिका ग्रहण प्राप्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुला—तुलाराशि
अविकारिता—ईमानदारी
परिगता—ज्ञात हुई
निर्व्यूढा—पूरी की गई
रणसाहसव्यसनिता—युद्धकी शौक
निर्व्याज—छलरहित
नवग्रह—नयी बाझमें पकड़ा गया
चारक—कारागार
अन्धकारगहन—अन्धकारसे भयानक
निगलस्वन—बेड़ीकी खनखनाहट
बन्धनरक्षिणः—कारागारके प्रहरी गण
स्निग्ध—प्रिय, सुन्दर
सुखनिबन्धन—सुखका साधन
अमात्य—मन्त्री
प्रतीहारभूमि—जहां ठहरकर आह्वानकी प्रतीक्षा की जाय ।
त्वरितम्—शीघ्र
निष्क्रान्त—बाहर आए हुए
शङ्कमाना—सशङ्क
प्रसाद—अनुग्रह
तुरग—घोड़ा
अध्वा—मार्ग
अतर्कित—अज्ञात, एकाएक
बलतुमुलकलकल—सेनाकी भयङ्कर आवाज
सहाय—सहायक, साथी
शोभितम्—अच्छा किया
मत्सरोत्साह—वैर और बहादुरी
विमर्द—युद्ध
संप्रहार—आघात, प्रहार, चोट
पादात—पैदलसैन्य
पत्ति—पैदल सेना
उरःपेषमात्र—केवल छातीसे मसलकर
अश्वीय—घोड़ेका दल
बलत्रितय—हाथी, घोड़ा, पैदलसेना
व्रीडित—लज्जित
अनुसृत—अनुमृत, अनुगत
कृतकृपणप्रलापा—बेजार रोती हुई
आभिजात्यानुरूपा—उच्च कुलके योग्य
वेश्मनि—घरमें
स्नानीय—स्नानकालमें उपयोगी चूर्ण
वारविभ्रमवती—वारविलासिनी, वेश्या
आयास—परिश्रम
अंशुक—वस्त्र, सूक्ष्मवस्त्र
शातकुम्भ—सुवर्ण
अर्कांशु—सूर्यकर
शफर—एक प्रकारकी छोटी मछली
दीर्घिका—वापी, छोटा जलाशय
शिखी—मयूर
बर्हभार—मयूरका पुच्छ
आलवाल—वृक्षोंमें पानी देनेके लिये उनके नीचे बनाया गया घेरा
कर्णपाली—कानका अधोभाग

द्वितीय अङ्क

उपवासनियम—अनाहारपूर्वक व्रत
स्वस्तिवाचन—कल्याणार्थ ब्राह्मणोंको कुछ उपहार देना
शब्दाययेत्—बुला भेजें, पुकारें
कुक्कुटवाद—मुरगेकी तरह शब्द
प्रतिग्रह—दानग्रहण
धारागृह—फव्वारों वाला घर
क्षाम—कृश
अविरत—अनवरत, सतत
शिलातलोत्सङ्ग—पक्की भूमिकी गोद
परिमल—सुगन्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निलीन—छिपा हुआ
मधुकर—भ्रमर
भग्न—टूटा हुआ
उद्दाम—वेगवान्
पर्यवबुद्ध—ढ़ीला पड़ा
बन्धूक—एक प्रकारका फूल जिसे 'ऊड़हुल' कहते हैं ।
तमाल—काले पत्तों वाला वृक्ष
वृन्त—डंठल, पुष्पधारक जड़
प्रवाल—मूंगा
शेफालिका—एक फूल पारिजात
सप्तच्छद—छतवन
गजमदामोद—हाथीके दानवारिकी सुगन्ध,
उन्निद्र—विकसित
पिङ्ग—ईषत्पीत, पिङ्गल वर्ण
अव्यक्तवाक्—अस्फुट शब्दवाले
मधुलिह—भ्रमर
वारुणी—मद्य
अविरल—निरन्तर
सप्तपर्ण—छतवन
शाद्वल—छोटे छोटे कोमल तृण, घास
इन्द्रगोप—बरसाती कीडे, वीरबहूटी
अस्ताभिलाषी—अस्तोन्मुख
मुकुलाय्यन्ते—मुरझाते हैं
लघु—शीघ्र
आज्ञप्तिः—हुकूमत
महार्घ—प्रतिष्ठित
लघूकृत—हल्का वनाया, तुच्छ
गुल्म—झाड़ी
वेला—समय
नोपलक्षयसि—नहीं समझ रहे हो
स्वन—शब्द
ह्राद—शब्द

विवर—छिद्र
सौधपाली—प्रासाद परम्परा
घ्राणसौख्य—नाककी तृप्ति
मरुत्—वायु
निरतिशय—सर्वोत्कृष्ट
विकल्प—नानाकल्पना
मूर्त्ता—शरीरधारिणी
कौमुदी—चन्द्रमाकी रोशनी
नलिनी—कमलिनी
व्यक्तीभविष्यति—प्रकट होगा, खुल जायगा
आसितव्यम्—रहना होगा
मुषित—वञ्चित, ठगा गया
असंबद्धप्रलापिनी—व्यर्थकी वातें बोलने वाली
आभिजात्य—कुलीनता
भाजन—पात्र
अच्छिन्न—अत्रुटित, सन्ततधार
पयोधरपट—स्तन परके वस्त्र या मेघरूप आवरण
मुकुलीभवन्ति—मुरझाते हैं
आयासंयन्ति—तंग कर रहे हैं
परिभविष्यन्ति—तंग कर देंगे
गर्भदासी—निन्दाके अर्थमें दासी
तूष्णीक—चुपचाप, विना पद शब्दके
कुवलय—नीलकमल
परित्राण—रक्षा
आक्रन्दसि—जोरोंसे पुकार रही हो
उपसृप्य—समीपजाकर
परिणतः—खतम हो गया
अतिशिशिरतया—अतिशीतल होनेसे
सलिल—पानी
उरुस्तम्भ—जांघका नहीं चलना
आबद्धमुख—बन्द मुंहवाला, मुकुलित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अलीकपाण्डित्यदुर्विदग्धतया—मिथ्या काबिलियतकी चतुराईसे
निर्भर्त्स्य—डांटडपट कर
समाश्वासन—तसल्ली देना, धीरज देना
सहस्ररश्मि—सूर्य
चक्राह्व—चक्रवाक

तृतीय अङ्क

नर्त्तितव्यशेषम्—जो भाग अभिनीत नहीं हुआ है
शून्यहृदया—अन्यमनस्क
वासवदत्ताभूमिकया—वासवदत्ताका अभिनय करनेवाली
उपालप्स्ये—उलाहना दूंगी
विस्रब्धजल्पितानि—इतमीनानसे की गई बातें
शोभनदर्शन—अतिमनोरमरूप
भागधेय—भाग्य
सह्यवेदन—जिसका कष्ट सहने योग्य हो
हृदयनिर्विशेषा—दिलीदोस्त
निर्वृति—तसल्ली, शान्ति
अभिनवरसास्वादलम्पटः—नूतनरसलुब्ध
स्थितिं करोति—धीरज धारण करता है
शरदातप—शरद् ऋतुकी धूप
अविस्रम्भशीले—विश्वास नहीं करनेवाली
निःश्वासनिभ विनिर्गतः—अनायास निकल कर प्रकाश में आया
पार्श्वपरिवर्ती—सदा पासमें रहनेवाला
सन्तापनिस्सह—सन्ताप सहनेमें अशक्त
अस्वस्थवचनेन—हताश उक्तिसे
करतलस्पर्शद्विगुणितसुखशीतलानि—आरण्यकाके हाथसे छू जानेके कारण जो द्विगुण सुखद तथा शीतल हो गये हैं
प्रेक्षागार—नाट्यशाला
आश्रयगुण—पात्रगुण
श्रृङ्गारता—भूषणभाव
प्रेक्षणीयता—सुन्दरता
शातकुम्भस्तम्भ—स्वर्णमय खम्भे
मौक्तिकदाम—मुक्तामाला
अतिक्रान्ता—बीत गई
मदङ्गपिनद्धैः—मेरे द्वारा पहने गये
नलगिरिग्रहणपरितुष्टेन—नलगिरि नामक काठके हाथीको उठा लेनेपर सन्तुष्ट
स्खलित—त्रुटियाँ
जरातुरः—वार्द्धक्यग्रस्त
दण्डनीति—एक प्रकारकी विद्या जिसकी सहायतासे राज्यका शासन चलाया जाता है, एक पक्षमें दण्डग्रहण
वृत्तम्—स्थिति, दशा, समाचार
प्रेक्षा—अभिनय, खेल
नितम्बफलक—चौड़ा नितम्बप्रदेश
शिञ्जान—सशब्द
काञ्चीगुण—करधनी, डणकस
हारापादितकान्ति—हारसे शोभित
सवलय—कङ्कणयुक्त
चिरयति—विलम्ब करता है
चित्रेणभावितः—आश्चर्यचकित
रज्यन्ते—प्रसन्न रहते हैं
नवतन्त्रीसज्जा—नये तारोंसे युक्त
घोषवती—वीणाका नाम
विसर्जय—भेजो
ग्लपयन्ति—म्लान बनाते हैं
निभृतेन—चुपचाप
सुसंविहितम्—सब ठीककर रखा है
उच्छ्वसितोऽस्मि—जान में जान आई
नयनोत्सवास्पद—आंखोंको लुभानेवाला
सत्त्व—पराक्रम
सान्द्रजलदह्रादानुकारी—घनघोरमेघकी तुलना करनेवाला
नीलोत्पलदाम्ना—नीलकमलकी माला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निगलनम्—बेड़ी डालना, बाँधना
बहुमता—प्रिया
निष्पादित—विहित
मानस—मन, मानसरोवर
परिष्वज्य—आलिङ्गन करके
उपाध्यायपीठिकायाम्—उपाध्यायकी गद्दी पर
अवश्याय—पाला, हिम
व्यतिकर—सम्बन्ध
ह्लादित्व—आनन्ददायकता
उषसि—प्रभात कालमें
वीतातप—जब धूप नहीं हो
स्वेदापदेशात्—पसीनेके छलसे
स्यन्दते—बहता है
विद्रुम—प्रवाल
राग—लालिमा और प्रेम
अलीक—मिथ्या
बोधयित्वा—जगाकर
बटुक—बालक, लोकव्यवहार नहीं जानने वाला
मूर्खनिर्घोषान्तरितः
मूर्खोंकी आवाजमें छिप गया
दुर्नय—अविवेक
अभूमि—अयोग्य स्थान
ताम्रा—रक्तवर्ण
नियत—संयत

चतुर्थ अङ्क

दीर्घरोषता—चिरस्थायी कोप
तपस्विनी—निरीह, बेचारी
विनोदन—मनबहलाव
वाचयितव्यः—पढ़कर सुनावे
निर्विण्णा—उदास, जीवनसे विरक्त
अत्याहित—अनर्थ, आत्महत्या आदि
एतावतीं भूमिम्—इस स्थितिको
समरसंघट्ट—युद्धसङ्घर्ष
दुर्विषह—अजेय, जिसे रोका न जा सके
बलसन्दोह—सेना समुदाय
कुब्ज—कुबड़ा
दन्तवलभी—हाथी दातका बना प्रासाद
परिभ्रश्य—छूटकर
संभ्रम—हड़बड़ी
विकारयसि—चिढ़ाती हो
आक्रान्तबाह्यविषयः—जिसके देशपर आक्रमण हुआ हो
प्राकार—किलेका घेरा
आक्रान्तमन्द—आक्रमणसे हतप्रभ
दासेर—ऊँट
शीर्यमाण—क्षीयमाण
अभिजानासि—पहचानती हो
महाव्यापार—बड़ाभारी कार्य
प्रतिपादिता—दत्ता
परिणेत्रा—पतिसे
अवस्कन्द—चढ़ाई
विद्रुत—भागा
स्मर्त्तव्यतां नीतम्—नष्टकर दिया, ऐसा बना दिया जिसकी याद भर रह गई
प्रतीपमागच्छामि—लौटता हूँ
कल्पाव्यपदेशेन—मधके छलसे
व्यापाद्य—मारकर
वेदना—चेतना, होश
नरेन्द्रता—राजभाव और विषवैद्यत्व
उर्वी—पृथ्वी
उद्दामसस्या—सस्यसमृद्धा
प्रीणन—तर्पण
वज्रलेप—अभेद्य, नहीं मिटानेवाला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रियद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu